आवश्यक-स्पष्टीकरण

ज्ञानसार ग्रन्थावली का इतने लंबे समय से और इस रूप में प्रकाशित होते देख हर्ष और दुख दोनों की एक साथ अनुभूति होती है। हर्ष तो इसलिये कि अपनी २५ वर्षों की साध पूरी हो रही है और दुख इस बात का है कि जिस रूप में और जितनी शीघ्रता से हम इसका प्रकाशन करना चाहते थे, नहीं कर पाये। विधि का विधान कुछ ऐसा ही था कि इसमें हर्ष और शोक, ये दोनों ही करना पड़ा है। पर हम अभी ज्ञानसारजी जैसे महायोगी की भाँति समत्व में नहीं पहुँच सके हैं।

विधि के आगे मनुष्य का प्रयत्न कुछ काम नहीं देता इसका इस ग्रंथ के प्रकाशन प्रसंग से खूब अनुभव हुआ। पचीस वर्ष पहले बड़ी उमंग और आशा के साथ ज्ञानसारजी के ग्रन्थों की पाण्डुलिपि बड़ी लगन के साथ की थी। पन्द्रह वर्ष तो वह योंही पड़ी रही। बीच में चूहों ने भी कुछ सामग्री के पुर्जे पुर्जे करके हमें सचेत किया। परम संत सहजानन्दजी (सहजानंदजी) की प्रेरणा व कृपा से आठ वर्ष पूर्व इसका छपवाना प्रारंभ किया। चारसौ छियासी पृष्ठों में ज्ञानसारजी की रचनाओं का एक भाग छप कर तैयार हुआ और ११२ पृष्ठों में उनका परिचय छप गया। मूल ग्रंथ के छपे हुए फरमे दफ्तरी को जिल्द बन्धाई के लिये दे दिये गये, पर उसी समय कलकत्ते में हिन्दू मुसलमानों का संघर्ष हुआ हिन्दुस्तान पाकिस्तान

दो टुकड़े हो गए। दफ्तरी मुसलमान था—कहाँ गया पता नहीं। बहुत खोज की गई पर उसके मकान का भी पता न लगने से फरमे प्राप्त नहीं हो सके। तीन-चार वर्ष इसी प्रतीक्षा में रहे कि दफ्तरी आजायगा और फरमे मिल जायेंगे। इसी बीच जिसने दफ्तरी को फरमे दिए थे वह व्यक्ति भी मर गया। समस्त आशाओं पर कुठाराघात होगया। ग्रन्थ का दुबारा मुद्रण करवाना पड़ा। पर सारे ही ग्रन्थ का मुद्रण करवाने में बहुत लम्बा समय लगता इसलिये करीब आधे ग्रन्थ की सामग्री का पुनर्मुद्रण कर ही प्रकाशित किया जा रहा है।

सौभाग्य से प्राक्कथन, किंचित् वक्तव्य अनुक्रमणिका और ज्ञानसारजी की जीवनी के फरमे दूसरे प्रेस में छपवाने से गद्दी में मंगवा लिए गये और वे बच गये। बाहर पड़े रहने से खराब अवश्य हो गये हैं पर वे इसमें ज्यों के त्यों दिये जा रहे हैं। इसकी अनुक्रमणिका से पहले कितनी सामग्री मुद्रित हुई थी उसका विवरण मिल जाता है। पृष्ठ १४६ तक की रचनाएँ तो ज्यों की त्यों पुनर्मुद्रण हो गई हैं। उसके बाद हीयाली बालावबोध और वस्ताव [illegible] बालावबोध का नहीं देकर सम्बोध अष्टोत्तरी प्रस्तावित अष्टोत्तरी और आत्मनिन्दा पूर्व क्रम से ही दी गई है। फिर पृष्ठ २६१ में पूर्व प्रकाशित गूढ़ (निहाल) बावनी और पृ. ४२१ में प्रकाशित नवपदपूजा दे दी गई है। तदनन्तर तीन पृष्ठ की सामग्री इसमें नई दी गई है जो उस समय नहीं दी जा सकी थी। इसके बाद पूर्व देश वर्णन दिया गया है। अवशिष्ट रचनाओं को हम दूसरे भाग में देंगे। वे रचनाएँ भी साहित्यिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत मूल्यवान हैं जो लगभग [illegible] पृष्ठों की होंगी। इसमें माला पिंगल प्रबोधदीपक चन्द चौपाई

समालोचना और रासाओं के वर्णनात्मक चित्र-काव्य-साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हैं और आनंदघनजी की चौबीसी का बालावबोध, पदों का विवेचन आध्यात्मिक गीता बालावबोध दसवैं गीत बाला वबोध आध्यात्मिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाएं सैद्धान्तिक या तात्त्विक हैं।

इस ग्रंथ के साथ ज्ञानसारजी के तीन चित्र, एक फोटो और उनके द्वारा रचित और स्वलिखित स्तवन का फोटो, दिये जा रहे हैं।

पूर्व प्रकाशित अनुक्रमणिका में पुनर्मुद्रण के समय आगे जो व्यतिक्रम हो गया है इसलिये नई अनुक्रमणिका यहां दी जा रही है।—

मूलग्रंथ

प्राक्कथन

'ज्ञानसार-ग्रन्थावलीका प्रकाशन करके नाहटाओंने हिन्दी साहित्य के ऊपर बड़ा उपकार किया है। वस्तुतः हिंदीकी मध्ययुग परंपराकी जितनी रक्षा जैनोंने की वैसा न होने पर हमें हिंदी भाषा और उसके साहित्य के विकास का बहुत अपूर्ण ज्ञान रहता। एक समय था, जब कि हमारे देश के विद्वान् संस्कृत से सीधे हिंदीकी उत्पत्ति मानते थे फिर बीचकी कड़ी उन्होंने पाली-प्राकृतको माना। प्राकृत और आधुनिक हिंदी तथा उसकी भगिनी-भाषाओंके बीच की कड़ी अपभ्रंश थी इस निरूप पर विद्वान् पहुँच तो गये लेकिन अपभ्रंश साहित्य का कितना अभाव तथा कितना मधुर परिचय हमारे लोगोंको अभी हाल तक रहा इसका इसीसे पता लगेगा कि कितने ही जैन भंडारोंमें प्राकृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं के ग्रंथों को प्राकृत मान कर सूचियों में दर्ज किया गया। अपभ्रंश के कुछ छोटे-छोटे पद या पद्य-ग्रन्थ बौद्ध चौरासी सिद्धों के भी मिले जिन्हें महा-महोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्रीने "बौद्ध गान ओ दोहा" के नाम से प्रकाशित किया। उसके बाद बहुत थोड़े ही से नमूने और मिले, जिनमें से कुछ तिब्बत में प्राप्त हुये। यद्यपि तन-जुर में अनुवादित अपभ्रंश के छोटे मोटे ग्रन्थों की संख्या सौ से अधिक है लेकिन उनका मूल शायद अब मिल नहीं सकता। लेकिन स्वयंभू, देवसेन, पुष्पदंत, जोगींदु, रामसिंह, धनपाल,

हरिभद्रसूरि कन-कामर, जिनदत्तसूरि आदि बहुत से प्रतिभाशाली अपभ्रंश कवियों के महाकाव्यों और काव्य-साहित्य की रक्षा करके अपभ्रंश-साहित्य के अब भी अवशिष्ट विशाल कलेवरको हमारे सामने रखनेका काम जैन ग्रन्थ-रक्षकोंने ही किया। यही नहीं कि उन्होंने अपभ्रंश के पद्य-साहित्य का काफी भंडार सुरक्षित रक्खा बल्कि उनके गद्य के नमूने भी पुरने जैन भंडारोंमें मिले हैं खोज करनेपर वह और भी अधिक मिल सकते हैं।

जनता की भाषा हमारे देश में जिस तरह बदलती गई उसी तरह उसकी शिक्षा और स्वाध्याय के लिये नई भाषाओंमें धार्मिक-साहित्य तैयार करनेकी आवश्यकता पड़ी। यद्यपि ब्राह्मण धर्म ने संस्कृतको ही सदा प्रधानता दी, तो भी पालि-प्राकृत और अपभ्रंश कालमें ब्राह्मणधर्मी धार्मिक-साहित्य भी अवश्य कुछ बना होगा लेकिन जान पड़ता है उसके साथ वैसा ही बरताव किया गया जैसे अछूतके मौत पर किसी उपेक्षित साथ करते हैं। यही कारण है जो कि तुलसी सूर कबीर, विद्यापतिके पीछे जानेपर हमें अन्धकार दिखाई पड़ता है। बौद्ध तेरहवीं सदी में ही यहां से विदा हो गए लेकिन उनके अपभ्रंश ग्रन्थों का जो अनुवाद तिब्बती भाषा में मिलता है। उससे मालूम होता है कि जैनों की तरह उनके पास भी अपभ्रंश का काफी बड़ा भंडार रहा होगा। तो भी वह जैनोंके बराबर रहा होगा इसमें सन्देह है क्योंकि महायानने ब्राह्मणों की तरह संस्कृत को प्रधानता दे रक्खी थी और चौरासी सिद्धोंकी परंपरा ही लोक-भाषा पर जोर देती थी। जैन भण्डारों में

अपभ्रंश भाषा में लिखे गये प्रत्यौहारों के लिए व्रत और माहात्म्य अपभ्रंश में लिखे गये अब भी मिलते हैं। इससे यही पता लगता है कि लोक शिक्षाके लिये कम से कम धार्मिक क्षेत्रमें जैन धर्माचार्यों का बराबर ध्यान रहा, कि अर्धमागधी और प्राकृत से अपरिचित जैन गृहस्थ नर नारियोंके लिए उनकी भाषा में ग्रन्थ लिखे जाय। जब अपभ्रंश भाषा परिवर्तित होकर आधुनिक भाषाओंके प्राचीन रूप में आदर में शुरू हुई तो उन्होंने इस भाषा में भी लिखना शुरू किया। यदि खोज की जाय तो अपभ्रंश काल के आरंभ (७ वीं-८ वीं सदी) के बाद हिन्दी भाषी-क्षेत्रकी साहित्यिक भाषा का विकास किस तरह हुआ इसके उदाहरण आसानी से प्रति शताब्दी और लगातार मिल सकेंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक हमारी दृष्टि सम्प्रदायों से बाहर नहीं जाती इसीलिये जैन कवियों और साहित्यकारों की देन हिंदी के विद्वानों के लिये भी अछूत पोथी सी है।

मुनि ज्ञानसार उसी परंपरा के रत्न थे जिन्होंने श्रमण महावीर और बुद्ध के समय से ही लोक शिक्षाके लिये लोकभाषा को प्रधानता दी और उसमें हर काल में सुन्दर रचनायें कीं। ज्ञानसार के बारे में बहुत कुछ आगे लिखा गया है और स्वयं उनकी कृतियों से भी बहुत-सी बातें मालूम हो सकती हैं इसलिये उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि वह उस समय हुए, जब कि अंग्रेज अपने पैरोंको भारत में मजबूत कर रहे थे। पलासी के निर्णायक-युद्ध में अंग्रेजोंने जब अपने शासनको दृढ़ किया उस समय ज्ञानसार (या नारायण जैसा कि पहले उन्हें कहा जाता था) तेरह बरस के

हो चुके थे। उनके गुरुओंने जिस भारतको देखा था, ज्ञानसार के सामने वह दूसरे ही रूप में आया। म्लेच्छ मुसलमानों का शासन खतम हो रहा था और महाम्लेच्छ अंग्रेज अब उनकी जगह ले रहे थे। ज्ञानसार यद्यपि राजस्थान में पैदा हुये थे। १८ वी सदी में यात्रा सुविधा की नहीं होती थी किन्तु उनको साधुदीक्षा लेने के बाद यात्रा करने का काफी मौका मिला। वह हिन्दी भाषी क्षेत्र से बाहर गुजरात-काठियावाड़ अनेक बार गये इसमे कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि दोनों पड़ोसी प्रदेशों राजस्थान और गुजरात की सीमा निर्धारित करना बहुत समय तक कठिन रहा। आज भी इसी अनिश्चयका परिणाम हुआ राजस्थान के आबूका अजरवर्ती भूभाग गुजरात में मिला दिया जाना। मुनि ज्ञानसार पूर्व मे बंगाल तक गये। उस समय यात्राओं के सुन्दर वर्णन की कोई कदर नहीं थी जिसके कारण ही सैकड़ों अद्भुत साहसी यात्रियों और घमक्कड़ोंको पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त करने पर भी हमारा देश यात्रा-साहित्य से वंचित रह गया। उनके वर्णन से मालूम होता कि देश विदेश के भिन्न भिन्न रीति रिवाजों और स्वरूपोंके देखनेके लिये उनके पास कितनी पैनी बुद्धि थी। पूर्व देश उन्हें पसन्द नहीं आया यह तो उनके इस वचन से ही मालूम होता है—

पूरब मति जाज्यो पच्छिम जाज्यो दक्षिण-उत्तर हो भाई।

पश्चिम दक्षिण और उत्तर जानेमें उनको आपत्ति नहीं थी फिर भी पूर्व के ऊपर ही इतना रोष क्यों? यदि पूर्व (बंगाल) मैं मछली-मांस खानेका बहुत रिवाज था, तो पश्चिम (पंजाब) में क्या अभक्ष्य की कमी थी? चाहे मुनि ज्ञानसार की

अप्रकाशित रह जाना भी अच्छा नहीं है। मैंने इन्हें कहा था कि शहरशहर और मारवाड़शाह के सहारे हर एक महत्वपूर्ण सामग्री की सौ सौ प्रतियां निकलवाकर यदि देश विदेश के जिज्ञासु विद्वानों और विद्यापीठोंके पास भेज दें तो बड़ा काम हो। हमारे विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और स्नातकों का भी कुछ कर्तव्य है। डाक्टरेट के लिये एक ही विषय को घुमा-फिराकर निबंधका विषय बनाया जा रहा है। विद्यार्थी और पथप्रदर्शक शार्ट चाहते हैं कि हल्दी लगे न फिटकिरी रंग चोखा आवे। अनुसंधान करनेके लिये यह कष्ट उठानेको तैयार नहीं। यदि प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध जैन भण्डारोंकी सामग्री के अनुसंधान करने की प्रेरणा दी जाय तो सुगमता से बहुत से अनमोल रत्नोंका पता और मूल्यांकन हो जाय। यह स्मरण रखना चाहिये कि पाटन और जैसलमेर के भण्डारों में प्राचीन दुर्लभ बहुमूल्य ग्रन्थ हैं ही किन्तु हमारे वर्तमान भाषाओंके सम्बन्धकी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री आगरा कालपी लखनऊ जैसे नगरों के साधारण से समझे जानेवाले जैन-पुस्तकागारों में भी है। यदि उत्तर-प्रदेश के चार भाषा विभागों अवधी बुन्देली ब्रज और कौरवी के क्षेत्रोंके जैन पुस्तकागारों के सविवरण सूचिपत्र तथा अन्य विशेषतात्मक निबन्ध लिखने के लिये डाक्टरेट की इच्छा रखने वाले चार तरुणों को लगा दिया जाय तो उनसे बहुत काम होगा।

मसूरी ३-८-५७ राहुल सांकृत्यायन

किञ्चित् वक्तव्य

श्रीमद् ज्ञानसारजी के साहित्यसे हमारा सम्बन्ध विद्यार्थीकाल से है। लगभग ३० वर्ष पूर्व हमारी धर्मनिष्ठा पूजनीया मातुश्री ने श्रीमद् की आत्मनिन्दा संबंधक रचना सुनने की इच्छा प्रकट की। अतः हमने उनको सुनाने की सुविधा के लिए प्रकाशित पुस्तक में से उसकी एक कापीमें नकल की थी। वह कापी आज भी हमारे पास विद्यमान है।

सं १९८४ की वसन्तपंचमी को जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी बीकानेर पधारे और हमारी कोटड़ी में उनका चातुर्मास हुआ उनके सम्पर्क से जैनतत्त्वज्ञान और साहित्य की ओर हमारी अभिरुचि विकसित हुई। समय समय पर सूरिजी से श्रीमद् ज्ञानसारजी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती रहती थी। एक बार आपने अपने ज्ञानभंडार में श्रीमद् के मालापिंगल की प्रति के सम्बन्ध में पोथी संख्या और पत्रांकों की संख्या सूचित करने के साथ साथ अंतिम पत्र के कुछ फटे हुए होने का भी निर्देशकर अपनी ३० वर्ष पूर्व की स्मृति की झांकी दी। मालापिंगल नाम बड़ा आकर्षक था। हमने आपकी सूचनानुसार उक्त पोथी खोज कर प्रति देखी। सूरिजी ने इसके बाद श्रीमद् के गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन की वह कड़ी भी हमें सुनाई थी जिससे उनके ९८ वर्ष की उम्र तक विद्यमान रहने की सूचना मिली थी।

तदनंतर साहित्य शोध के लिए स्थानीय ज्ञानभंडारोंका निरीक्षण करते हुए श्रीमद् की अन्य कृतियां भी अवलोकन में

आयी। इससे हमारा आपकी रचनाओं के प्रति आकर्षण बढ़ा और प्राप्त समस्त कृतियों की प्रेसकापी की जाने लगी। श्रीजिन कृपाचन्द्रसूरिजी के पूर्वजों से श्रीमद् ज्ञानसारजी का आत्मीय सा सम्बन्ध था अत उनके ज्ञानभंडार म हमें श्रीमद् की प्राय समस्त रचनाओं का सुन्दर प्रतिम प्राप्त हुई।

साहित्यान्वेषण के साथ-साथ हमारा ध्यान कूड़े कचरे में डाले जाने वाले प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधि के समह की ओर भी गया। बड़े व्ययमय के बाड़े में फैले हुए हस्त-लिखित प्रतियों के अस्त-व्यस्त पत्रों को टोकरी व बोरों ग भर कर खरीद किये गये। उनकी छंटाई करने पर श्रीमद् के अनेक ग्रन्थों की स्वलिखित पांडुलिपियें प्रासंगिक गरखे, श्रीमद् का दिये महाराजाओंके आसरफ्रो श्रीपूज्या के आदेशपत्र व प्रशसात्मक फुटकर विवीध पत्रादि विपुल सामग्री की उपलब्धि हुई। इसी कचरे में से श्रीमद् के जीवनचरित्र के छोटे बाड़े या लघु पत्र भी हमें प्राप्त हुए जिनमें से एक तो करीब ९।। इंच लम्बा और १।। इंच चौड़ा ही था। बहुत खोज करने पर और बड़ी-बड़ी पुस्तकों में भी जिस वस्तु की प्राप्ति सम्भव न हो कभी कभी वह ऐसे कूड़े कचरे में डाले हुए छोटे से पुर्जे में मिल जाती है। साधारणतया ऐसे पत्रों का महत्व नहीं दिया जाता। पर न मालूम कितने ही हजारों लाखों पत्र जिनसे ऐतिहासिक सामग्री की अनमोल सूचनाऐं मिलती है हमारी अज्ञानता व असावधानता के कारण नष्ट हो चुके है।

सयोग की बात ७ वर्ष पूर्व जिन प्रतियों की प्रेसकापियां तैयार की गयी थी वे इतने लंबे काल तक अप्रकाशित अवस्था

में ही पड़ी रही। इसी बीच श्रीमद् का साहित्य प्रकाशनार्थ व्यवस्था सोचा गया पर तब तक काल परिपाक नहीं हुआ था। हम उसे गद्दी में छोड़कर बीकानेर चले गये और पीछे से मूषकों ने उसे अपना भक्ष्य बनाना प्रारम्भ कर दिया। हमने वापस आ कर देखा तो उसके बहुत से पृष्ठ तो खाकर कातर हो गये थे कुछ रचनाएँ किनार से खंडित अवस्था में मिलीं। हमें अपनी असावधानी और गणेशवाहन की करतूत पर अत्यन्त खेद हुआ। इस घटना को भी लगभग १५ वर्ष बीत गये प्रकाशनकी व्यवस्था न हो सकी। पर अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में श्रीमद् के जीवन सम्बन्धी छाहे श्रीमद के हाथ से लिखे हुए एक स्तवन और आप के चित्र का ब्लाक बनवाकर प्रकाशित कर दिया था।

हमारे साहित्यिक शोध के प्रारंभिक समय में कविवर समयसुन्दर सम्बन्धी निबन्ध कार्य के उत्तर प्राप्त करने के लिए शाह से जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई से हमारा सम्बन्ध स्थापित हुआ और वह क्रमशः बढ़तर होता गया। हमारे द्वारा बीकानेर के ज्ञानभंडारों की विपुल साहित्य और हमारे संग्रह की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों की सूचना पाकर श्रीयुत देसाई बीकानेर पधारने के लिए उत्कंठित हो उठे। कभी भाग्योदय के पश्चात् लगभग १० वर्ष पूर्व उनका बीकानेर पधारना हुआ तो उन्होंने अपने प्राप्त श्रीमद् ज्ञानसारजी के पदोंकी एक सुन्दर प्रति की सूचना दी तो हमने अपने संग्रह किये हुए पद समूहकी प्रेसकापी उन्हें दिखलायी। आप श्रीमद्के पदोंकी मार्मिकतासे पहले से ही प्रभावित थे और सम्भवतः प्राप्त प्रति की प्रेसकापी भी थे कर चुके थे अतः हमारी प्रेसकापी भी वे जाते समय साथ ले गये

और श्रीमद् के समस्त पत्रों का सम्पादन कर दिया। अध्यात्म-ज्ञान प्रसारक मंडल की ओर से उसके प्रकाशन की बात भी चली। हमारे मित्र श्री० मणिलाल मोहनलाल पादराकर प्रेस में देने के लिए उनसे प्रेसकापी भी ले गये पर दुर्भाग्यवश वह प्रकाशित न हो सकी। देसाई जी का सम्पादित श्रीमद् के पत्र समूह का संस्करण अवश्य ही महत्वपूर्ण होता पर खेद है कि उनके स्वर्गवास के अनंतर उनका संग्रह बहुत अस्तव्यस्त हो गया अतः बम्बई जाकर बचे हुए समूह का अवलोकन करने पर भी वह प्रेसकापी न प्राप्त हो सकी संभवतः रद्दी कागजों में वह नष्ट हो गई होगी। जिस समूह के लिए स्वर्गीय देसाई ने अपना जीवन लगा दिया था और रात को १२ और दो-दो बजे तक कठिन परिश्रम कर सैकड़ों नोट्स एवं प्रेसकापियें तैयार की थी उसकी ऐसी दुरवस्था देखकर हृदय को बड़ा ही परिताप होता है। योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में साहित्यिक विद्वानों के किए हुए परिश्रम यों ही बेकार हो जाते हैं।

लगभग ८-९ वर्ष पूर्व पूज्य श्रीमद्‌गुप्तिजी महाराजने अध्यात्मिक साधना की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए श्रीमद् की रचनाओं को अवलोकनार्थ हम से मंगवाया और उनका स्वाध्यायकर उन्हें प्रकाशन की विशेष रूप से सूचना करते हुए आर्थिक सहायता का प्रबंध भी कर दिया। तदनुसार तीन वर्ष पूर्व यह ग्रंथ प्रेस में दे दिया पर प्रेस की असुविधादि के कारण यह ग्रंथ इतने लम्बे अरसे से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य भद्रमुनिजी ने इसमें रही हुई अशुद्धियों और प्रकाशन विलंब के लिए हम मीठे उपालंभ भी दिये पर हम विवश थे। पहले ग्रंथ छोटे रूप में

ही प्रकाशन का विचार था अतः प्रथम ग्रन्थ सहाय की स्वीकृति देने वाले सज्जन ने ८००) से अधिक देने की अनिच्छा जाहिर की तब पूज्यश्री ने गण्डूर निवासी सा० मेरामचन्द्र नेमचन्द्र को सूचित कर पूरे ग्रन्थ की सहायता के लिए भी तैयार कर दिया। इधर हमारा भी लोभ बढ़ता रहा और ग्रन्थ काफी बड़ा होता गया। फिर भी श्रीमद् की रचनाओं का यह एक ही भाग है और इसमें मुख्यतः अध्यात्मिक रचनाओं का ही समह किया गया है। श्रीमद् की स्तवनादि और श्रेणादि इतर विषयक अन्य रचनाओं का लगभग इतना ही समह अभी हमारे पास और पड़ा है। इन अप्रकाशित रचनाओं में श्रीमद् की साहित्यिक प्रतिभा की झांकी अधिक रूप से सन्निहित है।

हमारा विचार जीवनचरित्र के साथ श्रीमद् को दिये हुए खास (राजा भोंसले स्वय लिखित) रुक्कों की पूरी नकलें देनेका भी था पर जीवनी बहुत लम्बी हो जाने से इस विचार को स्थगित रखना पड़ा। श्रीमद्की अध्यात्मिक रचनाओं में योगिराज आनन्दघनजी की चौबीसी पर बालावबोध बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसे प्रकाशित करना भी नितान्त आवश्यक है पर स्वतंत्र पुस्तक जितना पड़ा होने के कारण इस संग्रहमें सम्मिलित नहीं किया जा सका। हर्ष का विषय है कि इसका विशेष रूप से उपयोग करतेहुए हमारे मित्र जयपुर के जौहरी श्री उमरावचन्द्र जी जरगड़ ने आनन्दघनजी की चौबीसी पर आधुनिक ढंग का विवेचन लिखा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

हमें खेद है कि ग्रन्थ में बहुतसी अशुद्धियां रह गयीं पूज्य श्रीभद्रमुनिजी (आजकल-सहजानन्दजी)महाराजने इसका शुद्धिपत्र

अनुक्रमणिका

१ चौवीसी

२ विहरमान वीसी

३ पद्मसरी पद संग्रह

आदिपद	पृष्ठ संख्या

आदिपद	पृष्ठ संख्या

५ आध्यात्मिक पद संग्रह

आदिपद		पृष्ठ संख्या

६ स्तवनादि भक्ति पद संग्रह

७ दादा गुरु स्तवन

आदिपद		पृष्ठ संख्या

६ स्तवनादि भक्ति पद संग्रह

७ दादा गुरु स्तवन

अभय जैन ग्रन्थमाला के प्रकाशन

१—अभयरत्नसार	अप्राप्य
२—पूजा संग्रह	"
३—सती मृगावती	"
४—विधवा कर्तव्य	"
५—स्नात्र पूजादि संग्रह	"
६—जिनराज भक्ति आदर्श	"
७—संघपति सोमजी साह	
८—युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि	"
९—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	"
१०—दादा श्रीजिनकुशलसूरि	=॥)
११—मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि	॥)
१२—युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि	।)
१३—ज्ञानसार ग्रन्थावली	१)
१४—बीकानेर जैन लेख संग्रह	१॥)
	छप रहा है

प्राप्ति स्थान—

नाहटा ब्रदर्स

४ जगमोहन मल्लिक लेन

कलकत्ता—७

श्रीमद् ज्ञानसारजी वाचक अमरकीर्ति एवं संचलजीके साथ

श्रीमान् धनेशमलजी श्रीचन्दजी गोलेछा
जयपुर वालों की ओर से भेंट॥
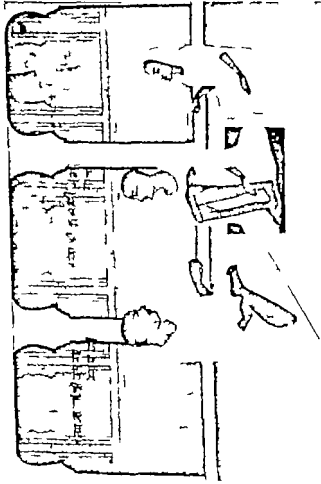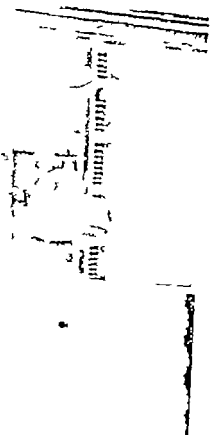
योगिराज श्रीमद् ज्ञानसारजी

सन्त पुरुष मानव समाज के पथ प्रदर्शक होते हैं। विश्व के प्राणियों को उनकी अनुपम देन प्राप्त होती रहती है। उनका साधनामय जीवन मानव-समाज के जीवन-निर्माण व उत्थान के लिए आदर्श दीपस्तम्भरूप होता है। उनके दर्शन मात्र से भव्य जीवों के हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनकी प्रशान्त मुद्रा से व्यथित हृदय में भी शान्ति का अनुभव होता है। मानव ही नहीं उनकी करुणा व कृपा का स्रोत तो पशु-पक्षी आदि अबोध प्राणियों पर भी समान प्रवाहित होता है तभी तो योगी के लिये भगवान् पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में कहा है कि 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"। उनके विश्वप्रेम की अनुपम भावना से प्रभावित होकर सिंह और बकरी भी अपने स्वाभाविक वैरभाव को त्याग कर एक घाट पानी पीते हैं। क्रूर से क्रूर प्राणी भी उनके प्रभाव से निरीह बन जाते हैं। सन्तों का पवित्र जीवन स्वयं कल्याणमय होने के साथ साथ दूसरों के लिए भी कल्याणकारी होता है। उनकी वाणी में जादू का सा असर होता है जिसके श्रवण और स्वाध्याय से जिज्ञासुओं के हृदय में अपूर्व आनन्द का स्रोत बहता है। और

वस्तुस्वरूप का ज्ञान होकर अकरणीय कार्यों को त्याग एवं आत्मोत्थान-पथगामी होने की अनुपम प्रेरणा मिलती है। संतों के सत्संग का बड़ा भारी माहात्म्य है। महाकवि तुलसीदासजी के शब्दों में—

"एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की कटै कोटि अपराध॥"

सन्तों का क्षणमात्र का समागम एक भव का नहीं अनेकों भवों के पापों का नाश कर देता है।

चिर अभ्यास के कारण मन सदा बाह्य पदार्थों एवं इन्द्रियों के विषयों को ही प्रिय एवं सुखदाता समझकर उन्हीं में फंसा रह आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर नहीं होता। शमरस के आनन्द का अनुभव न होने के कारण ही स्वाधीनसुख न मिलने पर भी मन पर पौद्गलिक विषयों की ओर धावित रहता है।

यदि च विद्वानों के मतानुसार सबसे अधिक सुखमय शृंगार रस सम्मत हो परन्तु वस्तुतः शान्तरस का अनुपम आनन्द अनिर्वचनीय है। शृंगाररस उसकी कोटि में नगण्य सा ही है। जिसने शम की अनुभूति प्राप्त की है, वही उस अनिर्वचनीय आनंद को समझ सकता है।

सन्त पुरुषों ने अपनी साधना द्वारा जो अध्यात्मज्योति रूप अमृत स्रोत निकाला, वह सचमुच अनुपम था। अभाग्य कि विरल व्यक्तियों ने ही उनके प्रसाद से उस अमृतरस का यत्किंचित् आस्वादन प्राप्त किया है।

सन्तों की वाणी अनुभव प्रधान होने से, बहुत ही प्रभावोत्पादक और हृदयस्पर्शी होती है। इस भौतिकता में राग मुग्ध व्यक्तियों में

नवचेतना आती है। ज्यों ज्यों उस वाणी का अवगाहन किया जाता है वह जिज्ञासु को आनंद विभोर कर देती है अध्येता परमानंद रसमें सराबोर हो जाता है। सन्त का भौतिक देह तो प्रकृति धर्मानुसार समय आने पर विलीन हो जाता है, पर उनका अक्षर देह युगयुगान्तरों तक जीवन सन्देश देता रहता है, जिससे आध्यात्मिक जीवन-स्तर ऊंचा उठता रहता है। सन्त और सन्तवाणी के सदृश मानव के लिए उत्तम कल्याणपथ अन्य नहीं है। अतः इस क्षयंगम करते हुए जब कभी व जहाँ कहीं भी सन्त का संयोग मिल उससे लाभ उठाना चाहिये एवं सन्तवाणी का तो नित्य व निरंतर स्वाध्याय कर आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना चाहिये।

वैसे तो विश्व के प्रत्येक देश व प्रान्तमें सन्तों का प्रादुर्भाव होता है, फिर भी भारतवर्ष आध्यात्मप्रधान देश होने से यहाँ सन्तों का आविर्भाव प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसके एक छोर से दूसरे छोर तक आज भी सन्त महात्मा उपलब्ध होते हैं। ऐसी अवस्था में भारत संतों की लीलाभूमि है—यह दें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ये सन्त किसी देश जाति या सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं किन्तु व सार्वजनिक निधिरूप हैं।

भारत में प्राचीनकाल से सन्तों की एक अक्षुण्ण परम्पराए चली आती हैं। उनमें साधना प्रणाली प्रत्येक की पृथक् पृथक् दृग्गोचर होती हैं पर साध्य सबका एक ही प्रतीत होता है। प्रारम्भमें विचारभेद और क्रियाभेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है पर आगे चलकर वह नष्ट हो जाता है और मुख्य ध्येयका एकीकरण हो जाता है। इसलिये तो कहा गया है कि—"एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"।

वस्तुस्वरूप का ज्ञान होकर अकरणीय कार्यों को त्याग एवं आध्या-त्म-पथगामी होने की अनुपम प्रेरणा मिलती है। संतों के संयोग का बड़ा भारी माहात्म्य है। महाकवि तुलसीदासजी के शब्दों में—

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की कटे कोटि अपराध॥"

सन्तों का क्षणमात्र का समागम एक भव का नहीं, अनेकों भवों के पापों का नाश कर देता है।

चिर अभ्यास के कारण मन सदा बाह्य पदार्थों एवं इन्द्रियों के विषयों को ही प्रिय एवं सुखदाता समझकर उन्हीं में फँसा रह आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर नहीं होता। शमरस के आनन्द का अनुभव न होने के कारण ही स्वाधीनसुख न मिलने पर भी मन पर पौद्गलिक विषयों की ओर धावित रहता है।

यद्यपि विद्वानों के मतानुसार भले ही क्षणिक सुखमय शृंगार रस रसराज हो परन्तु वस्तुतः शान्तरस का अनुपम आनन्द अनिर्वच-नीय है। शृंगाररस उसकी कोटि में नगण्यसा ही है। जिसने शम की अनुभूति प्राप्त की है वही उस अनिर्वचनीय आनंद को समझ सकता है।

सन्त पुरुषों ने अपनी साधना द्वारा जो अध्यात्मज्योति रूप अमृत खोज निकाला वह सचमुच अनुपम था। अध्यात्म प्रेमी विरल व्यक्तियों ने ही उनके प्रसाद से उस अमृतरस का यत्किंचित आस्वादन प्राप्त किया है।

सन्तों की वाणी अनुभव सम्पन्न होने से, बहुत ही प्रभावोत्पादक और हृदयस्पर्शी होती है। वह मोहनिद्रा में मग्न सूते व्यक्तियों म

नवचेतन्य आती है। ज्यों ज्यों उस वाणी का अवगाहन किया जाता है वह जिज्ञासु को आनंद विभोर कर देती है अन्वेषक परमानंद रसमें सराबोर हो जाता है। सन्त का भौतिक देह तो प्रकृति धर्मानुसार समय आने पर विलीन हो जाता है, पर उनका अक्षर देह युग युगान्तरों तक पावन सन्देश देता रहता है, जिससे आध्यात्मिक जीवन-स्तर ऊंचा उठता रहता है। सन्त और सन्तवाणी के सदृश मानव के लिए उत्तम कल्याणप्रद अन्य नहीं है। अतः इसे हृदयंगम करते हुए जब कभी व जहाँ कहीं भी सन्त का संयोग मिले उससे लाभ उठाना चाहिये एवं सन्तवाणी का तो नित्य व निरंतर स्वाध्याय कर आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना चाहिये।

वैसे तो विश्व के प्रत्येक देश व प्रान्तमें सन्तों का प्रादुर्भाव होता है, फिर भी भारतवर्ष आध्यात्मप्रधान देश होने से यहाँ सन्तों का आविर्भाव प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसके एक छोर से दूसरे छोर तक आज भी सन्त महात्मा उपलब्ध होते हैं। ऐसी अवस्था में भारत संतों की लीलाभूमि है—कह दें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ये सन्त किसी देश जाति या सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं किन्तु व सार्वजनिक निधिरूप हैं।

भारत में प्राचीनकाल से सन्तों की कई अजस्र परम्पराएं चली आती हैं। उनमें साधना प्रणाली प्रत्येक की पृथक् पृथक् दृष्टिगोचर होती है पर साध्य सबका एक ही प्रतीत होता है। प्रारम्भमें विचारभेद और क्रियाभेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है पर आगे चलकर वह नष्ट हो जाता है और सुलभ ध्येयका एकीकरण हो जाता है। इसलिये तो कहा गया है कि—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"।

भारतीय सन्त परम्परा का इतिहास बहुत विस्तृत है। इनमें प्रधानतया दो परम्पराएं हैं एक वैदिक परंपरा और दूसरी श्रमण परंपरा। वैदिक परंपरा में अन्य सम्पूर्ण सन्त परंपराओं का समावेश हो जाता है और श्रमण परंपरा में जैन एवं बौद्ध परंपराओं का। इन परंपराओं में समय समय पर अनेकों भेद हो गये और कई नवीन परंपराओं का प्रादुर्भाव भी होता रहा है।

अपभ्रंश काल में सन्त साहित्य की प्रधानतया दो धाराएं प्रवाहित पाती हैं, (१) सिद्धों और नाथपंथियों की, एवं (२) जैनों की। फिर भक्तिकाल में भक्तिवाद में जोर पकड़ा, और तीसरी भक्तिमार्गी सन्त परम्परा कायम हुई। यह भक्तिधारा अल्प समय में ही अत्यधिक विस्तृत हो गई। भक्ति अध्यात्म की सहचारिणी है स्वभावतः भक्ति का अध्यात्म पर प्रभाव भी परिलक्षित होता है। ये दोनों अध्यात्म और भक्ति धाराएँ अत्यधिक निकटवर्ती होने से इनका सामञ्जस्य—एकीकरण हो ही जाता है।

हिन्दी साहित्य के उत्थान और भाषा के विकास का बहुत बड़ा श्रेय इन सन्तों को ही प्राप्त है। सन्तों की वाणी राष्ट्र के इस छोर से उस छोर तक प्रचारित होने के कारण ही हिन्दी प्रान्तीयता से ऊपर उठकर साहित्य की परिमार्जित भाषा बनती हुई राष्ट्र भाषा पद पर आसीन हो सकी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन सन्तों का भी महत्वपूर्ण भाग रहा है। दोहापाहुड, परमात्मप्रकाशादि ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य में जैन संत साहित्य की परंपरा प्रारंभ होती है। १७ वीं शताब्दि से अब तक की हिन्दी जैन

साहित्य का सत्ता समझा जाय तो वह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा।

कबीर आदि संतों के पदों का तथा तत्कालीन वातावरण का प्रभाव जैन सन्तों पर अत्यधिक लक्षित होता है। जिन जैनों कवियों की मातृभाषा गुजराती व राजस्थानी थी, तथा जिन्होंने अपनी अनेकों रचनाएं अपनी मातृभाषा में की उन सन्तों ने भी पद साहित्य के लिए हिन्दी भाषा को ही चुना और उसी में रचनाएं की फलतः जैन कवियों के हजारों की संख्या में भक्ति एवं आध्यात्मिक पद हिन्दी भाषा में उपलब्ध हैं। ये पद बहुत ही उद्बोधक और हृदयस्पर्शी हैं कलापक्ष एवं भावपक्ष उभय दृष्टि से बहुमूल्य हैं। कई कवियों के पद संग्रह तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। बनारसीदास द्यानन्द धानत, भूधर आदि दि० एवं श्वे० समय सुन्दर, जिनराजसूरि, आनंदघन यशोविजय, विनयविजय ज्ञानवर्द्धन ज्ञानसार, ज्ञानानन्द चिदानन्द आदि पचासों जैन कवियोंके गेय पद हिन्दी भाषामें प्राप्त हैं। पर खेद है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं रीतिकाव्य सम्बंधी बड़े बड़े लेखों व ग्रन्थों में इन जैन संतों का कहीं भी नाम निर्देश तक प्राप्त नहीं होता। अतः विद्वत्समाज से अनुरोध है कि वह इन सन्त कवियों के साहित्य का अध्ययन कर हिन्दी साहित्य के इतिहास व रीतिकाव्य सम्बन्धी ग्रन्थों में उचित स्थान अवश्य दें। अन्यथा इतिहास सर्वाङ्गीण न हो सकेगा।

हिन्दी सन्त साहित्य का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सुन्दरदासादि थोड़े से सन्तों को छोड़कर अधिकांश सन्त साधारण पढ़े लिखे ही थे, परन्तु उनके साहित्य में, साधनामय जीवन के

आदर्श भावों की अभिव्यक्ति तो सुन्दर ढंग से हुई है पर काव्य की दृष्टि से वह उच्चकोटि का नहीं मालूम देता। इधर जैन सन्त, साधनाशील होने के साथ साथ उच्चकोटि के विद्वान भी थे, अतः कविता की दृष्टि से भी उनकी रचनायें निम्नस्तर की नहीं हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे ही एक अध्यात्मप्रधान योगी जैनकवि के रचनाओं के संग्रह का प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है जो उच्चकोटि के योगी व सन्त होने के साथ काव्यमर्मज्ञ विद्वान भी थे, अतः के पूर्व उन्हीं की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करेंगे।

जन्म राजस्थानवर्ती प्राचीन जांगल देश की राजधानी जांगलू बीकानेर राज्य का एक अतिप्राचीन स्थान है। यहां से पांच मील की दूरी पर स्थित केलोवास में उन दिनों जैनों की अच्छी बस्ती थी। अब तो लोग यहांसे उठकर देशनोक आदि स्थानोंमें जाकर बस गये हैं। ओसवाल जाति के सांड गोत्रीय सेठ अनूपचन्द जी यहां

---

१ जांगलू में एक जैन मन्दिर तथा सन्त जांभाजी का प्राचीन स्थान है। सम्वत् ११६१ का एक अभिलेख हुए पर तथा सिराजम के सामने है। बीकानेर के श्री चतुर्भुज जिनालय तथा चिन्तामणि जी के मन्दिर में विराजमान प्रतिमाओं के परिकरोत्कीर्णित अभिलेखों से मालूम होता है कि यहां भगवान महावीर का विधिचैत्य था और उस जिनालय में सं० ११७६ माघ वदि ६ के दिन ठाकुर मानक के पुत्र सिद्धप ने शान्तिनाथ बिम्ब की स्थापना की थी। दूसरा लेख इसी तिथी का जयपुर से सम्बन्धित है। यह जयपुर भी जांगलू का ही उपनगर था। जांगल स्थित जिनालय के सामने वाले लेख में भी जयपुर नाम पाया जाता है।

निवास करते थे, जिनकी धर्मपत्नी का नाम जीवणदेवी था। सं० १८०१ में आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिनका नाम नारायण, नराण या नारायण रखा गया जो आगे चलकर नराणजी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए[२]। ज्ञानसार इन्हीका दीक्षा नाम था।

शिक्षा संवत् १८१२ में मारवाड़ में भयंकर दुष्काल पड़ा था। जिसका वर्णन "बांडो काल बारोत्तरो" के नाम से प्राचीन साहित्य में मिलता है। मनुष्यजीवन सुकाल में ही सुखमय होता है, दुष्काल में नहीं[३] अतः माता-पिता की विद्यमानता या अविद्यमानता[३] में आप ग्रामका परित्याग करके सामन्त-सुखप्र बीकानेर नगर में आये और सर्वप्रथम बड़े उपाश्रय में विराजमान श्रीजिनलाभसूरिजी[४] महाराजकी चरण-सेवा में उपस्थित हुए। सूरिजी महाराज ने आपकी सम्याकृति तथा विलक्षण बुद्धि देखकर भावक-बालक होने के नाते विद्याध्ययन के लिए विशेष प्रेरणा की और व्यवस्था का सारा भार स्वीकार कर अपने तत्त्वावधान में रख लिया।

---

२ देखिये हमारे 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में प्रकाशित "ज्ञानसार गुणवर्णन दोहे"।

३ प्रमाणाभाव से निश्चित नहीं कहा जा सकता।

४ बीकानेर राज्य के बापेऊ गांव में बोथरा पन्नालालदास की धर्मपत्नी पद्मादेवी की कुक्षी से सं १७८४ भा सु ५ के दिन आपका जन्म हुआ। जन्म नाम लालचन्द था। सं १७९६ ज्येष्ठ सुदि ६ जैसलमेर में श्रीजिनभक्तिसूरिजीसे दीक्षित हो लक्ष्मीलाभ नाम पाया। सं १८०४ ज्येष्ठ शुक्ला ५ के दिन श्रीजिनभक्तिसूरिजी ने मांडवीबंदरमें आपको आचार्य पद पर स्थापित किया। आपने बहुतसे जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठायें की तथा अनेक देशोंमें विहार किया था। सं १८१९ ज्येष्ठ वदि ५ को ७५ मुनियों सहित श्रीगौडीपार्श्वनाथ यात्रा सं

सूरि महाराज पाडुव ग्राम में पधारे। स्मरण रहे कि श्रीजिनलाभ सूरिजी महाराज पैदल विहारी थे और समयानुसार संयम में प्रवृत्त रहते हुए विचरते थे। हमारे चरित्रनायक को भी इनके साथ रहते ६ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था, इसी बीच व्याकरण, काव्य कोष, छंद, अलंकार, आगम, प्रकरणादि का अभ्यास भी उच्चकोटि का कर चुके थे और दीक्षा के योग्य २१ वर्ष की परिपक्व अवस्था प्राप्त थे अतः सूरि महाराजने निश्चय कर शुभ मुहूर्तमें सं० १८२१ के मिती माघ शुक्ल ८ के दिन सिद्धियोग में पाडुव गांवमें आपने दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के अनंतर सूरिजी ने आपका गुणनिष्पन्न नाम 'ज्ञानसार' रखा और प्रथम अपना शिष्य बनाया पश्चात् अपने शिष्य श्री रत्नराज गणि (रायचंदजी) के शिष्यरूप में इनकी प्रसिद्धि की।

आचार्य श्री के साथ विहार

दीक्षा के पूर्व ६ वर्षों तक आपको आचार्यश्री की निश्रा में रहने का सुयोग मिला था इसी बीच आपने अनेक तीर्थों की यात्रा भी की थी जिनमें सं० १८११ ज्येष्ठ वदि ६ को गोगोड़ी पादयात्रा उल्लेखनीय है। दीक्षा के अनन्तर मिती फाल्गुन शुक्ला १ को आपने सूरिजी के साथ श्री आबू महातीर्थकी यात्रा की। तदनन्तर सेजपुरे, बारिया रहकर रोहीठ, मण्डोवर, जोधपुर, सिवरी होकर सं० १८२२ में मेड़ते में चातुर्मास बिताया। चातुर्मास के अनन्तर सूरि महाराज जयपुर पधारे। श्री संघ के हर्ष का पारावार न रहा। धर्म ध्यान का खूब ठाट रहा। जयपुर मानो स्वर्गपुरी ही थी। वहाँ

---

१ आपकी दीक्षा सं० १८१ मिती माघ वदि १ को बीकानेर में श्री जिनलाभसूरिजी के समीप हुई थी।

यतियों की तरह दिन बीते। संघ का अत्याग्रह होने पर भी आपश्री पूज्यश्री वहाँ न रुककर मेवाड़ पधारे और उदयपुरसे १८ कोश पर स्थित धुलेवा ग्राममें श्रीऋषभदेव—केसरियानाथजी[1] की यात्रा सं० १८२१ वैसाखी पूर्णिमा को ८८ यतियों के परिवार सह हुई। फिर सं १८२१ का चातुर्मास उदयपुर में यती वासों के पट्ट पर (उपाश्रय में) किया। बीकानेर के संघ की आग्रह थी कि आप नागौर होते हुए पूज्यश्री अवश्य बीकानेर पधारकर हमारी आशा पूर्ण करेंगे पर सूरि महाराज सीधे साचोर[2] पधारे और सत्यपुर मण्डन श्रीमहावीर स्वामी के दर्शन किये।

सूरत में जिन विम्ब प्रतिष्ठा

सूरत[3] बन्दरमें नव जिनालय तथा नव जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा करने के लिए सूरत का संघ लालायित था। जब सूरिमहाराज साचोर थे, सूरत के संघकी विज्ञप्ति आई और सूरि महाराजने अपने शिष्य परिवार के साथ वहां के लिए विहार कर दिया। सं १८२६ मि० ज्येष्ठ वदी ८ रविवार को जब आप सूरत में विराजमान थे, पद्मचन्द्र भाणा, हीराभाई, ब्रह्मजी भाई, जीवनदास, मनेरचंद आदि श्रावकोंने आपको जो पत्र लिखा था उससे मालूम होता है कि उस

---

१ यह तीर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय सम्प्रदाय मान्य है। यहाँ का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये चंदनमलजी नागोरी लिखित "केसरिया तीर्थ का इतिहास देखना चाहिये"।

२ यह जोधपुर राज्य का प्राचीन नगर है। जिनप्रभसूरि के सत्यपुरीय महावीर कल्पादि में इस तीर्थ के सम्बन्धी वृत्तान्त मिलता है। तिलकमंजरी के रचयिता महाकवि धनपाल यहाँ आकर रहे थे व सत्यपुरीय महावीर उत्साह की रचना की जिसमें इस तीर्थ का महिमा वर्णित है। देखें जैनसाहित्य संशोधक वर्ष ३।

३ सूरत के जैन इतिहास सम्बन्धी तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं विशेष जानने के लिए उन्हें देखना चाहिये।

समय सूरिजी पं० हीरधर्म, पं० महिमाधर्म पं० राजराज, पं० विवेक कल्याण पं० जयसार और पं० ज्ञानसार आदि २७ ठाणा से थे। सं० १८२७ वै० सु० १२ को सूरत में १८१ बिम्बों की तथा सं० १८२८ में फिर ८२ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई। इस समय ज्ञानसारजी का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था। आपके अक्षर मोती की तरह सुन्दर थे, आपके रचित श्री पार्श्वनाथ स्तवन सूरतमें ही लिखा हुआ है—जिसका चित्र इसी ग्रन्थ में दिया जा रहा है। प्रस्तुत स्तवन भी इस ग्रन्थ के पृ० १२६ में मुद्रित है। इससे मालूम होता है कि आपने लघु कृतियों का निर्माण तो यौवनावस्था में ही प्रारंभ कर दिया था[1] पर बड़ी बड़ी कृतियां आपने अपनी परिपक्व

---

[1] सं० १८२६ के आसपास श्रीजिनलाभसूरिजी के गुण वर्णनात्मक रचे हुए ३ अन्य छन्द उपलब्ध हैं। जिन्हें यहां दिया जाता है :—

(१) सव मत समस संग, समसीलां सिर सीधी।
सिर सूरां सिर सेहरो, सील पालन सच नीधी।
सुमति गुपति सजु धार, सु गुण विगत्न राज
धनक ई गुण दयण सैण प्रम मारण साजे।
सीमे सधीर सोभागधर, सील सकल सुगुण सुथिर।
उदार पारखायण सदा सधरुत्र श्री जिनलाभ वर ॥१॥

इति श्रीजिनलाभसूरिराजानां सफार छप्पयछन्दो गर्भिता स्तुति विहिता लिपिकृत् ज्ञानसारेण।

(२) मेरु राज सौ इसो, तेज धन लघु चन्द
चन्द राज दीपै जिसो, श्रीजिनलाभ सूरिन्द ॥१॥

पाण्याजी श्री ज्ञानसारजी कृत सं० वही १ ॥

(३) सवैया तेवीसा :—

मन हरनी धातु जिसुं सारद की चंद जिसुं सुखदुको पाय मानु जनाय मनराज की।
सुभन मनन जिसुं सुमर गिरि एम चंद्रगाइस जिनचंद जिसुं धरन मयराज की॥
कमनी की जमाय जिसुं जमाय जलनिधि तू की, राजहंस चाल जिसुं गमन गयराज की।
जगजनि की आपर तू आपर रत्नाकर पी.ह की प्रगट जिसुं प्रताप जयराजकी ॥१॥

॥ इतिश्रियं पं। प्र। ज्ञानसारजय्या ॥

अवस्था में ही बनाई थी। प्रारम्भ से ही आपकी वृत्ति अन्तर्मुखी थी, अतः आपने आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। आनंदघन चौबीसी बालावबोध से मालूम होता है कि आपने सं० १८२१ से ही श्रीमद् आनन्दघनजी के सर्व गाम्भीर्यशाली आध्यात्मिक व तात्त्विक भावपूर्ण चौबीसी-स्तवनों की अर्थविचारणा प्रारम्भ कर दी थी।

आचार्य श्रीजिनलाभसूरिजीने सं० १८२१ में राजनगर चातुर्मास किया वहां राजनगरने बहुतसे उत्सव किये तथा वो अपूर्व भक्ति थी। वहां से आप संघ सहित शत्रुंजय और गिरनार महातीर्थों की यात्रा कर सं १८३० में [illegible] पधारे। कच्छ देश के श्रावकों के आग्रह से सं० १८३१ में मांडवी चातुर्मास किया। बन्दरगाहों से समुद्री व्यापार करने वाले धनाधीश तथा धर्मानुरागी श्रावकों ने १ वर्ष पर्यन्त खूब द्रव्य व्यय करके धर्म ध्यान का ठाठ किया। सं १८३२ में इसी प्रकार भुज में चातुर्मास हुआ। सं० १८३३ में आप मनरा बन्दर होते हुए क्रमशः गुढ़ा पधारे और वहीं सं १८३४ के चातुर्मास में मिती आश्विन कृष्णा १० को सूरि महाराज स्वर्ग सिधारे। इन वर्षों में प्राय: हमारे चरित्रनायक सूरिजी की छत्रछाया में विचरे थे। इनके गुरुमहाराज श्रीरत्नराज गणि का स्वर्गवास तो इससे पूर्व ही हो गया मालूम देता है पर इस वर्ष दादा गुरु श्रीजिनलाभसूरिजी का भी विरह हो गया। श्रीजिनलाभसूरिजी के विहारका वर्णन हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में प्रकाशित होने आदि के आधार से किया गया है।

वाचक राजधर्म जी के साथ—

सं० १८३५ में श्री जिनलाभसूरिजी के साथ शिष्य अलग अलग हुए, तब से आप अपने गुरुजी के गुरुभ्राता वाचक श्रीराजधर्मजी के साथ रहने लगे। संवत् १८४० की सौभाग्यधर्म गणि की पुष्ट टिप्पणिका से मालूम होता है कि आप वै० व ४ सं० १८४० में वाचकजी के साथ मूला नगर में थे। सं० १८४१ चै० व० १ के पत्र से मालूम होता है कि आप पाली में वा० हीरधर्म तथा वा० राजधर्म जी के साथ थे। इसके बाद वाचक राजधर्म जी नागौर चले आये तथा ज्ञानसार जी किसनगढ़ गये। वहाँ सं० १८४२ से १८४४ के तीन चातुर्मास बिताकर फिर नागौर में वाचकजी से मिले। दोनों के वस्त्र पुस्तकादि परिग्रह की ४ गाँठें नागौर में छोड़ कर आप जयपुर आ गये। सं० १८४५ मिती वैसाख कृष्ण १ को लखनऊ से श्रीजिनचंद्रसूरि जी के दिये आदेशपत्र से मालूम होता है कि उस समय आप जयपुर थे और इसी आदेशपत्रानुसार तथा पत्रवाली पत्र से ज्ञात होता है कि सं० १८४५-४६—४७ के तीन चातुर्मास वाचकजी के साथ ही जयपुर हुए। सं० १८४८ का चातुर्मास श्रीज्ञानसारजी ने जयपुर ही किया और वाचक राजधर्मजी पुष्करणा जाकर स्वर्गवासी हो गये।

---

१ ज्ञानसारजी के समय यति लोग रुपये पैसे आदि परिग्रह रखने लग गये थे अतः अपने आयुष्य का अन्त निकटवर्ती जानने पर वे अपनी विद्यमानता में पास के समस्त यतियों को इच्छानुसार ॥) या १) वितीर्ण करते तब यतियों के संघाटों की नामावलि लिखी जाती उस कागज को हर्ष टिप्पणिका और स्वर्गवास के अनन्तर शिष्यों द्वारा गुरु की स्मृति में ॥) १) वितीर्ण किया जाता उस समय के लिफाफे को पुष्ट टिप्पणिका कहा जाता है।

इसी बीच सम्भव है कि बंगाल में जहां जहां जैन लोग निवास करते थे आपने विचरण किया होगा। पूरब देशके मान्य अनुभवों, वहां की समाज व्यवस्था, रहन सहन आदि का वर्णन बड़ाही सजीव और अपूर्व आपने "पूरब देश वर्णन छंद" में किया है जिसे पाठकों की जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है। सं० १८५१ मिती माघ शुक्ल ५ को आपने द्वितीय बार श्री समेतशिखरजी की यात्रा की। इसके बाद श्रीपूज्यजी के आदेशानुसार विचरते हुए दिल्ली आए सं० १८५२ का चातुर्मास यहीं किया। इन चार वर्षों में आपने मगधदेश संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगालके सभी तीर्थों की यात्रा भी अवश्य की होगी। उसका विशेष वर्णन प्राप्त होता तो जैनतीर्थों के इतिहास सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण बातों का पता चलता। पत्रादिमें संक्षिप्त वर्णन अवश्य ही लिखा होगा। पर खेद है कि वे अब प्राप्त नहीं है।

पट्टहस्ती का रोगनिवारण :—

सं० १८५३ में आप जयपुर पधारे और सं० १८६१ पर्य्यन्त १० वर्षके चातुर्मास जयपुर में किये। कहा जाता है कि जब आप जयपुर पधारे थे, महाराजा का पट्टहस्ति बीमारी के कारण दिनों दिन क्षीण हो रहा था। रोग प्रतिकारके अनेक उपाय किये गये पर कोई फल न मिला। अन्ततोगत्वा श्रीज्ञानसारजी से निवेदन करने पर इन्होंने अपने असाधारण बुद्धि बल से गजराज के रोग का निदान किया और उसके उदर में जमी हुई वस्ति को निकाल कर उसे पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

१ बिहार प्रान्त में पार्श्वनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। यहां जैनों के २ तीर्थङ्कर मोक्ष पधारे थे अतः महत्त्वपूर्ण तीर्थ है।

जयपुर के १० चातुर्मासों में क्या क्या विशिष्ट कार्य हुए, यह

महाराजा स्वयं कवि होने के साथ साथ अनेक विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। आप की आज्ञा से फारसी आईने अकबरी व दिवानी हाफिज का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इन्होंने प्रताप मार्तण्ड आदि ज्योतिष के ग्रन्थ बनवाए तथा धर्मशास्त्रों का संग्रह व अनुवाद कराया जिनमें धर्म जहाज प्रसिद्ध है।

महाराजा की आज्ञा से विश्वेश्वर महाशब्दे के प्रतापार्क नामक धर्म-शास्त्र का उपयोगी ग्रन्थ बनाया। प्रतापसागर नामक वैद्यक ग्रन्थ भी अनुभवी विद्वानों से प्रस्तुत करवाया जिसका हिन्दी अनुवाद अमृतसागर भारत विख्यात वैद्यक ग्रन्थ है। संगीत के तो मानो आचार्य ही थे आपकी उत्साह से राधागोविन्द संगीतसार नामक विशद ग्रन्थ सात अध्यायों में बना जो हिन्दी साहित्य में अपने विषय का अनोखा ग्रन्थ है। यह मुद्रित (अपूर्ण) रूप में जयपुर लाइब्रेरी में प्राप्त है। आपके समय में ही राधाकृष्ण ने राग रत्नाकर बहुत सुन्दर भाषा संगीत का रीति ग्रन्थ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। आपके संगीत के उस्ताद मुहम्मदरजा की (चांद खां उपनाम दुलह खां) ने संगीत का एक उत्तम ग्रन्थ "स्वरसागर" बनाया। मनसाराम पल्लीवाल ने नखशिखप्रबोध नखशिख का टब्बावली पर संग्रह उत्तम है। महाकवि राम कोमुकुन्द महाकवि गणपतिभारती गुमानि रसपुंज रसराशि के पद भी उक्त संग्रह में है। नवरस अलंकार सुधानिधि आदि भारतीजी के निर्मित हैं। हजारा ग्रन्थों का संग्रह भी सुलभता इन्होंने किया था।

महाराजा ने कई हजारे संग्रह करवाये जिनमें प्रताप और हजारा और प्रताप सिंगार हजारा मिलते हैं। आपके आश्रित कितने ही भाषादि कवियों का साहित्य भी प्राप्त है। आपको इमारतें बनाने का भी अच्छा शौक था। सुप्रसिद्ध हवामहल आदि इसके प्रतीक और ई यहां प्रसिद्ध है। सम्वत् १८६ मिती श्रावण सुदि १३ को आपकी मृत्यु हुई। विशेष जानने के लिये प्रतापनिधि ग्रन्थावली देखना चाहिये।

महाराजा स्वयं कवि होने के साथ साथ अनेक विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। आप की आज्ञा से पारसी आइने अकबरी व दिवानी हाफिज का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इन्होंने प्रताप मार्तण्ड आदि ज्योतिष के ग्रन्थ बनवाए तथा धर्मशास्त्रों का संग्रह व अनुवाद कराया जिनमें धर्म जहाज प्रसिद्ध है।

महाराजा की आज्ञा से विश्वेश्वर महाशब्दे ने प्रतापार्क नामक धर्मशास्त्र का उपयोगी ग्रन्थ बनाया। प्रतापसागर नामक वैद्यक ग्रन्थ भी अनुभवी विद्वानों से प्रस्तुत कराया जिसका हिन्दी अनुवाद अमृतसागर भारत विख्यात वैद्यक ग्रन्थ है। संगीत के तो मानो आचार्य ही थे आपके उत्साह से राधागोविन्द संगीतसार नामक विशद ग्रन्थ सात अध्यायों में बना जो हिन्दी साहित्य में अपने विषय का अनोखा ग्रन्थ है। यह मुद्रित (अपूर्ण) रूप में जयपुर कचहरी में प्राप्त है। आपके समय में ही राधाकृष्ण ने राग रत्नाकर बहुत सुन्दर छोटासा संगीत का रीति ग्रन्थ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। आपके संगीत के उस्ताद चुन्नकाश की (चांद खां उपनाम दुलह खां) ने संगीत का एक उत्तम ग्रन्थ "स्वरसागर" बनाया। अमृतराम पल्लीवाल ने अंगप्रत्यंग नखशिख का उपमाओं पर संग्रह उत्तम है। महाकवि राव गंगाराम, महाकवि गणपतिभारती, गुमान रसपुंज रसराशि के पद भी उक्त संग्रह में हैं। नवरस अलङ्कार रूपनिधि आदि भारतीजी के निर्मित हैं। हजारा पद्यों का संग्रह भी सुव्यवस्था इन्होंने किया था।

महाराजा ने कई हजारे संग्रह करवाये जिनमें प्रताप वीर हजारा और प्रताप सिंगार हजारा मिलते हैं। आपके आश्रित जिनने ही चारणादि कवियों का साहित्य भी प्राप्त है। आपको इमारतें बनाने का भी अच्छा शौक था। सुप्रसिद्ध हवामहल आदि इसके प्रतीक और यादगार प्रसिद्ध हैं। सम्वत् १८६ मिती श्रावण सुदि ११ को आपकी मृत्यु हुई। विशेष जानने के लिये ब्रजनिधि ग्रन्थावली देखना चाहिये।

को प्रमाणाभाव से बता सकना कठिन है। परंतु सर्कुलर वकील और कमोरेशन प० प० को सम्वत् १८३३ माघ शुक्ल ८ और सम्वत् १८३६ चैत्र शुक्ल १ को रचित हैं—से इनका जयपुर मंदिर पर सत्ता प्रमाण निश्चित होता है।

गुरुभ्राताओं से बँटवारा:—

श्रीजिनलाभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद वर्षों तक आप वाचक रामकर्ण जी के साथ रहे थे * यह ऊपर लिखा जा चुका है। फारसी पत्र से मालूम होता है कि वाचकजी का देहान्त हो जाने पर उनके शिष्य अमरचन्दजी ने आपसे उस परिग्रह के सम्बन्ध में झगड़ा किया था। आखिर सं० १८३६ के मिती चैत्र शुक्ल ४ को मूथिया वल्लभजी की मध्यस्थता से निपटारा हो गया। इसका एक फारसी पत्र हमारे संग्रह में है जिसमें वहाँ यति व श्रावकों की साक्षियाँ भी लिखी हुई हैं। पाठकों के परिज्ञानार्थ इस फारसी की नकल यहाँ दी जाती है —

श्री

सम्वत् १८३५ से। श्रीजिनलाभसूरिजी का शिष्य साथ ज्यापार हुआ। जद। वा० रामकर्णजी और ज्ञानसार। ए दोनूं भेला रहा। परिग्रह पीछे सामिल भेला रह्या। पछै पाली चौमासा किया भेला। पाली हुआ था। रामकर्णजीसिंघजी अजमेर रह्या। प० ज्ञानसार किसनगढ़ ज्यारै रह्यो। पछै फेर अजमेर वा० रामकर्णजी कनै पं० ज्ञानसार आयो। अजमेरमें दोन्यां ही रै परिग्रहरी गांठड्यां मण ४ सेती ही राखी। तठा सैं जयपुर चौमासा दोनूं भेला तीन बरस रह्या।

---

* और उनके परिग्रह इत्यादि की साथ ही थे।

जयपुर निवासी गोधाजी सुगनचन्द को बाल्यकाल से ही जैनधर्म के प्रति रुचि नहीं थी। पर आपश्री के समागम व सत्संगति से उन्होंने शुद्धवृत्ति से जैनदर्शन की श्रद्धा स्वीकार की और पठन पाठन स्वाध्यायमें विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। भाव छत्तीसी की रचना इनके लिये किशनगढ़ में की गयी थी।

एक बार आप जयपुरनगर से बाहर बगीचेमें जाकर रहने लगे थे। उपाश्रय की अपेक्षा नगर से बाहर शान्ति और एकान्त विशेष मिलता है अतः स्वाध्याय ध्यान में विशेष प्रवृत्ति होती है। एकदिन जयपुर निवासी सरावगी ऋषभदास बाकला आपके पास आये। धार्मिक वार्तालाप से आनन्दित होकर कहने लगे कि आप यदि सिद्धांत वाचन करें तो मैं भी तो यही लाभ लूं। श्रीमद्ने कहा कि मैं श्रीउत्तराध्ययन सूत्र का व्याख्यान करता हूं। सरावगीजीने कहा—समयसारको सिद्धान्त बांचिये। यों तो श्रीमद् के समयसारादि सभी सिद्धान्तोंका अवगाहन किया हुआ था। पर यहां सरावगीजीका आशय समयसार के अतिरिक्त ग्रन्थोंको सिद्धान्त न मानने का होना समझकर स्पष्टवादिता से श्रीमद् ने फरमाया कि समयसार[1] तो ज्ञानप्रधान व निश्चय नय की

1 समयसार मूल ग्रन्थ दिगम्बराचार्य श्रीकुन्दकुन्द कृत है जिसपर अमृतचन्द्रसूरिकी टीका तथा कविवर बनारसीदासजी कृत हिन्दीपद्यानुवाद सं० १६९३ आगरा में रचित प्रकाशित है। इस पर राजमल्ल कृत भाषाटीका तथा ढूंढार प्रान्तीय विद्वान श्री जयचन्द (व रामविजय) की कृत भाषाटीका उपलब्ध है। परिवर्तित रूप में श्रीमद्जी माणक द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। विशेष परिचय मुनि कान्तिसागरजी के लेख में द्रष्टव्य है। श्रीमद् ज्ञानसार जी का आशय कविवर बनारसीदास जी की कृति से है।

इनके पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा गुरु श्रीराजसागरजी के चरणपादुके निर्माण करवाके प्रतिष्ठित करवाये थे। आपश्री के शिष्यवर्गने भी आपश्री विद्यमानता में ही आपके चरण बनवाकर प्रतिष्ठित किये थे। इन चरणपादुकाओंके सब लेखों को अप्रकाशित होनेके कारण यहां दिये जाते हैं।

(१) ॥ संवत् १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां श्री जयलसार नगर्यो श्रीबृहत् खरतर गच्छाधीश्वर युगप्रधान भ० श्री जिनचन्द्रसूरीणां। युगप्रधान भ०। श्रीजिनहर्षसूरीणां च पादन्यासौ श्रीजिनहर्षसूरि विजयि राज्ये। पं० ॥ ज्ञानसार मुनिना कारिता प्रतिष्ठापितौ च तयोरेव पूज्यानामुपदेशात्।

(२) सं० १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जयलमेरुनगर्यां। श्री बृहत्खरतर गच्छाधीश यु० भ० श्रीजिनलाभसूरीणां श्री जिनचन्द्रसूरीणां च पादन्यासौ श्री जिनहर्षसूरि विजयि राज्ये पं०। ज्ञानसार मुनिना कारितौ प्रतिष्ठापितौ च।

(३) ॥ संवत् १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जयलनगरनगर्यो श्री बृहत् खरतर गच्छेश भ०। श्री जिनलाभसूरि शिष्य प्रवर वा० श्री राजसागरजीनां पादन्यास श्री जिनहर्षसूरि विजयिराज्ये। पं० ज्ञानसार मुनिना कारितौ प्रतिष्ठापितौ च।

(४) ॥ सं १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जिनहर्षसूरि विजयिराज्ये विद्वद्वर्य श्री रायराज गणि शिष्य प्रवर ज्ञानसार मुने विद्यमानस्य पादन्यासः। शिष्य वर्गेण कारिता प्रतिष्ठापितश्च।

भावछत्तीसी की रचना :—

पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले वर्षों में जयपुर निवासी श्री दुलीचन्द जी गोलेछा श्रीमद् के सम्पर्क से पक्के जैन धर्मानु-यायी हो गये थे। इन्हें स्वाध्याय का बड़ा शौक था, जयपुर में दिगम्बर बन्धु प्रधान थे और उनके सहयोग से समयसार का वाचन प्रारम्भ किया था जब श्रीमद् को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने इस भाव और ज्ञान क्रिया के रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली "भावषट्त्रिंशिका" नामक कृति निर्माणकर भेजी जिसके मूल और विवेचन के पाठ से उन्हें समयसार का वास्तविक स्वरूप मालूम हो गया।

आनन्दघन चौबीसी पर विवेचन :—

इस समय श्रीमद् ज्ञानसारजी की अवस्था ६६ वर्ष की हो गई थी इन्होंने सम्वत् १८२१ में श्री आनंदघनजी महाराज के स्तवनों

---

१ श्वेताम्बर जैन समाजमें ये उच्च कोटिके योगी माने जाते हैं। इनकीमें नाम खरतरगच्छीय यति जयरंग जैतसीजी के पाससे आपका खरतरगच्छीय होना ज्ञात होता है। मेड़तामें आप बहुत काल तक रहे थे। मेड़ताकी समाधामक एक साधु के कथनानुसार सं १७११ में वहीं आपका स्वर्गवास हुआ था। सुप्रसिद्ध न्यायाचार्य यशो-विजय उपाध्याय आपसे मिलना होना कहा जाता है। आनन्दघन जी के सम्बन्ध में उनकी अष्टपदी प्रसिद्ध है। आपका प्रसिद्ध नाम लाभानन्द था, अनुभव प्रधान नाम आनन्दघन अपनी रचनाओं में आपने व्यक्त किया है। आपके रचित चौबीसी में से २२ स्तवन उपलब्ध हैं जिसकी पूर्ति में श्रीमद् देवचन्द्र ज्ञानविमलसूरि व श्री ज्ञानसार जी आदि के रचित स्तवन प्रकाशित हैं। आपकी चौबीसी

(चोबीसी के २२ स्तवनों) का अध्ययन और परिशीलन प्रारम्भ किया था जिन्हें ३७ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो जाने से लोकोपकार के हेतु अपने परिपक्व अनुभव के उपयोग द्वारा विशद विवेचनमय बालावबोध लिखकर मुमुक्षु जनता का परम हितसाधन किया। श्री

पर सब प्रथम यशोविजय उपाध्याय के विवेचन करने का उल्लेख मिलता है पर वह उपलब्ध नहीं है। इसके पश्चात् ज्ञानविमलसूरि जी ने बालावबोध बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। श्रीमद् ज्ञानसार जी ने इस बाला बबोध की अनेक त्रुटियों पर मार्मिक प्रकाश डाला है। हाल ही में दो अन्य विवेचन भी प्रकाशित हो चुके हैं जो मनसुखलाल की ओर पं० प्रभुदास बेचरदास द्वारा लिखे गये हैं। स्वर्गीय मोती-चन्द गिरधरदास कापड़िया भी विस्तृत विवेचन लिख रहे थे। जयपुर निवासी श्री उमरावचन्द जी जरगड ने हिन्दी भाषा में आनन्दघन चोबीसीका भावार्थ किया है जिसे शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक है।

श्रीमद् आनन्दघन जी के पद बहुत्तरी के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी संख्या १११ के लगभग है वास्तव में कई पद अन्य रचित भी उसमें सम्मिलित हो गये हैं। हमारे संग्रह में आपके ६६ पदों की एक प्राचीन प्रति है। अन्य हस्तलिखित प्रतियों के आधार से पाठ निर्धारित करके हम आपके पदों का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते हैं, आपके पदों पर श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी ने विवेचन लिखा है जो अध्यात्म ज्ञान-प्रसारक मंडल से प्रकाशित हो चुका है स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधर कापड़िया ने भी सुन्दर विवेचन किया जिसमें से लगभग ३ पदोंका विवेचन "आनन्दघन पद रत्नावली" में बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था अन्य पदों का विवेचन जैन धर्म प्रकाश में कई वर्षों तक निकलता रहा किंतु स्वर्गीय कापड़िया जी शीघ्रही प्रकाशित करने वाले थे पर इसी बीच आपका स्वर्गवास हो गया। आनन्दघन और धनानन्द पुस्तक में भी उपयुक्त चोबीसी और पद प्रकाशित हुए हैं।

भावछत्तीसी की रचना :—

पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले वर्षों में जयपुर निवासी श्री दुर्गालाल जी गोलछा श्रीमद् के सम्पर्क से उनके जैन धर्मानुयायी हो गए थे। उन्हें स्वाध्याय का बड़ा शौक था, जयपुर में दिगम्बर बन्धु धर्मोत्साही थे और उनके सहयोग से समयसार का वाचन प्रारम्भ किया था जब श्रीमद् को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने इस भाव और ज्ञान क्रिया के रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली "भाव षट्त्रिंशिका" नामक कृति निर्माणकर भेजी जिसके मूल और विवेचन के पाठ से उन्हें समयसार का वास्तविक स्वरूप मालूम हो गया।

आनन्दघन चौबीसी पर विवेचन :—

इस समय श्रीमद् ज्ञानसारजी की अवस्था ११ वर्ष की हो गई थी इन्होंने सम्वत् १८२१ में श्री आनंदघनजी महाराज के स्तवनों

---

१ श्वेताम्बर जैन समाजमें ये उच्च कोटिके योगी माने जाते हैं। इनकीमें मत खरतरगच्छीय यति अपरंग [illegible] के पाससे आपका खरतरगच्छीय होना ज्ञात होता है। मेड़तामें आप बहुत काल तक रहे थे। पश्चात्‌ी सम्प्रदायक एक साधु के कथनानुसार सं १७३१ में वहीं आपका स्वर्गवास हुआ था। सुप्रसिद्ध न्यायाचार्य महो- विजय उपाध्यायका आपसे मिलन होना कहा जाता है। आनन्दघन जी के सम्बन्ध में उनकी अष्टपदी प्रसिद्ध है। आपका प्रसिद्ध नाम लाभानन्द था, अनुभव प्रधान नाम आनन्दघन अपनी रचनाओं में आपने व्यवहृत किया है। आपके रचित चौबीसी में से २२ स्तवन उपलब्ध हैं जिसकी पूर्ति में श्रीमद् देवचन्द्र ज्ञानविमलसूरि व श्री ज्ञानसार जी आदि के रचित स्तवन प्रकाशित हैं। आपकी चौबीसी

(चौबीसी के २२ स्तवनों) का अध्ययन और परिशीलन प्रारम्भ किया था जिसमें १७ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो जाने से लोकोपकार के हेतु अपने परिपक्व अनुभव के उपयोग द्वारा विशद् विवेचनमय बालावबोध लिखकर मुमुक्षु जनता का परम हितसाधन किया। श्री

पर सब प्रथम यशोविजय उपाध्याय के विवेचन करने का उल्लेख मिलता है पर वह उपलब्ध नहीं है। इसके पश्चात् ज्ञानविमलसूरि जी ने बालावबोध बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। श्रीमद् ज्ञानसार जी ने इस बाला बबोध की अनेक त्रुटियों पर मार्मिक प्रकाश डाला है। हमारी में दो अन्य विवेचन भी प्रकाशित हो चुके हैं जो मनसुखलाल जी और पं० प्रभुदास बेचरदास द्वारा लिखे गये हैं। स्वर्गीय मोती चन्द गिरधरदास कापड़िया भी विस्तृत विवेचन लिख रहे थे। जयपुर निवासी श्री उमरावचन्द जी जरगड़ ने हिन्दी भाषा में आनन्दघन चौबीसीका भावार्थ किया है जिसे शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक है।

श्रीमद् आनन्दघन जी के पद बहुत्तरी के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी संख्या १११ के लगभग है वास्तव में कई पद अन्य रचित भी उसमें सम्मिलित हो गये हैं। हमारे संग्रह में आपके ९९ पदों की एक प्राचीन प्रति है। अन्य हस्तलिखित प्रतियों के आधार से पाठ निर्णय करके हम आपके पदों का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते हैं, आपके पदों पर श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी ने विवेचन लिखा है जो अध्यात्म ज्ञान-प्रसारक मंडल से प्रकाशित हो चुका है स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधर कापड़िया ने भी सुन्दर विवेचन लिखा जिसमें से लगभग ९ पदोंका विवेचन "आनन्दघन पद रत्नावली" में बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था अन्य पदों का विवेचन जैन धर्म प्रकाश में कई वर्षों तक निकलता रहा जिसे स्वर्गीय कापड़िया जी शीघ्र ही प्रकाशित करने वाले थे पर इसी बीच आपका स्वर्गवास हो गया। आनन्दघन और अध्यात्म पुस्तक में भी स्तवन व चौबीसी और पद प्रकाशित हुए हैं।

आनन्दघनजी महाराज पर आपकी अनन्य श्रद्धा थी, और उनकी वाणी का आपके जीवनमें पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस बालावबोध में २२ स्तवन श्रीमद् आनन्दघन जी के तथा २ स्तवन इनके स्वनिर्मित किए हुए हैं। अन्यत्र उनकी महानता व अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए श्रीमद् ने लिखा है कि —

आशय आनन्दघन तणो अति गम्भीर उदार
बालक बांह पसार के कहै उदधि विस्तार”

किशनगढ़ के महाराजा भी आपका बड़ा सम्मान किया करते थे तथा जैन व जैनेतर प्रजा पर आपका अच्छा प्रभाव था। यहां के चातुर्मास ज्ञान ध्यान में लीन और शान्त सुधारस में सराबोर बीते। तदनन्तर ग्रामानुग्राम विचरते हुए तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पधारे।

सिद्धाचल यात्रा :—

सं १८११ मिती फाल्गुन कृष्णा १४ को युगादि देव श्री ऋषभ प्रभु के दर्शन कर आत्मविभोर हो उठे। श्री सिद्धाचल के आदि जिन स्तवन में आपश्री ने अपने मनोगत भावों को निराडम्बर पूर्वक आत्मभावों के रूप में प्रभु चरणों में निवेदित किये हैं। जिन से विदित होता है कि आपने इस वृद्धावस्था में उपसर्गों को कंधों पर वहन करते, मान्य तपस्वी रहते, कण्टकाकीर्ण मार्ग को पैदल विचरते हुए ही किया था।

---

१ किशनगढ़ के इतिहास के अनुसार इस समय यहां के राजा कल्याणसिंह थे।

बीकानेर आगमन —

बीकानेर राज्य श्रीमद् की जन्मभूमि होते हुए भी बाल्यकाल से लगभग ७० वर्ष की आयु हो जानेपर भी बीकानेर पधारने का अवसर प्राप्त नहीं मिला था। तीर्थाधिराज शत्रुंजय की यात्रा करने के पश्चात् आपने अपना अन्तिम जीवन बीकानेरमें व्यतीत करने का विचार किया। इसके दो कारण थे, एक तो बीकानेर सभी तरहसे उत्तम क्षेत्र था यहाँ क्या राजधानी और क्या छोटे मोटे ग्राम, सर्वत्र जैनों की बहुत गहरी बस्ती थी। जिनप्रासाद और उपाश्रयों का प्राचुर्य था जहाँ मैकड़ों गीतार्थ यति लोगों का आवागमन रहता था। उपाध्यायजी श्री क्षमाकल्याणजी जैसे क्रियापात्र और इनके बचपन के साथी भी विराजमान थे अतः आप अपने शिष्योंके साथ बीकानेर पधारे और यावज्जीव बीकानेर में ही विराजे। इस समय आपकी वृद्धावस्था होते हुए भी त्याग, वैराग्य तथा आचार का उत्कृष्ट था। आपश्रीने नगरके बाहर श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालयके पृष्ठभाग में श्मशानोंके निकटवर्ती दादाजी स्थान को ही अपनी तपोभूमि चुनी और वहीं रहने लगे। श्रीमद् का जीवन बड़ा सात्विक था, एक पात्र तथा अल्प वस्त्र धारण करते थे दुपहरके समय एकबार आहार करते थे। षाड्विगय[1] का त्याग था जो कुछ भी रूखा सूखा मिल जाता, ले आते। नगरके बाहर निर्जन श्मशानभूमिके निकट अपनी ध्यान समाधि लगाकर आत्मानुभवके परम सुखका अनुभव करते हुए तप संयमसे आत्मा को भावित करते थे।

---

१ आहार में ऊपर से स्वादिष्ट विगय (विकृति ६ दूध, दही, घी, तेल, गुड़ पक्वान्न) न लेना यह विगय त्याग कहलाता है।

इस प्रकारके कई प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालूम होता है कि श्री पार्श्वयक्ष (चिन्तामणि यक्ष) आपके प्रत्यक्ष थे और समय समय पर रात्रिमें प्रकट होकर आपसे नाना विधि ज्ञान गोष्ठी एवं भूत भविष्य सम्बन्धी वार्तालाप किया करते थे।

महाराजा सूरतसिंह पर प्रभाव —

बीकानेर नरेश महाराजा सूरतसिंहजी[1] ने आपकी परोपकारिता सुनी और तत्काल आकर मिले फिर तो घनिष्ठता इतनी बढ़ी कि महाराजा किसी भी कार्य करनेके पूर्व आपकी आज्ञा व आशीर्वादक

---

१ महाराजा सूरतसिंह बीकानेर नरेश महाराजा गजसिंह के पुत्र थे। सम्वत् १८२२ पौष शुक्ला ६ का आपका जन्म हुआ और संवत् १८४४ के मिंगसर बदी को राजगद्दी प्राप्त हुई थी। आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने बीकानेर राज्य के इतिहास में इस प्रकार लिखा है —

"महाराजा सूरतसिंह का राज्यकाल अंग्रेजों के अभ्युत्थान का समय कहा जा सकता है। जैसे पहले मुगलों के प्रबल प्रवाह के सामने हिन्दू राजाओं को झुकना पड़ता था वैसे ही अब अंग्रेजों की प्रबल शक्ति के आगे हिन्दू-मुसलमान सब नतमस्तक होते जा रहे थे। उनका प्रताप हांसी हिसार तक ही पहुंचा था और उनके प्रभुत्व की बात अधिकांश भारत में कम सुनी थी इधर बीकानेर राज्य की भी आन्तरिक दशा बिगड़ रही थी। आये दिन राज्य के सरदार विद्रोही हो जाते थे जिनका दमन करने में ही महाराजा को सारी शक्ति लगा देनी पड़ती थी। उधर दो बार की भटनेर तथा जोधपुर के साथ की लड़ाइयों से भी बीकानेर का कम नुकसान न हुआ था। ऐसी परिस्थिति में उनसे अंग्रेजों से मेल कर लेनाही उचित समझा और इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सफलता से पूरा करने के लिये ओझा काशीनाथ दिल्ली भेजा गया जिसने मिस्टर चार्ल्स

पिपासु रहा करते थे। साह मुलतानमल के द्वारा मौखिक तथा पत्र व्यवहारके द्वारा राजनैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक बातों का समाधान होता। अनेक बार महाराजा स्वयं आते और श्रीमद् की सेवामें घन्टों व्यतीत करते। महाराजाके लिखे हुए २२ खास रुक्के हमारे अवलोकनमें आये हैं जिनमेंसे १८ हमारे संग्रहमें तथा ४ यतिसुमन्तचन्द्

मरहठों से मिलकर सन्धि की शर्ते तय की। यह घटना बीकानेर राज्य के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखती है क्योंकि अंग्रेजों के साथ सन्धि स्थापित हो जाने पर उनकी सहायता से विद्रोही सरदारों का पूरी तरह से दमन होकर राज्य में सुख और शान्ति की स्थापना हुई। जो सम्बन्ध महाराजा सूरतसिंह ने अंग्रेजों से स्थापित किया उसका अब तक निर्वाह होता है और अंग्रेज सरकार तथा बीकानेर के बीच अब भी सुदृढ़ मैत्री विद्यमान है।

*महाराजा सूरतसिंह बड़ा वीर नीतिज्ञ और न्यायप्रिय था। वह केवल तलवार लेकर लड़ना ही नहीं जानता था वरन् मेल के महत्त्व को भी खूब समझता था। जहां उसे मेल करने में लाभ दिखाई देता वहां वह बिना अधिक सोच विचार किये ही ऐसा कर लेता। वह अन्याय हुआ नहीं देख सकता था। जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के पुत्र जोरावरसिंह का हक मानसिंह द्वारा छिनता हुआ देखकर वह यह अन्याय सहन न कर सका और जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ उसका सहायक बन गया। वह शत्रु पर दगा से वार करने का विरोधी था आवश्यकता का अवसर पाकर सन्धि की शर्तें तय करने के लिये आये हुए जोधपुर के सरदारों को उसने अपने आदमियों की समझ के अनुसार मारा नहीं वरन संधि की शर्तें स्वीकार न होने पर भी उन्हें सिरोपाव आदि देकर सम्मान पूर्वक वापस भेजा।

*जहां महाराजा में इतने गुण थे, वहां एक दुर्गुण भी था। वह कान का कच्चा था जिस सुराणा अमरचन्द ने अपनी वीरता से अनेक बार विद्रोही

श्रीमद् ज्ञानसारजी के प्रति बीकानेर नरेश सूरतसिंह का खास रुक्का

(नारायणजी) की सम्मति आज्ञा या आशीर्वाद के बिना किसी कामर्मे हाथ नहीं डालते थे। पत्र व्यवहार पर सरसरी नजर डालने से मालूम होता है कि सूरतसिंहजीके कार्योमात्र, बागी सरदारों व यवनोंके कारण अराजकता, आदि अनेक समस्याओं का समाधान चरित्रनायक की सम्मति से हुआ था। पत्रोंकी कई अधूरी बातें कर्मदारी, लर्चेकी कमी साहूकारोंपर जबरन वसूली रैयत पर कष्ट, शहर की गंदगी पक्का-पक्की विदेशी कर्मचारियों की विदाइ, आदि अनेक विषयके अत्याचार व अराजकता को दूर करानेपर प्रकाश डालती हैं। श्रीमद्के द्वारा महाराज (श्री चिन्तामणि यक्ष) से नाना प्रकार के प्रश्न कराये जाते थे जिनमें अपने,पूर्व-भव अनके खजाने, इ मेजोंके राज्य व सन्धि से अपने सुख सिंहासन, जाप आदि मुख्य थे। अपनी कूच तथा जोधपुर के धोंकलसिंहजी सम्बन्धी, एवं हालपुर सिख वालोंके साथ महाराजा मानसिंहके कजिये की जय-पराजय आदि नाना प्रश्न पूछे गये हैं। इसी प्रकार सं० १८७१ में दिये हुये ५ तथा सं० १८७२ के ५ खास खत हैं। इतने दीर्घ समयमें सैकड़ों ही पत्रों का आदान प्रदान हुआ होगा पर वे अब प्राप्य नहीं हैं। श्रीमद् के दिये हुये एक पत्र की प्रतिलिपि भी उनके स्वयं लिखी हुई प्राप्त हुई है। साह मुल्तानमल के बाद नाहटा मन्नजी इनकी सेवामें रहे थे जिनका कार्य केवल महाराजा के सन्देश श्रीमद् तक पहुँचाने का था। महाराजा उन्हें ९५) मासिक वेतन देते थे वे बड़े सन्तोषवृत्ति के थे। मन्नजी को ९५) से ९७) मासिक करना भी स्वीकार नहीं था ऐसा एक पत्रमें महाराजा ने सूचित किया है। इनके अतिरिक्त साह वरमा अमात्यी जेठा व कचारज कोयके द्वारा भी सँवाद-भाजी नियोजन की जाती थी। अंतिम पत्रमें सदासुख

जी को समाचार फरमाने का लिखा है ये श्रीमद्के शिष्य श्री स्वरूप जी मालूम देते हैं। इनका भी राजदरबार में प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था।

गौड़ी पार्श्व जिनालयमें नवपद मंडल का प्रारम्भ —

बीकानेरके गोगा दरवाजाके बाहर जहाँ आप रहा करते थे, श्री गौड़ी पार्श्वनाथजी का छोटासा मंदिर था। आपश्रीके विराजनेसे इस मन्दिर की बहुत उन्नति हुई। आपके लेखनोंसे मालूम होता है कि आपकी श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ प्रभु पर अत्यन्त भक्ति थी। श्रीजिनभक्ति पक्ष आपका प्रत्यक्ष थे अतः इस मन्दिरमें श्री क्षमाकल्याणोपाध्याय जी द्वारा सं. १८७१ में पद्मराजजी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। इसी जिनालय में महाराजा की ओर से नवपद मण्डल रचना प्रारंभ हुआ जिसके लिये तबसे लगाकर आजतक राजकोष खजाने से खर्च व्यय किया जाता है। इसी मन्दिरके विशाल अहाते में कई और मन्दिर-देहरियों का निर्माण हुआ। श्री सम्मेतशिखर तीर्थ-पट वाले मन्दिर का निर्माण सं० १८८९ में श्रीअमीचन्दजी सेठियाने करवाया जिसकी दीवाल पर श्रीमद्का चित्र बना हुआ है सामने अमीचन्दजी सेठिया हाथ जोड़े खड़े हैं। सं १८७१ माघ सुदि १३ के दिन आपने नवपद पूजा की रचना की जो इसी पुस्तकमें प्रकाशित है।

---

१ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन ज्ञान, चारित्र और तप, ये नवपद हैं। इनके उपलक्ष यन्त्र को सिद्धचक्र या नवपदयन्त्र कहते हैं। चैत्र और आश्विन के अन्तिम ९ दिनों में आयंबिल तप के साथ नवपद ओली का आराधन किया जाता है। ९ बार (८१ आयंबिल) करने पर इस तप की पूर्णाहुति होती है उसके उपलक्ष नवपदमण्डल की रचना की जाती है।

बीकानेर में साहित्य निर्माण –

आपभी उस समयमें जैनागमोक्त प्रकाण्ड विद्वान थे। स्थानीय श्रावक व साधु समुदाय तो आपके ज्ञानसे लाभ उठाते ही थे पर बाहर से भी प्रश्नोत्तर आदि के रूपमें पत्र आते रहते थे। बिहार (जिसे श्रीमद् ने वैशाली लिखा है) निवासी किसी जिज्ञासु श्रावकने आपको एक विस्तृत प्रश्न पत्र भेजा जिसके उत्तरमें आपने जो पत्र दिया वह एक ग्रन्थ ही हो गया है जो सं० १८७४ चैत्र शुक्ला ७ को पूरा हुआ था। यहां रहते साहित्य निर्माण की धारा सतत् प्रवाहित थी। सं० १८७५ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चौबीसी स्तवन, सं० १८७६ फाल्गुन शुक्ला १ को मातापिता (वइरागमय), स० १८७७ चैत्र कृष्ण २ को चद चौपाई समालोचना, सं० १८७८ कार्तिक शुक्ला १ को विहरमान बीशी सं० १८८० आषाढ़ शुक्ल १३ को आध्यात्मगीता बालावबोध, सं० १८८० आश्विन म प्रश्नाेत्तरिक प्रश्नोत्तरी, और सं० १८८१ मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को गुणावलो की रचना की। इनमें से मातापितृस व चन्द-चौपाई समालोचना के अतिरिक्त सभी रचनाएं इस ग्रन्थ म प्रकाशित हैं।

बीकानेर क बड़े ज्ञानभंडार क एक पत्र स मालूम होता है कि स० १८७४ आश्विन शुक्ल ५ को श्री सिद्धचक्रजी की महती महिमा हुई और इसी वर्ष मिती मिगसर सुदि १३ को श्रीमद् मे गोठ की।

दशहरे की बलिप्रथा बन्द :–

बीकानेर में दशहरे के दिन राज्य की ओर से देवी के बलि स्वरूप भैंसा मारने की प्रथा प्राचीन काल से चली आती थी। कहा जाता है

भव फागे भामसरा, कहि कसी कैसी करां
प्रकट मिलारो पास, नरपति जावे मारण ए ९

महाराजा ने अपनी भूल के लिए माफी मांगते हुए महरवा सौंपा दिया एवं यतियों को दो दो रुपये व मिठाई भेंट कर उपाश्रय पहुंचाया।

नगरसेठ के प्रश्नोंका उत्तर :--

कोई (संभवतः जयपुरके) नगरसेठ महोदय जो आपके परमभक्त थे, आपसे पत्रोंमें प्रश्न पूछा करते थे उनके उत्तरमें दिया हुआ (२) विविध प्रश्नोत्तर ग्रन्थ इसी ग्रन्थके पृ० ४०८ से ४२२ तक छपा है। इसका समय सं० १८८० के पश्चात् का अनुमान किया जाता है क्योंकि सं० १८८० में रचित आत्मप्रबोधिता बालावबोधका इसमें उल्लेख पाया जाता है।

गौड़ी जिनालय का उद्धार और आशातना-निवारण :-

पूर्व कहा जा चुका है कि श्रीमद् वहां म्यानोंके निकट निवास करते थे, पास ही में श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी का मंदिर था। श्रीसंघ ने सं० १८८६ में १२०००) व्यय करके इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। प्रतिदिन श्रावक लोग नगरके बाहर होने पर भी दर्शन पूजनके लिए यहां आते थे। स्वयं महाराजा सूरतसिंहजी व रतनसिंहजी श्रीमद् के पास जब कभी आया करते तो इस मन्दिरमें अवश्य पधारते। कहा जाता है कि अन्तःपुरसे महारानियां भी समय समय पर आती थीं। वहां प्रतिदिन पूजा करने के लिए आने वालोंमें सुराणोंके घरकी एक

‡ यह उल्लेख अज्ञोतरी के ५९ वें दोहे में है। इसके सम्बन्ध में अन्य प्रकार की किम्वदन्ती भी सुनने में आती है।

महिला भी थी जिसे श्रीमद्‌ने कह भी दिया कि तरुण स्त्रियों को मूलनायकजी की प्रतिदिन पूजा नहीं करनी चाहिये † पर उसने सविशेष भावसे कोई ध्यान नहीं दिया। एकबार वह पूजा करते हुए रजस्वला हो गई। इस महान अपवित्र आशातनाके होने से श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी की प्रतिमा पर तत्काल ही व्रण हो गये। श्राविका दौड़ी हुई श्रीमद्‌के चरणोंमें आई और भयभीत होकर कहने लगी कि महाराज! मैं तो मर गई। इस प्रकार की महान आशातना मेरे द्वारा हो गयी, क्षमा कीजिये। आपके उपदेश पर मैंने ध्यान नहीं दिया, अब उपाय आपही के हाथ है। श्रीमद्‌ने उसी रात को धरणेन्द्रजी से इस विषय में उपाय पूछा। धरणेन्द्रजीने कहा—ऐसी आशातना होनेपर अधिष्ठायक देव तत्काल ही चले जाते हैं पर मैं तो आपके लिहाजसे स्थानमें उपस्थित हूं। श्रीमद्‌ने दीपचन्द और औषधि धरणेन्द्रजीके द्वारा मंगवाकर अष्टोत्तरी[1] स्नात्र करवाया जिससे सब आशातना दूर हो गयी। आज भी ध्यानपूर्वक देखने से श्रीगौड़ीपार्श्वनाथजी के जिस्म पर थोड़े थोड़े व्रण के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

---

† पूर्वाचार्यों ने अशुचि आशातनादि कारणों से ही महिलाओं के लिये प्रतिदिन मूलनायक भगवान की अंगपूजा का निषेध किया है।

१ तीर्थंकर प्रतिमा का १ कलशों से विधान अनुष्ठान पूर्वक अभिषेक करने को अष्टोत्तरी स्नात्र कहते हैं। अब उपद्रव [illegible] निवारणादि विशेष प्रसंगों पर यह विधान किया जाता है। सं-१६५५ में युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से जयसोम उपाध्याय ने लाहौर में "अष्टोत्तरी स्नात्र विधि" बनाई जिसकी प्रति बीकानेर के ज्ञानभंडार में है।

गुदड़ी में शीत ज्वरारोप —

कहा जाता है कि एक बार महाराजाधिराज आपके दर्शनार्थ पधारे, आप को उस दिन सियालाऊ शीत ज्वर आया हुआ था। आप ओढ़ी हुई गुदड़ी से निकल कर आ विराजे और प्रसन्न रूप से वार्तालाप करने लगे। महाराजा की नजर गुदड़ी की ओर गई तो देखा कि वह शीतज्वर प्रकोप से कांप रही थी। महाराजा ने निवेदन किया महाराज आप जैसे महापुरुषों के पास भी ज्वर आता है ? आप आने ही क्यों देते हैं ? श्रीमद् ने कहा राजन् अपने सञ्चित कर्मों का भोक्ता आत्मा स्वयं है अतः भोगने से ही छुटकारा होता है।

कोठारीजी पर कृपा —

बीकानेर निवासी गिरधर कोठारी की माँ आपकी की परम भक्त थी। गिरधर के पिता नाहटों (संभवतः मदजी नाहटा) के यहाँ नौकरी करते थे। एक बार उन्होंने डांट फटकार बता कर कोठारीजी को नौकरी से अलग कर दिया। श्रीमद् जब आहार पानी के लिये गये पर वृत्तांत ज्ञात कर नाहटाजी को समझाया पर उनके न मानने पर कहा जाता है कि श्रीमद् ने उन्हें महाराजा सूरतसिंह के पास धर्मशाला संबंध प्रियपात्र नियुक्त कर दिया। क्रमेण राज दरबार में जाने के कारण कोठारीजी की अवस्था अच्छी हो गई। मदजी नाहटा को किसी ने कहाया—

> "मद्रिया मत कर गीरधो दुरजणिये नै देख।
> पे नागमन व मायजी, धोरा मारो मेख॥"

बीकानेर में श्रीमद् की स्मृतियां :-

बीकानेर में आप श्री के कई कार्य कलाप विद्यमान हैं। बीकानेर के बड़े उपाश्रय का सभा, देवगृह, वीतरागस्तम्भ आदि आपके समय के हैं। नाहटों की गुवाड़ के आदिनाथ जिनालय के दरवाजे को उपदेश देकर सामने से खुलवाया क्योंकि सामने दरवाजा नहीं रहने से भगवान की दृष्टि पड़ती थी, अब राह चलते व्यक्ति को शत्रुंजयावतार श्रीऋषभदेव (सं० १५५२ वै० व० ७ में यु० जिनचंद्रसूरि प्रतिष्ठित) प्रभु के दर्शन हो ही जाते हैं। सं० १५६१ में प्रतिष्ठित श्री चिन्तामणिजी (बीकानेर का सर्व प्राचीन जिनालय) के मंदिर द्वार के दोनों ओर लगे हुए हाथियों को आपने ही यहां लगवाये थे। कहा जाता है कि पहले ये श्री नमिनाथ जिनालय में थे जो उस जमाने में शहर के किनारे और सुनसान जगह में अवस्थित था। अब बगीचा व कमरों से मन्दिर का नया दरवाजा हो जाने से इसकी शोभा बढ़ गई है। यह मन्दिर बच्छावत कर्मसी ने सं० १५ १ में बनवाया था।

उदरामसर मेले का प्रारम्भ

बीकानेर से ४ कोस की दूरी पर स्थित उदरामसर के पास दादा साहब जिनकुशलसूरिजी का प्राचीन स्थान है। बालू के बड़े बड़े टीबों को पार करके वहां जाना होता है। श्रीमद् ने सं० १८८४ के मिती माघ सुदि १५ के दिन वहां का "मेला" स्थापन किया। राज्य की ओर से रथ घोड़े सवार इत्यादि जाने लगे तथा जनता भी सैकड़ों सवारियां लेकर वहां एकत्र होने लगे। आज तक यह मेला चालू है। इसस्थान

थे पूजा व गोठ-जीमनवार, वगैरह हुआ करते हैं। उस समय का बनाया हुआ सेवग हंसजी का गीत मिला है जो इस प्रकार है —

गीत साणोर

मुरे महीपति हुकम सूं सिरै हुयो, मगरियो मायवा सुद पूनम मारो।
पौत सूं दादा जिनदत्तसूर रै पगां सकै आवो मात सै दूनी सारो ॥१॥
मावा मनख्यार साहुकार बहु आवियां, तंबूड़ा कनातां पास तणीया।
तेज पय पम दरबार सद्गुर तणौ बढ़ा सूं दगमगा थाट पणीया ॥२॥
दरस पण कमरां हुंत सेवा हुवै, राग रंग बधै उमरंग रीत्तं।
सिरै गोठां घटा उमग हैं सवाया, कड़ेके जगत में भली कीत्तं ॥३॥
पमस चोवा रपां बड़ां मानव पणां, मलो हुय हजारा जातक मेलो।
श्रीव गुरुदेव मारग्ग परताप सूं मंडायो खूब सदासुख मेलो ॥४॥
इति गीत सेवक हंसजी रो कह्यो ॥

यति फतैचन्दजी और श्रीमदराजजी से धर्मस्नेह —

श्री कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा के यति फतैचन्दजी से आपका अच्छे स्नेह था जिस की तुलनाएकता में उन दिनों सभी शाखाओं के यति लोगों ने सम्मान बनाई थी। कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा की शाला (प्रवेशके द्वार के पास वाला मकान) के निर्माण होने पर श्रीमद् ने निम्न कवित्त द्वारा सूचना दी थी। इस पत्र का "कवित्त" शब्द श्रीमद् की स्फुरणा का द्योतक है।

"पं० प्र०,श्री १०८ श्री फतैचन्दजी सदियां रां यति पं० मारूल रो। सदा वंदना। साधु संबन्धि साला विवस्था वर्णनं यथा ——

सवैया चौबीसा

"सरस रसाल विसाल निहाल कै पूरजनसाल कै साल सलैगी
कलेगी कलांत दिनानन्दसे जब कार्तिक मास पुनैं सिलगैगी
जरिजैगो ताप संताप कभी न मिटै, मन चकवा बिन चकवा सिसकैगी
सीतल कमल नहीं मर्दो सरस पै सज्जन बिन मन माहि जगैगी।"

इसी रचना के बा० जयकीर्तिजी गणि (श्रीपालचरित्र कर्ता-गोत्र राजजी) तथा संघजी से श्रीमद् का अच्छा सम्बन्ध था। श्री जिन कृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार में श्रीमद् के साथ इन दोनों का चित्र था जिसे हमने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ग्रन्थमें प्रकाशित किया है श्रीमद् की रचनाएं सर्वाधिक इसी ज्ञानभंडार में पायी गयी थी। इन्ही की प्रतियों से नकलें की थीं। खेद है कि अब इस भंडार की प्रतियें सब बिखर गयी है।

सं० १८८५ ज्ञानपंचमी के दिन आपश्री के उपदेश से हाकिम कोठारी जोरावरमलजी के पुत्र कीरतमलजी ने पं० प्र० फतेचन्दजी को विशेषावश्यक (पत्र ५६) और निरयावलि सूत्र (पत्र ४६) की प्रतियें बहरायी थी जो श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार में विद्यमान थी।

जैसलमेर नरेश का आमन्त्रण व बीकानेर नरेश के अनुरोध से विहार स्थगित —

आप को बीकानेर पधारे बहुत वर्ष हो गये थे। आप की इच्छा थी कि समाधिमरण बीकानेर में ही हो। फिर भी अन्यस्थान

के मेरोठें व मालवे के आग्रहवश कई बार विहार करने की तैयारी की तो महाराजा सूरतसिंह और उनके बाद महाराजा रतनसिंहजी [1] जो आपके परमभक्त थे, इस वृद्धावस्था में विहार करने से अत्यन्त अनुनय-विनय पूर्वक रोक लेते थे। जयपुर, किशनगढ़, जैसलमेर इत्यादि नगरस्थ श्रावकों एवं राजमहाराजाओं के पत्र आपको बुलाने के लिये बराबर आते रहते थे। जैसलमेर के महारावलजी श्रीगजसिंहजी (राज्यकाल सं० १८७६—१९०२) एवं उनके दीवान बरडिया मुहता साह श्री जोरावरसिंहजी अमृतसिंहजी के सुनहरे बेलबूटों वाले कई पत्र हमारे संग्रह में हैं जिनमें आपश्री से अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक जैसलमेर पधारने की प्रार्थना की गयी है। सं० १८८९ मिती माघ सुदि ११ का प्रथम पत्र मिला है जिससे मालूम होता है कि पत्र-व्यवहार पहले से चालू था। दूसरा पत्र सं० १८९१ मिगसर बदि १ का एवं तीसरा पत्र माघ सुदि ४ का है जिसमें महारावल ने स्वयं वंदना लिखी है, चौथा पत्र सं० १८९२ माघ सुदि ५ का है जिसके साथ खास रुक्का भी विद्यमान है। इन चार पत्रों के अतिरिक्त और कई पत्र नहीं मिले, जो नष्ट हो गये प्रतीत होते हैं। श्रीमद् के दिये हुए पत्रों में एक पत्र सं० १८९० मिति पौष बदि ११ का मिला है

---

[1] इनका जन्म सं० १८४७ में हुआ। सं० १८८५ में अपने पिता महाराजा सूरतसिंह का स्वर्गवास होने पर राज्याधिकारी हुए। ये भी अपने पिता की तरह श्रीमद् के परम भक्त थे। खरतरगच्छ के बड़े उपाश्रय व श्रीपूज्यों के प्रति बड़ा आदर रखते थे इनका सं० १९०८ में देहान्त हुआ।

महारावलजी की वाञ्छापूर्ति —

जैसलमेर के महारावलजी के पुत्र की वांछा थी और इसके लिये श्रीमद् से बराबर मान्यता कराते थे। आपश्री ने चैत सुदि १४ की रात्रि को यक्षराजजी से इस विषय में पूछा। यक्षराजजी ने प्रतिपदा के दिन आकर खुलासा किया कि इनके दो पुत्र का योग है पर दम्पति के सविकृत वीर्य्य के अभाव में बाधा है। श्रीमद् ने औषधि प्रयोग कराते हुए अफीम, मांस एवं सुरापान आदि मादक द्रव्यों के त्याग का निर्देश किया था। इस पत्र की नकल श्रीमद् के हाथ की लिखी हुई हमारे संग्रह में है।

उदरामसर दादाबाड़ी का जीर्णोद्धार —

उदरामसर ग्राम के बाहर दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी[1] का प्राचीन स्थान है जिसके आस-पास बालू की प्रचुरता होने के कारण मंदिर नीचे धस गया था एवं दादासाहब के चरण भी ऊंचे उठा कर प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता थी। सं० १८८४ के आसपास जैसलमेर के बाफणों-पटवों की बरात बीकानेर के सठिया अमीचंद जी के यहां आई थी इस अवसर पर श्रीमद् के उपदेश से सठियाजी ने गौड़ी पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में सम्मेतशिखरजी का मन्दिर निर्माण करवा कर तीर्थाधिराज सम्मेतशिखर का संगमरमर का विशाल पट प्रतिष्ठित करवाया तथा जैसलमेर वालों[2] ने उदरामसर स्थित दादासाहब

---

[1] देखें हमारा "युगप्रधान जिनदत्तसूरि" ग्रन्थ।

[2] यह खानदान राजस्थान में बड़ा प्रसिद्ध रहा है देखें जैन लेख संग्रह भाग ३

सूरिजी ¹ के पक्ष में थे और बीकानेर के महाराजा रतनसिंहजी बीकानेर वालों के पक्ष में। कई वर्षों तक इस विषय में खींचतान और सिफारिसें चलती रही। इस विषय के कितने ही विवरण पत्र, चिट्ठियाँ और राज्यादेश पत्र दोनों गद्दियों के श्रीपूज्यों के पास व ज्ञान-भंडारों में विद्यमान है। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने इस मन्थी को सुलझाने का पर्याप्त प्रयत्न भी किया होगा पर गच्छभेद तो हो गया सो हो ही गया इससे खरतर गच्छ की संगठित शक्ति बिखर गई। सं० १८८७ भादवा वदि १ को जयपुर से संविग्न पं० मंगल ने श्रीमद् को पत्र दिया था जिसमें केवल इस विषय के ही समाचार हैं यह पत्र हरिसागरसूरि जी के संग्रह में हैं। इससे मालूम होता है कि यह विवाद वर्षों तक चला था।

स्वर्गवास :--

इस प्रकार ग्रन्थरचना, शासनसेवा तथा आध्यात्म-धारा में अपने जीवन का साफल्य करते हुए आप ९८ वर्ष की दीर्घायु में स्वर्गवासी हुए। अपनी अन्तिम रचना भी गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन में श्रीमद् स्वयं फरमाते हैं कि—

---

१ आप जनाब के सामसुखा रूपजी की पत्नी सुन्दरी के पुत्र थे आप का जन्म सं १८६७ दीक्षा सं १८८५ आचार्य पद सं १८९२ में हुआ। आप बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। अनेक स्थानों में आपने प्रतिष्ठाएं की थी जिनमें शत्रुंजयस्थ मोतीसाह सेठ की टूंक उल्लेखनीय है। सं० १८९१ में जैसलमेर के पटवों ने आपके उपदेश से शत्रुंजय का विशाल संघ निकाला। इस संघ में तेरेस लाख रुपये व्यय हुए, उदयपुर, जैसलमेर, कोटा, जोधपुर आदि शहरों की रिजास्ते साथ थी जिनमें ४ वणिक थे। सं १९१४ में इनका स्वर्गवास हुआ।

नरेशों पर प्रभाव :—

श्रीमद् बड़े सामर्थ्यशाली विद्वान्, निस्पृह सर्वगुणसम्पन्न आत्मानुभवी योगीश्वर थे अतः इनका प्रभाव जैन व जैनेतर समाज में सर्वत्र व्याप्त था। जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी व माधवसिंहजी उदयपुर के महाराणा भीमसिंह जी के दरबार में आपका अच्छा सम्मान था। जैसलमेर के रावल गजसिंह जी व बीकानेर नरेश सूरतसिंह जी व रतनसिंह जी आपके परमभक्त थे। जिनके नाम रुक्के व पत्रादि का कुछ उल्लेख पिछले पृष्ठों में आ चुका है। ये उभय महाराजा पर्यन्त तक आपकी सेवा में रहते थे। पाठकों की जानकारी के लिये महाराजा सूरतसिंहजी के पत्रों के कुछ अवतरण यहां दिये जाते हैं — 'स्वस्ति श्री सकल उपमा विराजमान सामीजी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री नारायण देव जी सु स्वयं सूरतसिंह री धोक एक दंडोत ममोनारायण बंचसा माळुम हुवे अपंच कियापत्र आपरो आयो बांचीयां सु थको खुसयाली हुई आपरे पावे लागां दरम्मण कीयां रो स्ये आसुद हुवो आपरी आज्ञा माफक मनस्या वाचा कमरणा कर कठी बात में कसर न पड़सी आपरी इच्छा माफक सारी बात रो आनद खुसी है नारायण री आज्ञा में फेर समेर करसी छे आजाशी वो नारायण रे घर रो चोर हरामखोर हुसी जै रो आठे बठे भोंयां लोग्यां बुरो हुसी वैने पके सिणेकी में ठौड़ न है। आपरो मनरा साख्या सदा क्रिपा महरबानी फुरमावे है जै सु विशेष फुरमावणा रो हुकम हुसी दूजी कारज सारी आपरे तु कही है स्यो मालुम करसी सं० १८७० मिती मिगसर सुदि १"

भी तो बात ही क्या पर देव भी आपकी सभा में सर्वदा नतमस्तक रहा करते थे। सं० १८८४ में कवि कृपाराम ने आपकी स्तुति में लिखा है कि—

"कन्ना गोरा सत वीर कहया में, पूरण परचा यु दवै
चोसठ योगिनि सदा गुरां रे आठ पहर हाजर रेवै।

★ ★ ★

पद्मराज की मह्र हुई है कमी न रवै कवकांई ॥३॥
चिन्तामण स्वामी सचराचर, पूरण परचा यूं दवै
महाराज की कृपा मोटी दिल मिल के बातां करै ॥५॥"

भगवान श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ स्वामी पर आप की पूर्ण भक्ति थी अतः श्री चिन्तामणि पार्श्वप्रभु आप से बड़े प्रसन्न रहते थे व प्राय: रात्रि के समय उपस्थित होकर आपसे वार्तालाप किया करते थे। बीकानेर महाराजा सूरतसिंहजी के खास-रुक्कों में अनेकबार महाराज को श्री भाखा व प्रश्न—समाधानादिका जिक्र आया है। इसी प्रकार जैसलमेर के महारावल गजसिंहजी के पुत्र नहीं था और उन्होंने अपने खास रुक्कों में इसके लिये महाराज श्री से अज करने की आग्रहपूर्ण भावना की जिसके उत्तर में श्रीमद् ने जो लिखा उसकी नकल का आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है —

चैत्र सुदि १४ पाछली पुहर दोढ रात रहयां श्री पंचोई पद्मराजजी पधार्या मैंढ श्री आपरै हाथ सूं कर्यां री आज्ञा प्रमाणे पूजाणो पर्यों को सो सीधो स्वयराज फुरमायो-मुक्म री

मैणक निधान मानि धर्नतरि सो पान जस गन्ध चौरासी माम्ह चोपे सरताम है।

जसमेर में कवि नवलराय ने भी आपको प्रसंशात्मक कवित्त में वैद्यक ज्योतिष मंत्रतंत्र, कवित्त व राजनीति आदि म आपको निरारद बतलाया है। जयपुर नरेश के पत्रहस्ति की चिकित्सा का प्रसंग आगे लिखा जा चुका है। जैसलमेर नरेश तथा कितने ही दूसरों के पत्र आप के आयुर्वेद निरारद होना सूचित करते हैं। इस प्रकार आप एक कुशल वैद्य थे जो द्रव्य और भावरोग (रागादि दोषों) को विनष्ट करने में समर्थ थे।

कला नैपुण्य :—

आपश्री बड़े से लगाकर छोटे सभी कार्यों में सिद्धहस्त थे। हस्तलिपि आपकी बड़ी सुन्दर थी। ज्ञानोपकरणों का निर्माण आप बड़ी मजबूती से करते थे। आपके हाथ से बने पूठे, पाटिया पन्ही आदि आज भी "नारायणस्तत्री" नाम से विख्यात हैं जो बड़े मजबूत व कलापूर्ण हैं। आपने स्वयं अपने विहरमान बीसी के १२ में स्तवन में लिखा है कि —

"दूसर कला हाथ चोपा, ते पिण बहुत बणाये सीधा
जस बणायो जस वर्यों थी मंद होम ते मंडोगुणी ॥ ॥
कवि नवलराय ने आपके कवित्त में लिखा है कि —
"कमें विरवषमा सो दूसर हजार जाके,
वैद्यक में जाण सब ज्योतिष यंत्रतंत्र को
आपके मस्तक हाथ में कला का दर्शन होता है। साधारण

गुरुहो पुण्य कमाया, आप स्थान में मुझ निर्बुद्धि को रखोग तो मैं धन्य धन्य कहाया सिवाय इसके और कुछ है नहीं।"
"पत्र बाबाजी श्री १०८ ज्ञानसार जी महाराज जी के चरणों में"
लघु आनन्दघन --

आपने अपने दीर्घजीवन का अधिकतर भाग आध्यात्म ज्ञान दिवाकर श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के स्तवनों तथा पदों के मनन, अध्ययन परिशीलन व आलोचन में बिताया था अतः आपके जीवन में आनन्दघनजी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था आपकी के पद व स्तवनादि में वह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आपने अपने साहित्य चौबीसी बालावबोध आदि सभी टीकाओं व प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में पचासों जगह आनन्दघनजी के पद व स्तवनों के अवतरण उद्धृत किये हैं उनके आत्मानुभव व रहस्यमय वाक्यों को जितना आपने समझा था, दूसर किसीने नहीं। आप उनके साहित्य परिशीलन द्वारा स्वयं आनन्दघनमय हो गए थे आप स्वर्गीय श्रीजयसागरसूरिजी के लिए अनुसार यदि आपको लघु आनन्दघन नाम दें तो सार्थक और सर्वथा संगत ही मालूम देता है। आनन्दघन चौबीसी के चिरकाल मनन की कथा श्रीमद् स्वयं सुविधिनाथ स्तवन की प्रस्तावना में भी इसप्रकार लिखते हैं —

"मैं ज्ञानसार मारी बुद्धि अनुसारे सं० १८२१ थी विचारते विचारते सं० १८६६ थी कृष्णगढ़ माय दर्भो लिख्यो पर्व मैं इसा बरसमें विचारतां भी सिद्ध थई—"

आपके पदों में भी आनन्दघनजी का प्रभाव स्पष्ट है।

गुरुको पुण्य कमाया, आप ध्यान में मुझ निर्बुद्धि को रखोग तो मैं धन्य धन्य कहाया सिवाय इसके और कुछ है नहीं।"
"पत्र बाबाजी श्री १०८ ज्ञानसार जी महाराज जी के चरणों में"

लघु आनन्दघन --

आपने अपने दीर्घजीवन का अधिकतर भाग आध्यात्म ज्ञान-दिवाकर श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के स्तवनों तथा पदों के मनन, अध्ययन, परिशीलन व आलोचन में बिताया था अतः आपके जीवन में आनन्दघनजी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था आपकी के पद व स्तवनादि में यह स्पष्ट दृग्गोचर होता है। आपने अपने साहित्य चौबीसी बालावबोध आदि सभी टीकाओं व प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में पचासों जगह आनन्दघनजी के पद व स्तवनों के अवतरण उद्धृत किये हैं उनके आत्मानुभव व रहस्यमय वाक्यों को जितना आपने समझा था, दूसरे किसीने नहीं। आप उनके साहित्य परिशीलन द्वारा स्वयं आनन्दघनमय हो गये थे अतः स्वर्गीय श्रीजयसागरसूरिजी के लिखे अनुसार यदि आपको लघु आनन्दघन' नाम दें तो सार्थक और सर्वथा संगत ही मालूम देता है। आनन्दघन चौबीसी के चिरकाल मनन की कथा श्रीमद् स्वयं मुनिसुव्रत स्तवन की प्रस्ताविका में भी इसप्रकार लिखते हैं —

"मैं ज्ञानसारे मारी बुद्धि अनुसारे सं० १८२१ थी विचारतो विचारतो सं० १८६६ थी कृष्णगढ मध्ये टबो लिख्यो पर मैं इसरा बारम्बे विचारनोंही सी सिद्ध थई—"

आपके पदादि में भी आनन्दघनजी का गहरा रंग है।

"बाह्य कष्ट देखाड़ी मुग्ध मरीला घणा,
बंचे मुग्ध ने हे कपटेरा सुहामणा"

(शत्रुं जय स्तवन पृ० १३७)

ज्ञानसार नाम पायो ज्ञान नहिं गेहरा।

(आर्द्रजिन स्तवन पृ० ११५)

हुँ महा मंदबुद्धि, शास्त्र नु परिज्ञान किमपि नहीं। तेहथी दोरे मुं ई मोटाओनी बात किम रिझाय'

(अध्यात्म गीता बाला० पृ० ११२)

हुँ महा मूढ़ गेंवार, कर्तो महापंडिताई"

(वही पृ० ३२८)

हमसे मैंसे गेवार, कौन करेगो हक मेक,

(पृ० १७६ मति प्रबोध छत्तीसी)

मुग्ध जीवना वंचकी बाह्य क्रिया कलाप दिखावी ने मुग्ध लोकोने स्वमत आग्रना आदरयो"

(पृ० ३६० विविध प्रश्नोत्तर)

"मुग्ध सहवा भ्रष्टाचारियो नी संगते शान्ति स्वरूप न पामें।"

(आनन्दघन चोबीसी शान्ति स्त० बाला०)

निष्पृहता :—

कहा जाता है कि एक बार आप उदयपुर पधारे। आपके सद्गुण एवं सिद्धियों की प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी। जब मेवाड़ पति महाराणा की दुष्प्रभिन (ज्वपारहित) रायी ने सुना तो वह

देखिये प्रश्नोत्तर पत्र पृष्ठ ४ ८।

भी प्रतिदिन श्रीमद् के चरणों में आकर निवेदन करने लगी कि गुरुदेव कोई ऐसा मन्त्र दीजिये, जिससे महाराणाजी की अप्रसन्नता दूर हो और मैं उनकी प्रियपात्र हो जाऊं। श्रीमद् ने बहुत समझाया, पर रानी किसी तरह न मानी और यंत्र देने के लिए विशेष हठ करने लगी। तब श्रीमद् ने एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर दे दिया। रानी की श्रद्धा और श्रीमद् की वचनसिद्धि से ऐसा संयोग बना कि महाराणाजी की उस रानी पर पूर्ववत् कृपा हो गयी। श्रीमद्‌रचित यन्त्र के वशीकरण की बात महाराणाजी तक पहुँची और उन्होंने यंत्र के सम्बन्ध में इनसे पूछताछ की। श्रीमद् ने कहा "राजन्! हमें इन सब कार्यों से क्या प्रयोजन?" अंत आगे के लिये यंत्र खोलकर देखा गया तो उसमें "राजा रानी सु राजी हुवे तो नरहे ने कंइ राजा रानी सुं रूसे तो नरहे ने कंई" लिखा मिला। इसे देखकर महाराणाजी आपकी निस्पृहता और वचनसिद्धि पर बड़े ही प्रभावित हुए। इसके बाद महाराणा भी आपके अनन्य भक्त हो गये थे। श्रीमद् की कृतियों में महाराणा जवानसिंह आशीर्वाद नामक कवित्त तथा उनकी वचनिका उपलब्ध है जिससे भी आपका महाराणाजी के साथ घ निष्ठ सम्बन्ध मालूम होता है। इस कवित्त एवं वचनिका में रचयिता का नाम तो नहीं है पर यदि श्रीमद् ने उनकी रचना की होगी तो बीकानेर में रहते ही, क्योंकि महाराणा जवानसिंहजी का राज्यकाल उदयपुर के इतिहास के अनुसार सं० १८८५ से १८९५ तक का है उस समय श्रीमद् बीकानेर ही थे।

अपने पिछले जीवन में समस्त प्रवृत्तियों में भाग लेते हुए भी आप सर्वथा निर्लेप रहते थे। अध्यात्म और योग की गहरी अनुभूति में योगी के जल-कमलवत् निर्लेप रहने का प्रसंग मिलता है आप उस अवस्था को प्राप्त कर चुके थे फलतः व्यावहारिक क्रियाओं को सम्पादन करते हुए भी आप उनसे निर्लेप रहते थे। नामकी कामना से आप सर्वदा दूर रहे। बीकानेर के गौड़ीपार्श्व जिनालय, दादावाड़ी उपाश्रय आदि में जीर्णोद्धार तथा आप नाना प्रवृत्तियां आपके उपदेशों के फलस्वरूप हुई थी पर आपने शिलालेखादि में कहीं अपना नाम नहीं आने दिया।

आप उच्च कोटिके टीकाकार और समालोचक थे। श्रीमद् आनन्दघनजी देवचंद्रजी यशोविजयजी आदि के ग्रंथों पर विवेचन लिखते समय आपने सच्चे समालोचक का कर्तव्य पालन करने के नाते श्रीमद् देवचन्द्रजी ज्ञानविमलसूरिजी तथा मोहनविजयजी आदि विद्वानों की बड़ी ही मार्मिक स्पष्ट और निर्भयतापूर्वक समालोचना की है। इन टीकाओं तथा आलोचनाओं से आपके प्रखर पाण्डित्य और अप्रतिम प्रतिभा का सहज पता मिलता है। इन में विशेषता

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी का आध्यात्म अनुभव और द्रव्यानुयोग का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। आपकी रचनाओं में जैन तत्त्वज्ञान अध्यात्म का रहस्य और भक्ति कूट कूट के भरी है। अपना अनुभव वचन की उच्च पाठक को आपकी छोटी से छोटी रचना में भी मिले बिना नहीं रहेगी। श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ने आपकी रचनाओं पर मुग्ध होकर छोटी-बड़ी समस्त रचनाओं का संग्रह बड़े प्रयत्नपूर्वक किया और अध्यात्म ज्ञानप्रचारक मंडल की ओर से

"प वत्तमान २०० विस्स वरसो ना काल मां एहवा कविराजान अन्य पोता निमय लखवा थया, नें आगम्यों एप अति विशेष हतू । नै हुं महामन्दबुद्धि शास्त्र मु परिज्ञान किमपि नहीं तेहथी मोटे मुहें मोटाथो नी वात किम लिखाय । पर्रं भावक नें अति आग्रहे में रच्यो करवा माड्यो । तिहां जिम योजना मां सम विसम होय तिम निश्चु जोइय तेहथी लिखूं । "सद्गुरु संग" वली मागला कहा । करै गुरुसंग" । पुनरपि 'धुद्ध गुरुयोग थी" । एम बे गाथा मां बया ठिकाणे गुरु शब्द ग्रह्यु ते पुनरोक्ति दूषणें दूषित कविता छे । आधुनिक सहिलता कवि ते पिण ए दूषण तो टाले छो एहवें मोटे कवि ए मोटु दूषण को न टाल्यु ए विचारवु "

"स्वगुण द्रव्यपर्याय ने आमावे कर्तो कारण कार्यनी पकता न संभवें म निरावाय पणु संभवें तथी "स्वगुण आयुध पको कर्म चूरै" ए माव प्रथम गृ ग्रवु योग्य प्रान अवसम्य छे तेनो आमावे वारकवार स्वमावी सम्पूर्ण सम्पन्न किम साथी सक थिया हुं महा मूलमोहर कर्ता महापण्डितराज पर्रं विबुधैर्विचारणीयं ।"

'पोताना आत्माने चिन्तम करो ध्यानें इहां धम ध्यान सुलभाये गुण्यो तेतो मीथल गुणठाणें रह्यो । नें एज गाथा मा चोथा पद में मरमोही गे मिकल्प जाय, इस्यो गुण्यो ते तो एता तो क्षीणमोह बारमे गुणठाणे नी वात छे पर्रं मने तो गुण्या प्रमाणें कार्य करयाँ ।"

आठत्रीसमीगाथा मां चतिम पद मां आवाह पद गंथ्यो कांई ३९ गाथा में निराबाध पद गुण्यो तिहां अबाद निराबाध ए बे शब्द ए अर्थे एक छे पर्रं मुझने अक्षर प्रमात्र कार्य करवु पर्रं पुनरुक्ति छे ।"

विजय ' दामदुन्दरिया पीते याच्यो तेज वधाय्यो, व देवचन्द जी ने पू
पूर्व मु ज्ञान पक हतु तेथी गहरपटरिया, मोहनविजय ' पण्यास ने

---

२ महोपाध्याय यशोविजयजी जैन साहित्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र थे। इन्होंने काशी में तीनवर्ष रहकर विद्याध्ययन किया। न्यायविशारद न्यायाचार्य आपकी उपाधि थी आपने संस्कृत, गुजराती और हिन्दी में सैकड़ों रचनाएं की। कहा जाता है कि हरिभद्र सूरिजी के पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ऐसे गम्भीर दार्शनिक विद्वान आपही हुए हैं। न्याय विषय पर ही आपने सौ ग्रन्थ बनाये ऐसा कहा जाता है खेद है कि थोड़े वर्षों में ही समुचित प्रचार के अभाव में आपकी २—३ कृतियाँ उपलब्ध नहीं रहीं। आपका जीवन-चरित्र "सुजसवेलि" नामक समकालीन रचना में पाया जाता है। आपकी भाषाकृतियाँ गूर्जर साहित्यसंग्रह भाग १-२ में प्रकाशित हैं। सुप्रसिद्ध विनयविजयोपाध्याय आपके सहपाठी थे, उनकी अन्तिम अपूर्ण रचना श्रीपाल रास की पूर्ति आपही ने की थी जिसकी पद्य ढालें आजकल जनसमुदाय में सर्वत्र प्रसिद्ध है। सं० १ ७४ में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके तत्त्वार्थगीत पर श्रीमद् ज्ञानसारजी ने बालावबोध लिखा जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है। आपके एक अन्य पद ([illegible] नहीं मन ठाम) का ज्ञानसारजी ने आनन्दघनजी के कथित बतलाया है पर उसके अन्तमें "जसविजय कर जोड़ लिखायो" छाप होने से ये रचना यशोविजयजी की निश्चित है।

३ पन्यास मोहनविजय तपागच्छीय रूपविजय कवि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७५४ से सं० १७८३ तक कई रास चौपाई आदि भाषा कृतियें निर्माण कीं। इनकी रचना सरल, मधुर और रोचक होने से बहुत प्रसिद्ध है। सं० १७८३ में रचे हुए चन्द राजा की चौपाई में हिन्दी दोहों में समालोचना लिखी है।

सदभसया, मुक्त मेभागात भय निगतु हे ते भक्षर ममाणे भय लिखीस किहां सरीखो भय दीस त म्हारो दूषण न कातस्यो भक्षर विगत्र बर्वे माये दूषण सही" "आगे नवमी गाथा र पहले पद में मायभये भावन नी पूछता रे इनो पद गूथ्यो ए पद नो सम्बन्ध वारमें गुणठाणे विना मिले नहीं पण कताए गूथ्यो तथी मने पद रो मर्म कल्पे ते लिख्यूं पिण मिमाय कता ए भावन पद गूथ्यो तथी पुनरुक्ति भय लिख्यो"

ज्ञानविमलसूरिजी की आलोचना –

श्रीमद् आनन्दघन जी महाराज की चौवीसी पर श्रीज्ञानसारजी महाराज का अध्ययन बहुत गम्भीर था। आनन्दघनजी के तत्त्व ज्ञान और आत्मानुभवमय गूढ़ स्तवनों पर विवेचन होना बहुत आवश्यक था यद्यपि श्री ज्ञानविमलसूरिजी ने उसपर टब्बा

१ आप भिन्नमालके ओसवाल वासव की पत्नी कनकावती के पुत्र थे। आपका जन्म स १६६४ दीक्षा स १७ २ स १७२७ में पन्यास पद स १७४८ में सूरिपद प्राप्त हुए। स १७ में आपके उपदेश से शत्रुंजय का एक संघ निकला। आपने संस्कृत और भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनके सम्बन्ध में जैन गूर्जर कविओ भाग २/३ में देखना चाहिये। आपके रचित स्तवनादि सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं जिनके संग्रह रूप २ भाग प्रकाशित हुए है। सं १७०७ पाटण में आपका श्रीमद् देवचन्द्र जी से मिलना हुआ था। उनके सहस्रकूट जिनों की नामावली बताने पर आप बहुत प्रभावित हुए थे। सं १७८२ में खंभात में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपकी सं १७२८ से सं १७७५ तक रचनाए उपलब्ध हैं। तपागच्छीय धीरविमल गणि के आप शिष्य थे।

"अर्थ कर्ता ज्ञानविमलसूरे ए गाथा नो अर्थ करतां हुं छु तो महामूर्खशेखर पर मांहि तो मामूर थोडुं ज विचार्य जणाय छे यथा— ★ ★ ★ स्युं समज पर रागनी नु नाय सरखू ही मल्हार" (विमल जिन स्तवन बाला०)

"ए स्तवन नो अर्थ करतां अर्थकर्तायें मूल भीत न विचार्युं — धार तरवार नी सोहिली पर्ण १४ जिन नी चरणकमल सेवा मां विविध क्रियायस्यूं छेलो, फिरी चरणसेवा मां गच्छ ना भेद तत्व नी वात बूर मग्या निज काम करवामों स्यो सम्बन्ध ? फिरी चरणसेवा मां निरपेक्ष सापेक्ष वचन सूत्र भाषा नो स्यो सम्बन्ध ? फिरी देवगुरु धर्म नी शुद्ध श्रद्धा नी शुद्धता उत्सूत्र सूत्र भाषणा नो पाप पुण्य नो सम्बन्ध स्यो ? पर चरण सेवा—चारित्र सेवा ए अर्थ न पाम्यु चरणसेवा पत्नीमां भासु, तेह थी एज अर्थ ने सिद्धी थी भिन्नी पर्ण त अधोमुख्य परे प्रभावना न चाल्या गया।" (अनंतजिन स्तवन बाला०)

अर्थकर्तायें अर्थ करतां "देखे परम निधान" मांहि निधान शब्दे धन निधान पकडो जिनमो ते मांहि 'निधान" शब्दे स्वरूप प्राप्ति रूप निधान देखे ए अर्थ छे। धन प्राप्ति रूप निधान अर्थ नथी समजतु ★ ★ ★ एहनो भिन्न अर्थ वसित छे पर लिखनानो स्थानक नथी (धर्म जिनस्तवन बाला०)

ए स्तवन मां अर्थकारके 'कहो मन किम परखाय' ए पद नो २ अर्थ करत मन प्रसन्नता थई ने कहो एहव परमेश्वर थी कहु ने ए वचन विरुद्ध छे। परमेश्वर ने मननु प्रसन्न न संभवे"

(शान्ति जिन स्त० बाला०)

सेसमण मन्काषणी नहीं एक रहस्य विचायुं अगाय छे फिरी आगल पिण पणे ठिकाणो प्रमाण शिक्ष्यु छे मे तमे ए टवामा मर्म जमे ते टवा नो मर्म जोइ नै विचारस्यो तइये प्रकट अत्यानस्यै एमा मैं निवखिये मारी मूढ मतें शिक्ष्यु छे पर कर्ता नो गमीरताय करता समझे" (नमिनाथ स्तवन बाला०)

"मर्म मरै मर्म शिखतै" शिष्य कोणी तुम मे जोक शिष्य जोवो जोवो राज एक वार मुझने जोवो ए पद्मो ने ह्रेय स्वामने जोवो राज मुझने जोवो राज नो मर्म शिख्यो तुमे जोवो हे राजन् मुझ ने जोवा नो मर्म शिख्यो को पोताना दास मात्र मुझ ने जोवो निरखो भांइ पवनी सो विचारवो हतो ए कविराज राजन् तो मर्म मिश्र बिना पुनरुक्ति दूषण दूषित पद योजना करवा थी राखो। तेथी सत्ता थांइ तो थांइ विचायुं हतुं पर वेइ वार जोवो जोवो मर्म करी ने वेगला थई गया। "फिरी एक गुम्य पटतु नथी" जिहां गुम्य ए ठहिराम्यो के परपवा थाय्या पिण पाछा फिरी गया ए म्यानो गुम्य सर्व लोक थी प्रगट माने फेरी कारण रूपी नो मर्म शिख्यो प्रभूजीये पोता मो उपादान शुद्ध थाया ने ए प्रभू निमिरो रूप मम्यो छु प्रभू ए मम्यो एवो वचन गाजीमती मो छे पर कथामने गमो। (श्री नेमि जिन स्त० बाला०)

चन्द गजा रास की समालोचना —

अठारहवीं शती में कवि मोहनविजय एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं जिनकी कतिपय रास—चौपाई स्तवनादि की भाषा कृतियें उपलब्ध हैं। गत तीन शताब्दियों (१७ वीं से १९ वीं) में रासों का खूब प्रचार हुआ है। और हजारों की संख्या में भाषाकृतियां निर्मित हुइ।

इसमें केवल दोषों का उद्घाटन ही नहीं है अपितु अनेक रसभाविक हेतु युक्ति और उपमाओं से युक्त दोहों को यथास्थान डाल कर आलोच्य रास की शोभा में चौगुनी अभिवृद्धि की है। अपने ढंग की यह एक ही रचना है और समालोचना का आदर्श उपस्थित करती है पाठकों की जानकारी के लिए यहां उसके थोड़े से अवतरण दिये जाते हैं।

ढाल ६ गाथा ११ वीं तृतीय पद में—नृप मालिका वर्ण करयो गुण्यो पर मालिये राजा किम समावै छिद्र छोटा देवी बारी गुणकी योग्य दूती पर कवि की योजना मात्र व्यक्त करी नी है।

स्वपक्ष पर पक्ष को न कर सके कवि यक्ष
सो दूषण अलंकार को कैसे करे प्रयक्ष

★ ★ ★

इन दूषण अलंकार के, विवरण करे न जाय
इक दो चौ पट दस कहै, कोलों अधिक कहाय

★ ★ ★

लिख लिख अन्य कविन को नाम धरत कविराय
चोरी प्रगटे चोर कै, तो दू सौगन खाय

★ ★ ★

इस कवि ऐसा ज्ञान है मेरे जैसी बुद्धि।
शेष सबे को ध्यान है पावी शुद्धाशुद्धि
अपनी बुद्धि प्रमान कर कवि कविता कर लेत।
देखन कवि पंडित सब, दूषण भूषन देत ।२।

आपश्रीने पचासों जगह उदाहरण और अवतरण देकर विषय
। स्पष्ट किया है। इस अवतरणोंमें जीवविचार, कर्मग्रंथ,
स्वर्वद्नभाष्य, समयसार आवश्यक निर्युक्ति, पुष्पमालाप्रकरण,
ोघावश्यक, आचारांग स्थानांग, भगवतीसूत्र, उत्तराध्ययन,
नुयोगद्वार, प्रश्नव्याकरण, हेमकोश अभयदेवसूरि कृत महा
ोर स्तोत्र, सारस्वत व्याकरण, तत्त्वार्थसूत्र आदि आगम, प्रकरणों
था श्रीआनन्दघनजी, देवचन्द्रजी, यशोविजयजी, रूपचन्द्र
ाठक, मोहनविजयजी जिनराजसूरिजी आदिकी कृतियों तथा
द्वावाक्य, पाणिनी, कालिदास कबीर, भर्तृहरि इत्यादिके
ाक्योंका भी स्थान-स्थान पर नामोल्लेखपूर्वक निर्देश किया है।
ापने अपनी कृतियोंके अवतरण तो पचासों स्थानों पर
ेये हैं जिनमें कतिपय उद्धरण तो आपकी कृतियोंमें प्राप्त
ें अपशिष्ट मधुक्तियें" या तो प्रासंगिक हैं या वे जिन ग्रन्थों
की हैं वे ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इस ग्रन्थमें आये हुए अवतरणोंको
रिशिष्टमें देखना चाहिए। आपने स्वयं प्रसंगवश सन्मतितर्क,
ास्तुराज प्रभृति ग्रन्थोंके परिशीलनका उल्लेख विविध
रतात्तरादि ग्रन्थोंमें किया है।

१ सुप्रसिद्ध सिद्धसेन दिवाकर रचित जैन न्यायका यह प्रामाणिक ग्रंथ है।
इसपर वादि पंचानन श्री अभयदेवसूरि की महत्वपूर्ण विशिष्ट टीका प्रकाशित
हो चुकी है। श्रीमद्ने साधु-समाचारके उत्तमें इस ग्रन्थके ५५
श्लोकोंमें से ४० श्लोक स्वयं पढ़ने का उल्लेख किया है।

२ भारतीय वास्तुविद्या सम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है। इस

मम वाच बाधक अरथ, उपमा कर उपमेय
स्वपर पक्ष देसाम्रित कर कवि नर मतलेय।३।
जिय में आस्ये कूरुओ जिया में आयो कम्प
को गज घोरा को तके, घोरा कौन गयन्द
कथा असमम मो समक करें है।

तूटो दोरो छेद

नौ बरसां मढ लग रहे, आमा रहि उपजोग
सोल बरस दोरो मिले अन्तर कहो विशेष ?॥

इस ग्रन्थ में सुभाषित व लोकोक्तियों का भी समावेश करने के साथ साथ उपमाओं को खचित करने में अपूर्व रचनाकौशल्य व पाण्डित्य का परिचय दिया है।

कविवर बनारसीदास जी के समयसार में आई हुई कतिपय एकान्तवाद व निश्चय नय सम्बन्धी मान्यताओं की आलोचना आपने भाव षट्त्रिंशिका तथा जिनमतप्रकाशित भाषाप्रबोध बत्तीसी में सुन्दर सौष्ठव व माधुर्य गुण युक्त कविताओं में की है। जिन्हें पाठकों को इसी ग्रन्थ में पढ़कर स्वयं ज्ञान कर लेना चाहिये।

विद्वत्ता :—

आपश्री अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान और गीतार्थ थे। आपश्री की कृतियों में आगमज्ञान, अनुभवज्ञान व छन्द अलङ्कार व्याकरणादि प्रत्येक विषय का पाण्डित्य झलकता है। यों तो आपकी कृतियें सभी विषय की हैं परन्तु आध्यात्मिक कृतियें मुमुक्षुओं को सन्मार्ग प्राप्त करने के लिये बड़ी ही उपयोगी हैं। आपकी रचनाओं

हिन्दी— छत्तीसी ४, पूरब देश वर्णन छंद, चन्द चौपाई समालोचना, प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, कामोद्दीपन, माला पिङ्गल निशाणबावनी, प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य चौबीसी, ज्ञानसिंह आशीर्वाद बहुत्तरी।

राजस्थानी—संबोध अष्टोत्तरी आत्मनिन्दा नवपदपूजा, बामठ मार्गणा, हेमदण्डक आत्मनिन्दा ज्ञानसिंह आशीर्वाद वचनिका प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका विविध प्रश्नोत्तर नं० १-२ पचसमवाय विचार, विहरमानबीसी।

गुजराती—अध्यात्म गीता बालावबोध साधुसज्झाय बाला, आनन्दघन चौबीसीबाला प्रश्नोत्तर ग्रन्थ नं० १ (हिन्दीके प्रश्नोंके उत्तर) आनन्दघन पद बाला० आदि ग्रन्थोंमें राजस्थानी मिश्रित है कहीं-कहीं तो शुद्ध राजस्थानी भाषा ही लिखी है।

मुहावरे—आपकी भाषा बड़ी मुहावरेदार थी जिसका यहाँ थोड़ा नमूना उपस्थित किया जाता है।—

"ये नगरसेठ तो कोई डाइ में कांकरो राख के लिख्यो छै। परमव मयमु मिहर थका केई मुम्म सरीखा इसी ही कहिता हुसी। बिना मुण्यां जाणीजे छै ये लिख्यो न हुसी" "थें अध्यात्म गीता रा बालावबोधमें थोड़ो लिख्यो सो ऊपर लिखियो जिणरो मारो उत्तर दरावसी। हुंता परमाव री रागी हुवी हुवेंसु आपरो कराई आछो हुसी इसो लिखणो मो हु तो आछो होयछ

भाषा—

आपका जन्म राजस्थान (रियासत बीकानेर) में होनेके कारण आपकी मातृभाषा राजस्थानी थी। आपने अपनी कृतियोंमें राजस्थानी तथा गुजराती मिश्रित राजस्थानी व हिन्दी भाषाका प्रयोग किया है। जैन कवियोंने अपने ग्रन्थोंमें गुजराती भाषाका प्रयोग इसीलिए किया है कि गुजरात-मारवाड़ आदि सर्व देशीय श्रावकों व संघको वे रचनाएँ समान रूपसे उपयोगी हो सकें। पूर्वकालमें गुजराती और राजस्थानीमें आजकी भांति अधिक अन्तर भी नहीं था फिर भी जैनाचार्योंके साहित्यपूर्ण गुजराती भाषाको प्रमाणभूत माननेका श्रीमद्‌ने आध्यात्म-गीताके बालावबोधमें किया है :—

> "बालबोध रचना रचूं गूर्जरधर नी भाष।
> पूर्वाचार्ये अति अकित जाणी करी प्रमाण।

आपका राजस्थानी गुजराती और हिन्दी भाषा पर तो पूरा अधिकार था ही पर ब्रज ग्वालेरी सिन्धु आदि भाषाओंकी भी आपको अच्छी अभिज्ञता थी। पूरब देश वर्णन छंदमें बंगला भाषाके शब्दोंका भी निर्देश किया है। अब आपकी कृतियों का भाषाओंकी दृष्टिसे वर्गीकरण किया जाता है —

जिस के छोटे-बड़े लगभग २ ग्रन्थ पाये जाते हैं। श्रीमद्‌ने प्रश्नोत्तर ग्रन्थ पृ ४ ५ में पाहुराज पायक प्रश्नके २ श्लोक सर्व पद्योंका उल्लेख किया है इस ग्रन्थमें पद्मिनीयोंके १६ प्रकारोंका वर्णन है। यह ग्रन्थ किसके रचित व कहाँ प्राप्य है अन्वेषणीय है।

में आपने बड़े ही मार्मिक रूपमें भक्ति-श्रृंगार प्रगट किये हैं। कहीं दार्शनिक विचार तो कहीं तत्वज्ञान और कहीं उल्लेक्षाएं व भावावेश में वक्रोक्ति तथा उपालम्भ तो कहीं आत्मानुभव तथा शान्त, वैराग्य और करुण रस की भागीरथी बहायी है। बहुत्तरी व विहरमान बीसीमें कहीं भववाद स्थिति, कहीं आत्मदशा कहीं रहस्यानुभव, तो कहीं सरल प्रभुभक्ति तो कहीं उपमाओंकी छटा का निदर्शन किया है। उदाहरण कहांतक दिये जांय, पाठकोंसे अनुरोध है कि वे इसी ग्रन्थमें प्रकाशित कृतियोंको आत्मसात् कर सैद्धान्तिक व आत्मानुभव द्वारा निकाले हुए नव नीतका रसास्वादन करें।

विचारधारा–

श्रीमद्‌को आपने दीर्घजीवनमें ज्ञानानुभव द्वारा जो अनुभूति मिली, आपकी जीवनचर्या एक विशेष प्रकारसे खिल उठी। आपने जो कुछ लिखा वह परिष्कृत मस्तिष्क और मंजे हुए ठोस विचारोंका परिणाम था। वाद विवाद क्रिया-कलाप और नाना प्रवृत्तियोंके विषयमें विचार करनेसे आपकी आत्मदशा बहुत ही उच्च श्रेणीकी विदित होती है। वर्तमानकालमें शुद्ध चारित्रको अपेक्षाकृत दुष्प्राप्य मानते हुए भी आप क्रियाओं को एक आवश्यक अङ्ग मानते थे। आप क्रिया और एकृज्ञानके समन्वय से मोक्षमार्ग की सुलभता निश्चय-व्यवहार मार्ग, मथानीकी डोरके सदृश खींचने व ढीला छोड़नेमें मक्खनप्राप्ति क्रिया-त्यागसे आकाशमें उड़ते हुए पतंगको डोर तोड़ने सदृश,रंचक

पछे पानेमाला कर लेस्यूं पहिलां आपरी वाड़ी बुहारावा पछे पाछला जी री बुके छे इण रो उत्तर को छै"। (विविध प्रश्नोत्तर नं २)

"अब फुरमायो तूं अठैसुं विहाररा परिणाम करै छै सो सर्वथाप्रकार विहार कोई कारण देसूं नहीं अब में अरज कीनी हूं तो बीकानेर इणहीज कारण आयो छो सो म्हने बीस बरस उपरांत अठै हुय गया सो म्हारी चिठी आज ताई कोई नीकली नहीं जिणसूं विहाररा परिणाम हुआ छे (जेसलमेरका दिये पत्रसे)

रे चेतन तूं थारी उत्पत्ति तो देख। केई वार मा पणे केई वार पुत्र पणे केई वार पुत्री पणो केई वार स्त्री पणो ये थारा नाथ तो देख। ठगरी बेटी कह्यो यो हे माताजी हे पिताजी हुं इतरा पाप कर हु सो कुण भोगवसी वेगी कहसी सो भोगवसी, तो धिक्कार पड़ो इण संसार नै × × रे चेतन। तूं कर्ड है रे तूं कुण ? चिन्ता मांहिली काट तू ठीक हुवै। (आत्मनिन्दा)

अब मैं कह्यो म्हारे तो भैयरो भाव छै हूं तो "नमुक्कार विणा नहीं" इसो पाठ कर देसूं। (भावषट्त्रिंशिका टिप्पण)

यद्यपि आप संस्कृत प्राकृतादि भाषाओंके भी प्रकाण्ड विद्वान थे पर जनहित उपकारकी दृष्टिसे आपने सारे ग्रन्थ देश्य भाषाओंमें ही लिखे। संस्कृतमें रचित केवल दादासाहबकी दो पूजाएं तथा भावप्रसिद्ध आशीर्वादाष्टक उपलब्ध हैं।

भक्ति व कवित्व—

श्रीमद्का हृदय बाल्यकालसे ही जिनेश्वर भगवानके प्रति भक्तिसे ओतप्रोत था। चौवीसी बीसी तथा स्तवनादि पदों

चारित्रका परिहार, भावविशुद्धि इत्यादि विषयों पर छत्तीसीयाँ, पद और बालावबोधादि आपकी सभी कृतियाँ प्रेमय्रीव हैं।

लोकोक्तियोंका प्रयोग

श्रीमद्ने विषयको स्पष्ट समझाने व हेतु युक्ति व प्रमाणादि से प्रत्यक्षीकरणके लिये अपने ग्रंथोंमें लोकोक्तियोंका प्रचुरतासे प्रयोग किया है। सवाय अष्टोत्तरी तथा प्रस्ताविक अष्टोत्तरी इस विषयके ज्वलन्त उदाहरण हैं। पाठकोंको स्वयं इन ग्रन्थोंका रसास्वादन करना चाहिये। चंद चौपाई समालोचना भी इस विषयकी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है। आनन्दघन चौबीसी तथा दूसरे ग्रन्थोंसे कुछ लोकोक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

१ फिरे ते चरे बांध्यो भूख्यां मरे, २ प्राणे मीत न थाय, ३ पच्छ हत्य न बजइ, वो हत्यां ताळी ४ थास करियें तेम्रो आईगो स्यो ५ करमा छहवा करती चाटे, पाडोसन नै पेड़ा। ६ पाछळ वाही पीठे लागे ७ रागनीमुं वायसरुं ही प्रकार।

वचनोक्ति—रीता भरे भर्यां ढुळकावे, अनमरिया मुं फेर भरे।

कुदरतके हुकम बिगर दरखतका पत्ता भी हिलने न पावै।

दरख्त का पत्ता भी ताबे हुक्म के है

क्या मकदूर बिगर हुक्म हिले।

सिन्धु वेरीथ—"दिल अन्दर दरियाव सबी लम्यो बुडी फिरै टुब्बी मार मंझारि, मंझाही माणक थईं। १। टुब्बी मारण वां लही सड़ी सफला करन्न म्यांरो हीर न त्रिक्यों टुब्बी से मारन्न। २।"

भक्ति काव्य

कृति	रचनाकाल	प्रकाशित पृष्ठ
(१) चौबीसी—सं० १८७५ मार्गशीर्ष सुदि १५ बीकानेर		१ १२
(२) विहरमानबीसी—सं० १८७८ कार्तिक शुक्ला १ बीकानेर		१३ ३०
(३) स्तवनादि भक्ति पद—संख्या ३०		११३ १३३
(४) शत्रुंजयस्तवन सं० १८६६ फाल्गुन वदि १४		१३५ १३६
(५) दादासाहब के २ स्तवन		१३४
(६) पार्श्वनाथ—महावीर स्तवन (आनन्दघन चौबीसी) बालावबोध सं० १८६६		

शास्त्रीयविचार गर्भित

(१) जीवविचार स्तवन सं० १८६१ माघ जयपुर अभयरत्नसार†

(२) नवतत्त्व स्तवन सं० १८६१ माघ वदि १२ चन्द्रवार जयपुर „

(३) दण्डक स्तवन सं० १८६१ पौष शुक्ला ७ जयपुर „

(४) हेमदण्डक सं० १८६२ मार्गशीर्ष कृष्णा १४

(५) बासठ मार्गणा यन्त्र रचना स्तवन सं० १८६२ चैत्र शुक्ला ८ गाथा ११०

(६) ४७ बोलगर्भित चौबीसी सं० १८५८ दीपावली (११५१ स्तवन रत्न मंजूषा)

---

† यह ग्रन्थ हमारी ओरसे सं० १९८१ में प्रकाशित हुआ था।

७ "जो आवे मेहमान के, मीठे होत मतीर।
जो मलयाचल बसत सो, मानत सुरभि समीर।"
पशुओं की बोली जानने के विषय में प्रचलित लोक कथा —

८ "तर डीका कूका करे, रात पड मास पिर्यंत
जन्मत सिसु पूठी दिये विहग वाच समर्थंत"

सम्बोधअष्टोत्तरी आदि कृतियाँ तो राजिया के दोहों की भाँति स्वयं ही सुभाषित रूप हैं।

रचनायें

श्रीमद्ने बाल्यकालसे लेकर वृद्धावस्था तक अपना जीवन गुरुकुलवासमें बिताया था। उनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुपरंपरागत विद्वानोंके तत्त्वावधानमें हुई थी। स्वकीय प्रतिभा और तत्त्वरुचि मिल जानेसे सोनेमें सुगन्ध जैसा संयोग हो गया। आपने सभी विषयके ग्रन्थों व शास्त्रोंका अवगाहन किया था। अतः आप एक सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान तैयार हो गये। आपने जिस विषयको छुआ अधिकार पूर्वक लेखनी चलायी। आपके ग्रन्थोंके परिशीलनसे आपके गहरे शास्त्रज्ञान काव्य कोश छंद अलंकार, व्याकरण दर्शन न्याय आदि सभी विषयोंके सफलवेत्ता और पारगामी होनेका सहज परिचय मिलता है। अब आपकी कृतियोंका संक्षेपमें परिचय कराया जाता है।

दार्शनिक

(१) षट दर्शन समुच्चय भाषा :—यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है, एक गुटके में—जिसमें ५० बोलगर्भित चौबीसी के स्तवन व पद भी हैं—निम्नोक्त अंतिम काव्य मिले हैं —

चन्द्रायणो—बुद्ध नयायक सांख्य जैन दरसन करै
जैमनीय वैशेष मिले ते षट करै
इन षट हू को भिन्न भिन्न वरनन करै
गिरवानी ते ज्ञानसार भाषा धरै ॥ १ ॥

दोहा :— गिरवानी भाषानतें बड़ो बोध ह बीच ।
पुन्नु अल्पागम बढ़ी [illegible] कर(फिर)कीच ॥२॥
कोप करैगो बापरो कोप करैगो प्रभु ।
इसे विसम सिद्धत को तू क्या जाणै गूढ ॥ ३ ॥
बुद्ध सुलीनन भाखे सुगुरु भेद कर चीन ।
बोरा परख्यों में गतिकरी कौन मवाह कीन ॥ ४ ॥
नयमग सोध विचारिवे अति मीमम मयचार ।
आगम को गुरुगम नहीं अति मोटी विपचार ॥५॥
तरक विचार विचारिये बाद विवाद अभिचार ।
अनुभव ते रस पीजिये षट हू को इक स्वाद ॥ ६ ॥

प्रस्ताविक

१ संवाद अष्टोत्तरी सं १८५८ ज्येष्ठ सुदी ३ दोहा १ ८ पृ १६१
२ प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सं १८८ बीकानेर „ ११२ पृ० २ ५

अलक्ष्यात सागर सबै, उपमा कैसैं होय ।
गुण पूरण भवदे भव्यक है अन्त इह लोय ॥३॥
जो विद्या सब जगतकी इनमें रही मिलाय ।
नदीनाथके पटमें, ज्यों सब नदी समाय ॥४॥
पिंगल विद्या सब प्रगट सागरापने कीन ।
लोग बाहिर बुद्धे करै, पुन विचार अति खीन ॥५॥
सेषनाग प्राणी रहित, पुनि विवेक तें हीन ।
लघु दीरघ गण अगणकी, संकलना किम किन ॥६॥
उरपर बुधिहा जातमें सेषनाग है मुख्य ।
और शास्त्र रचना रचे सो नहिं निपुण मनुष्य ॥७॥
ए सब कल्पित बात है विद्या अगम निधान ।
पूरब है इनतें भयो पद भाषा को ज्ञान ॥८॥

अंत—आदि मध्य मंगल करन, सपूरण के हेत ।
अन्तिम मंगल ग्रंथ को, करण कवि संकेत ॥ १४४ ॥
जो दधि मंथन की क्रिया ताको चोखूं लेख ।
माखन निकसें मथन का उत्तम लेख विसेख ॥ १४५ ॥
परिसमाप्ति ग्रंथ भई इष्ट कृपा आयास ।
नौका बिन दधि तिरनको को करि सके प्रयास ॥१४६॥
जंबूद्वीपे मेर सम अचरम को उतुंग ।
त्युं धरीत्रमें गच्छ सबक, खरतर गच्छ उतमंग ॥१४७॥
गीर्वाणवाणी शारदा मुख तें भई प्रगट ।
याते खरतर गच्छमें विद्या को आमेट ॥ १४८ ॥

पूजा साहित्य

छन्द विधान

भाषापिङ्गल—पिङ्गलके छंद विधान पर उदाहरण सहित १५४ पद्योंमें यह ग्रन्थ रचकर सं १९७१ फाल्गुन कृष्ण ६ को बीका नेरमें पूर्ण किया। इसकी रचना रूपदीप वृत्तरत्नाकर चिन्तामणि आदि छन्द ग्रंथोंके आधारसे हुई है। नवरत्नमाली (माला) के १०८ मणकों और मेरुके २ मिलाकर कुल ११० छन्दों की रचना होनेसे इस ग्रंथका नाम भी 'भाषापिङ्गल' रखा गया है।

आदि दोहा—श्री अरिहंत सुसिद्ध पद आचारज उवज्झाय।

सरव लोकके साधुकुं, प्रणमुं श्री गुरु पाय ॥ १ ॥
भाषाबद्धे भाषा कहूं भाषापिंगल नाम।
सुखे बोध बालक लहे परसमको नहिं काम ॥२॥

असख्यात सागर सबै, उपमा कैसें होय।
गुन पूरब चबदै सकल है अल्प बुद्ध जोय ॥३॥
जो विद्या सब जगतकी, इनमें रही मिलाय।
नदीनाथके पेटमें, ज्यों सब नदी समाय ॥४॥
पिगल विद्या सब प्रगट नागरायने कीन।
लोग बहिर बुद्धे कहैं पुन विचार अति लीन ॥५॥
सेपनाग वाणी रहित, फुनि विवेक तें हीन।
कछु वीरच गण अगणकी, संकलना किम किन ॥६॥
परपर बुद्धिहा कालमें सेपनाग है मुख्य।
ईव शास्त्र रचना रचै, सो नहिं निपुण मनुष्य ॥७॥
ए सब कल्पित बात है विद्या चबद निधान।
पूरब है उनतें भयो पट भाषा को ज्ञान ॥८॥
अंत—आदि मध्य मंगल करण संपूरण के हेत।
अन्तिम मंगल रूप को, करण कवि संकेत ॥ १४४ ॥
को बुधि संवत की क्रिया, ताको तोलूं लेत।
मौजन निकसें मखन को व्यय क्षेद निपेध ॥ १४५ ॥
परिसमाप्ति ग्रंथे भई इष्ट कृपा आयास।
नौका बिन बुधि तिरनको को करि सकै प्रयास ॥१४६॥
जंबूद्वीपे मेर सम अपरन को अतुल।
स्युं शरीरसैं गच्छ सकल, खरतर गच्छ अमंग ॥१४७॥
गीर्वाणवाणी सारदा गुरु तें भई प्रगट्ट।
याते खरतर गच्छमें विद्या को आमेट्ट ॥ १४८ ॥

ताके शिरा समान विभु श्रीजिनलाभसूरीश।
ज्ञानसार भाषा रची, रत्नराज गनि सीस ॥ १४८ ॥

चौपाई—सम्बत कार्य फिर भय वेय प्रवचन मार्गे सिद्धसिलेष।
फागुन नवमी ऊजल पक्ष कीनौ ग्रन्थ जु क्षण विपक्ष॥१४ ॥
रूपदीपके बावन किये वृत्तरत्न ते करे लिए।
चिंतामणि त कई देख रचना कीनी कवि मति पेख॥१५१॥
महि प्रस्तारन कर उद्दिष्ट मेरु मर्कटिन कियो नष्ट।
भाखुन काळीन पंडित ब्रोऊमय कठिम कवि दैदै मोज॥१५२॥

दोहा—इक सौ आठ रा मेरुके, वृत्त क्रिय मतिमन्द।
याते याकूं आपियो, नामे माला छन्द ॥ १५३ ॥॥

॥ इति माळापिंगळ छन्द सम्पूर्णम् ॥

समालोचना :—

चन्द चौपाई समालोचना—कवि मोहनविजय कृत चन्द राजाकी चौपाई पर विशद आलोचना लिखकर श्रीमदूने हिन्दी साहित्यकी बड़ी भारी सेवा की है। हिन्दीमें संभवतः इस दिशा में यह पहला प्रयास था। सं १८७० मिती चैत कृष्ण २ को बीकानेरमें ४११ पद्योंमें इसकी रचना हुई। इसका कुछ विव रण 'समालोचक' रूपमें श्रीमदूका परिचय कराते समय दिया जा चुका है। यहां ग्रन्थके आदि और अन्तिम भाग कद्धृत किये जाते हैं।

आदि—प निच्चे निच्चै करौ कवि रचना की साख।
छन्द अलंकारे निपुण महि मोहन कविराज ॥ १ ॥

ताके शिरा समान विभु श्रीजिनलाभसूरीश।
ज्ञानसार भाषा रची, रत्नराज गनि सीस ॥ १४९ ॥
चौपाई—सम्वत चार्यं फिर मय दय प्रवचन मार्ये सिद्धसिलेप।
फागुन नवमी उज्ज्वल पक्ष कीनो प्रमाण सब विपक्ष॥१५०॥
रूपदीपके बावन किये पूरण से करते लिए।
चिंतामणि व बहु देख रचना कीमी कवि मति पेख॥१५१॥
नहिं प्रमादन कर उदिष्ट मेर मरकटिन किये नष्ट।
आधुन कालीन पंडित बाऊ ग्रंथ कठिन अति देखें घोखा॥१५२॥
दोहा—इक सौ बाट वा मेरवे पूत किय मतिमन्द।
यातें याकूं मानियो नामें माला छन्द ॥ १५३ ॥

॥ इति मालापिंगल छन्द सम्पूर्णम् ॥

समालोचना --

चन्द चौपाई समालोचना—कवि मोहनविजय कृत चन्द राजाकी चौपाई पर विशद आलोचना लिखकर श्रीमद्‌ने हिन्दी साहित्यकी बड़ी भारी सेवा की है। हिन्दीमें संभवतः इस दिशा में यह पहला प्रयत्न था। सं १८७७ मिती चैत्र कृष्ण २ को बीकानेरमें ४११ पद्योंमें इसकी रचना हुई। इसका कुछ विव रण 'समालोचक' रूपमें श्रीमद्‌का परिचय कराते समय दिया जा चुका है। यहां ग्रन्थके आदि और अन्तिम भाग उद्धृत किये जाते हैं।

आदि—प निज्वे निज्वे करौ कवि रचना को मांझ।
छन्द चमत्कारे निपुण नहिं मोहन कविराज ॥ १ ॥

ाद्दीपन—यह ग्रन्थ वि० सं० १८८६ मिती चैत्र शुक्ला २ को जयपुर नरेश प्रतापसिंह की आज्ञा में बनाया गया था। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है, उसमें शृङ्गारों की छटा और कवि की प्रतिभा पद-पद पर झलकती है। कामदेव के साथ महाराज की तुलना करते हुए श्रीमद् ने इसका नाम भी कामोद्दीपन रखा है। इसमें दोहा व सवैयादि कुल मिला कर १७० पद्य हैं।

आदि—तारनि में चन्द जैसे उडगन दिनेंद जैसे,
मणिनि में मणिंद ज्यों गिरिन गिरिंद यू।
सुर में सुरिन्द महाराज राज वृन्द हू में
माधवेश नन्द सुख सुरतरु सुछन्द यू।
अरि करि करिंद मृग मार को फणिन्द मनो
जगत को चन्द सूर तेज तें न मन्द यू।
भाग्य समद इन्दु सो सुर ज्याको
मदन कर गोविन्द प्रताप प्रताप नर इन्द यू॥१॥

अन्त—संवत् सम्बन्धी दोहा—

रस सर अष्ट गज इन्दु पुनि माधव मास मझार।
शुक्ल तीज तिथ तीज दिन जयपुर नगर मझार॥२॥
बड़ खरतर जिनलाभ के शिष्य रत्न गनि राज।
अमरसार मुनि नन्दमति आयह प्रेम काज॥३॥
ग्रन्थ कीयो पद रस भरो, बरनन मदन अनंद।

नां कविकी निंदा करी मा कछु राखी कान।
कवि कृत कविता शास्त्रके, सम्मत लिखी सयान ॥२॥
दोहात्रिक दश ग्यारसे, प्रस्तावीक नवीन।
खरतर भट्टारक गच्छे ज्ञानसार लिख दीन ॥३॥
भय भय पचयण माय सिध थान वाम लिख वीच।
चैत किसन तृतीया दिनें, संपूरण रस पीच ॥४॥

इति श्रीचंद चरित्रं संपूर्णम्। संवन्नवस्वधिकाष्टादश शतानि प्रमिते मासोत्तम मासे चैत्र कृष्णैकादशपार्तिथौ मार्त्तण्डवारे श्रीमद्बृहत्खरतरगच्छे पं आर्यचंदविनय मुनिस्तच्छिष्य पं अमी चीर मुनिस्तस्य पठनार्थमिदं लि। श्री। श्री लूणकरणसर मध्ये॥

इस प्रतिकी पत्र संख्या ८० और मीनासरके यति व श्री सुमेरमलजीके संग्रहमें है। अक्षर सुन्दर व सुवाच्य हैं। ढालों के किनारे पर उस रागकी अन्यान्य ढालोंके उदाहरण हैं। अनेक स्थानोंमें कठिन शब्दों पर टिप्पणी भी लिखी हुई है। ज्ञानसारजीके दोहे आदि मूलके चारों ओर=संकेतोंके साथ लिखे हुए हैं तथा पंक्ति व गाथाका भी निर्देश किया हुआ है।

अलंकारिक वर्णन व वचनिकाएं

प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका—यह कृति जयपुर नरेश प्रतापसिंहके वर्णनमें ३२ दोहोंमें चित्रकाव्यके रूपमें रचा है। अन्तमें चन्द्रायण छन्द दिये हैं। इसीकी वचनिका बालावबोध टीका बड़ी मधुर राजस्थानी भाषामें लिखी है।

तथा १ आत्मनिन्दा, पचप्रतिक्रमण की पुस्तकोंमें मूल तथा इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित है। बाबूसाहब की पूजा भी जिनदत्तसूरि चरित्र (उत्तरार्द्ध) व जिन-पूजा-महोदधि में प्रकाशित है। श्रीआनन्दघनजी कृत चौबीसी के बालावबोध के कई संस्करण भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं।

आनन्दघन चौबीसी बालावबोध को श्रावक भीमसी माणेक ने प्रकाशित तो किया है पर वह संस्करण सर्वथा भ्रष्ट और परिवर्तित रूप से प्रकाशित हुआ है। श्रीमद् ने बालावबोध की भाषा राजस्थानी मिश्रित जिसने के साथ साथ इसमें भी आनन्दघन जी आदि के पदों के अवतरण, प्रसंगानुसार भावों के स्पष्टीकरणके हेतु स्वनिर्मित दोहोंको "सदुक्ति" की संज्ञा से संयुक्त देकर कृति को विशिष्ट चमत्कार पूर्ण बना दिया है। इसमें श्रीमद्ने आनन्दघनजी जिनराजसूरि, यशोविजयजी, मोहनविजयजी, देवचन्द्रजी कालिदास और कबीर की उक्तियों के अवतरण उद्धृत किये हैं जिससे साहित्यकी दृष्टिसे भी इसके महत्वमें अभिवृद्धि हुई है पर प्रकाशक महाशय ने इन सुमधुर उक्तियों को निकाल कर कृति का प्राण हरण कर लिया है तथा भाषा को भी वर्त्तमान गुजराती का रूप दे दिया है। जिससे तत्कालीन भाषा, शैलीपद्धति और आत्मानुभव तथा तलस्पर्शी वचनों के आस्वादन से पाठकगण वञ्चित रह गये हैं। श्रीमद्ने यहां भी ज्ञानविमलसूरिजी के बालावबोध की मार्मिक समालोचना की है प्रकाशक महोदय ने इन वाक्यों को सर्वथा निकाल

बहु माधुरिता तें अगति, खंड खंड मई जान्य ।।४॥
सुवरनि बन मन रस दिये, रस भोगनि सहकार।
सदम सवीभम मन्थ यह, रच्यौ रुच्यौ भीकार ।।४॥
जग करता करतार है यह कवि वचन विलास।
पै या मति को जान्द है हैं हम ताके दास ।।४॥
इति श्रीमद् बृहत्खरतर गच्छे पं। प्र। श्री ज्ञानसार विविरचित कामोद्दीपन ग्रन्थ सम्पूर्णम् । संवत् १८८० वै० सु० १ श्री बीकानेरे लि०। पं । लक्ष्मीविलास।

पूरव देश वर्णन छन्द—यह ग्रन्थ १११ पद्यों में है। डेढ़सौ वर्ष पूर्व बंगाल का विशेष कर मुर्शिदाबाद जिले का वर्णन फिल्म की तरह इस कृति में दिखाकर कवि ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा और वर्णन शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। इसका साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्व जानने के लिए पाठकों को प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमें प्रकाशित इस कृति का स्वयं पठन करना चाहिए।

प्रकाशित कृतियां

श्रीमद् की कृतियों में इस ग्रन्थके अतिरिक्त कतिपय रचनाएँ अन्यत्र प्रकाशित हैं। जिनमें १ जीवविचार स्त० २ नवतत्त्व स्त० ३ दण्डक स्तवन हमारी ओरसे प्रकाशित समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि सार में ४ देव चन्द्रजी कृत साधु सज्झाय तथा 'श्रीमद् देवचन्द्र भाग २ में

देने में ही अपनी सफलता समझते हैं। इससे श्रीमद् की समालोचन पद्धति और यथार्थ स्पष्टवादिता अन्धकारमें अन्तर्हित हो जाती है। प्रकरण रत्नाकर भाग १ की प्रस्तावना में प्रकाशक महोदय लिखते हैं कि —

"चौथो ग्रन्थ श्री आनन्दघन जी महाराज कृत चौवीसी नो छे अने ते बालावबोध सहित छ। अध्यात्म ज्ञान ना शिखर ऊपर बिराजमान थयेला श्री आनन्दघनजी महाराज अने तेमनी चौवीसी जगप्रसिद्ध छे। तेमना अध्यात्म ज्ञान विष अने विशेष प्रशंसानी पर्युपण आवश्यकता नथी। वली सामर पुरुषो ज्यारे तेमनी चौवीसी वाचे छे तथा तेनु अध्ययन करे छे त्यारे तरत तेमना अन्तःकरण मा अध्यात्म ज्ञान नो विकास प्रगट थाय छे चौवीसी ऊपर नै बालावबोध प्राचीन गुजराती भाषा मां लखायेलो हाथा थी तेनो आधुनिक गुजराती भाषा मों गुजराती अने आ ग्रन्थ मां छापेलो छे। कारण के ते प्रमाणे करवानी सूचना अमने अनेक अभ्यासिओ तरफ थी थयेली हती। ते सूचना अमने वास्तविक लागवा थी उपकार नो हेतु जाणी तेम करेल छे अने ते प्रमाणे करवा बालावबोध कर्त्ता बतावेलो आशय ऐवा मात्र पण दूर करवा मां आवेलो नथी जेथी अभ्यासिओ ने हवे ज्ञान नो उत्तम प्रकारे लाभ थवा संभव छे।

२२ स्तवनों के अर्थ पूर्ण करते हुए प्रकाशक लिखते हैं कि— इति श्रीआनन्दघनजी कृत बावीसी। आ बावीस स्तवन नो बालावबोध ज्ञानसारजीए कृष्णगढ़ मां रही सम्वत् १८६६ मा

स्तवन नं० ३ का टबा गा० ७ का छपा है पर हस्तलिखित प्रति में गा० ८ देखी गयी है।

महावीर स्तवन

१ वीर जिनेसर परमेसर जयो गा० ७ टबासह प्र० माणकचन्द भक्तामार्ड टवासह प्र० जैन युग वर्ष २ कपूरविजयजी टबा०

२ चरम जिनेसर विगत स्वरूपगु रे गा० ७ ज्ञानसार टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग १

३ वीर जिन चरणे लागु, देवचंद्र टबासह " "

४ करुणा कल्पलता श्रीमहावीर नो रे ज्ञानविमल टबासह जैन युग वर्ष २ पृ० १४६

श्रीमद् के बालावबोध को सा० मनोरभाई भगवानदास ने भी प्रकाशित किया है पर वह भी भीमसी माणक के अनुसार ही है। तथा नवतत्त्व स्तवन 'नवतत्त्व साहित्य संग्रह' में भी प्रकाशित हुआ है पर उसे भी गुजराती भाषा के सांचे में ढाल दिया गया है। आपके कई पद कई संग्रह ग्रन्थों में प्रकाशित हैं।

भ्रान्तिपूर्ण कृतियें

श्रावक भीमसी माणक महाशय ने ज्ञानविलास, विनय विलास और ज्ञानविलास आदि का संग्रह ग्रंथ प्रकाशित किया है जिसकी प्रस्तावना में ज्ञानानन्दजी के रचित ज्ञानविलास को श्रीमद् ज्ञानसारजी कृत सूचित किया है।

इसी के आधार से हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास पृ० ७८ में श्रीमद्के विषयमें पं० नाथूरामजी प्रेमीने इस प्रकार लिखा है:—

आनन्दघन बहोत्तरी टबो—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी महाराज ने आनंदघन पद संग्रह भावार्थ के पृ १६६ में श्रीमद् ज्ञानसारजी की इस कृति का इस प्रकार उल्लेख किया है।

"श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी के तेमणे सं० १८६६ मा भाद्रवा सुदि १४ ना दिवसे श्रीमद् आनन्दघनजी नी बहोत्तरी उपर टबो पूर्यो छे। तेमणे आनंदघनजी साधु वेष धारण करता हता एम स्पष्ट टबा मां दर्शाव्युं छे। श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी पण बीकानेर ना स्मसान पासे मूपड़ी मां साधु ना वेषे रहता हता अने साधु ना वेषे पण गटाक्षत नी आराधना करता हता।"

यह उल्लेख भी स्मृति दोषसे ही हुआ विदित होता है क्योंकि उपर्युक्त संवत् आनन्दघन चौबीसी बालावबोध का है। बहुत्तरी के तो कुछ ही पदों पर श्रीमद् का बालावबोध उपलब्ध है जो इसी ग्रंथ के पृ० ॰ ४ से २४० मे मुद्रित है।

ज्ञानसारजी का व्यक्तित्व महान् था सारी उन्नीसवीं शताब्दी उनकी जीवन प्रवृत्तियों से आच्छादित थी। आपकी रचनाएं बड़ी महत्वपूर्ण और विशाल हैं इसलिए आपके व्यक्तित्व एवं रचनाओं पर स्वतन्त्र ग्रन्थ ही निर्माण हो सकता है पर रचनाओं के साथ जीवन परिचय के पृष्ठ सीमित ही हो सकते हैं, इसलिये हमने संक्षेप में ज्ञातव्य सारी बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। अन्त में आपके गुणवर्णन में विभिन्न कवियों द्वारा रचित गहुंलियों में से थोड़ी सी चुनकर यहां दी जा रही हैं जिससे समकालीन व्यक्तियों का आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में क्या मन्तव्य था स्पष्ट हो जायगा।

८ ज्ञानसार या ज्ञानानन्द—"आप एक श्वेताम्बर साधु थे। संवत् १८६६ तक आप जीवित रहे हैं। आप अपने आप में मस्त रहते थे और लोगों से बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कहते हैं कि आप कभी कभी अहमदाबाद के एक श्मसान में पड़े रहते थे। सज्झायपद अने स्तवन संग्रह नाम के संग्रह में ज्ञानविलास और संयमतरंग नाम से दो हिन्दी पद संग्रह छपे हैं जिनमें क्रमसे ७५ और ३७ पद हैं रचना अच्छी है। आपने आनन्दघन की चौबीसी पर एक उत्तम गुजराती टीका लिखी जो छप चुकी है। इससे आपके गहरे आत्मानुभव का पता लगता है।"

प्रेमीजी के उपर्युक्त कथन में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं। श्रीमद् के कभी भी अहमदाबाद के श्मसानों में रहने का प्रमाण नहीं देखा गया। हाँ बीकानेर के श्मसानों के निकट रहना कहा जा सकता है। ज्ञानसार और ज्ञानानन्द दोनों भिन्न भिन्न व्यक्ति थे किन्तु ज्ञानानन्दजी के पदों को ज्ञानसारजी कृत बताने की भ्रमणा के उत्पादक श्रावक भीमसी माणक हैं। प्रेमीजी ने तो उसका अनुकरण मात्र किया है। वस्तुतः ज्ञानविलास में ज्ञानसारजी का एक भी पद नहीं है। ज्ञानानन्दजी काशी वाले श्रीचुन्नीजी (चारित्रनंदि) महाराज के शिष्य और सुप्रसिद्ध श्री चिदानन्दजी महाराज के गुरुभ्राता थे। ज्ञानानन्दजी के सम्बन्ध में हमारा लेख 'जैन सत्य प्रकाश' में प्रकाशित हो चुका है।

आनंदघन बहोत्तरी टबो—श्रीमद्* बुद्धिसागरसूरिजी महाराज ने आनंदघन पद संग्रह भावार्थ के पृ० १४६ में श्रीमद् ज्ञानसारजी की इस कृति का इस प्रकार उल्लेख किया है।

"श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी के तेमणे सं० १८६६ मा भाद्रवा सुदि १४ ना दिवसे श्रीमद् आनंदघनजी नी बहोत्तरी उपर टबो पूर्यो छे। तेमणे आनंदघनजी साधु वेष धारण करता हता एम स्पष्ट टबा मां दर्शाव्युं छे। श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी पण बीकानेर ना स्मसान पासे झूंपड़ी मां साधु ना वेषे रहता हता अने साधु ना वेषे पण महात्मा नी आराधना करता हता।"

यह उल्लेख भी स्मृति दोषसे ही हुआ विदित होता है क्योंकि उपर्युक्त संवत् आनन्दघन चौबीसी बालावबोध का है। बहुत्तरी के तो कुछ ही पदों पर श्रीमद् का बालावबोध उपलब्ध है जो इसी ग्रन्थ के पृ० २ ४ से २१२ में मुद्रित है।

ज्ञानसारजी का व्यक्तित्व महान् था सारी उन्नीसवीं शताब्दी उनकी जीवन प्रवृत्तियों से आन्दोलित थी। आपकी रचनाएं बड़ी महत्त्वपूर्ण और विशाल हैं इसलिये आपके व्यक्तित्व एवं रचनाओं पर स्वतन्त्र ग्रन्थ ही निर्माण हो सकता है पर रचनाओं के साथ जीवन परिचय के पृष्ठ सीमित ही हो सकते हैं, इसलिये हमने संक्षेप में ज्ञातव्य सारी बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। अन्त में आपके गुणवर्णन में विभिन्न कवियों द्वारा रचित गहूंलियों में से थोड़ी सी चुनकर यहां दी जा रही है जिससे समकालीन व्यक्तियों का आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में क्या मन्तव्य था स्पष्ट हो जायगा।

आपणी मन आमोद, मर तो भेहरो मारणा।
भूपति मन आमोद संवारे सिर सेहरो ।।७।।

रख मह चाकर राज, पुण्य प्रमाणे पामीया।
बालम जोगीराज छोडे बैठो छिनक में ।।३।।

तो वेहरो तू बीज करणी करशी तू करे।
बाबा धरणो बीज निहचे राखे मारणा।।४।।

मारण कारण म्याज, गुणो तू मरीयो गुणे।
थिर बस कीरत थाय, निरमल जगमें नारणा।।५।।

मीत तणो मनुमार, मुनिवर मनि मौल सु।
अवसर में उपगार, सदा करीजे सेन सु ।।६।।

जाणे जाणणहार, मूरख भेद न जानही।
पांपण रे फुरकार, चित में समझे चतुर नर।।७।।

इक मन छव जिमाय कर इक मन देत हसत।
ससिर करत पगम्हार तर गेहरा करत बसत ।। ।।

(२)

दूहा —मैं वंदन निसदिन करू पल पल बाहू मान।
पढ़ दयाल नरीन सू सागर बुद्धि सुजान ।। १ ।।

सवैयो —सील सतोष समझके सागर ज्ञान विवेक गुनन के भारे।
अर्थ धरम अरु मोख सुगत्यें जोगजुगत्त के जाननहारे।।
काम विरोध कू मार हटावत कुछ कुमुद मयंक तें न्यारे।
धमू न ठेकल सेव निसक नू हाथ खडग क्षमा अरवारे ।।१।।

देवन में तो योगी अगम, पीर पैकबर सब आया।
सामी सन्यासी मुसाफर यूवा, पारनह को नहीं पाया। झा० ।३।
गह बनवासी में गिरया गिरया गुण गौतम में गिर राया।
ऋषि ऋषि में नाम ऋषि को, फरस्या अष्टापद पाया। झा० ।४।
पण भरे में नाम नारायण, परतिख देवक पूराया।
धन्य धन्य माया सब लोकन की, सपेहुधि दुधि २ काया। झा० ।५।

(सुकनजी समह)

(५) लावणी

सकल गुण परवीण सरस है। जुग में शोभा है भारी।
इस कलयुग में करी तपस्या, पाय मंदर है नर-नारी।
काला गोरा सब वीर बडा में पूरण परचा यूं देवे।
चोसठ जोगिण सदा गुररि, आठ पहर हाजर रेवे ।।१।। स०
गुरु नराण अरू शिष्य सत्रासुख सारो वार्ता सुमकारी।
राज रीत सबे अस नामी चार खूट जाणे सारी ।।२।। स०
ज्ञानी बडे बचन के साचे, सूरवीर है सरसाइ।
महाराज की महर हुइ है, कमी न रेवे अब काइ ।।३।। स०।
चिंतामण सामी सचराचर, पूरण परचा यूं देवे।
महाराज की कृपा मोटी, रिध सिध के दाता केवे ।।४।। स०
वरसम देख्यां सब सुख उपजे, कवियण यूं महरंग करे।
हाथी घोड़ा और पालखी, बरतर गच्छ तप तेज सीरे।
संवत अठारे बरस चोरासिये फागुण सुदी चौदस दिने।
सुरी होय बिकाणा माहि कृपाराम स्तुति गिने ।।५।। स०।

आशा नदी अपार, मर बाहुण आये नहीं
भो अंग लेवट असवार, लोय रे छट पैठे वही ॥
दोहा —परमभक्त जिम राजके ज्ञानसार परवीन ।
सत सीकवि पाछे सदा, रहै तपस्या लीन ॥

(८)

कवित्त —पंडित प्रवीण ज्ञान गहरो समुद्र जैसो
काटै भवफंद अंध दूर ही गयो रहे ।
पचक्ख धारै साधु गुन ही अंग विचारै,
प्रसिद्ध नराण हिरदै क्षमा कीयो रहे ॥
विद्यमान हत है बखान सब श्रावककु,
भासै भगवंत सूत्र अरथ को दयो रहै ।
नहींचै विचार देखो ऐसो मुनिराजकू,
जिनराज जुके पद पकज गह्यो रहे ॥
दोहा —साधु संवेगी सेठीया, भयो मनोरथ पूर ।
सुख संपति आनंद भयो गयो दलिदर दूर ॥१॥
चतुरता की चूप कु लखै न कोऊ टांक ।
जैसे मृग के सींग में, सुमै ही में वांक ॥
नयन वचन अरु नासिका है सबके इकठौर ।
कहबो सुनबो समझबो चतुरन को कछु और ॥
गिर सरवर वों मुकरमे भार मीजबो मांहि ।
सुख दुख दोऊ होत है ज्ञानी क घट मांहि ।
नयण वयण अमृत रसे, रूप अनोपम सार ।
ज्ञानसार गुरु माहरा सुगत तणा दातार ॥

(९)

सवैया :—गुफा में गोपाळ कमळ में कमल नैन
सेवरा में सीताराम चमर्मे बनवारी है ।

केवड़ा में बाहारा चंपेली में चतुर्भुज
केवड़ा कमाया नारा पानी बारा है ॥
गुलदा बड़ा में श्रीमर्दन जाफरा में जगन्नाथ,
मालिराम मदन बल मरी में मुरारी है ।
रूप मसरी में राधेकृष्ण बसकी में कमोराम
देखो मानाका नाम फूलो फुलवारी है ॥

(७०)

(कवित्त बाबाजी श्रीमरामजी को बड़ा सेवग नवरूपरामजी को अजमेर मध्ये)

सोभत गुण सागर है बुद्धि को उजागर ।
गुनियन को आगर सा बड़ो जैनमती है ॥
सबही विष ज्ञायक, है अमृत से वायक ।
मे श्रीप गच्छनायक, यों कान्त दर रही है॥
गयचन्द्र के शीश तरे पराविहुं दिश ।
च सील संतोष विच आपे अधिक सती है॥
कवि कहै मोलख्याह जाको बाणी है विशाल।
या दादा गुलरपाल, एसो नारायणजती है ॥
कविता में पुनित एसो रीति राजनाव हू में ।
जीत के प्रबल काम क्रोध वस करु को ॥
करमें विधकरमो सो हुनर हमार जाके ।
वैधक में नाम सब जोतक मक्षत्र को ॥
बोधि मन जीवनको गौतम सो ज्ञान जाके ।
माम दानराव जाके काम हित संत को ॥
विसकामसुर वद राय रिख राजत यो ।
निहचै नरायण है सेव भगवंत को ॥

श्री ज्ञानसारजी की समाधि (स्वस्ति अंकित)

श्री ज्ञानसारजी के समाधि-मंदिर का मोहरा द्वार

ज्ञानसार ग्रन्थावली—खण्ड १

ज्ञानसार पदावली

चौवीसी

१—श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

राग भैरव—(उठत प्रभात नाम जिनजी को गाईये—चहनी)

ऋषभ जिणंदा, आणंदकंद कंदा,
याही तें चरण सेवे, कोटि सुर इंदा ॥ ऋ० ॥ १ ॥
मरुदेवा नाभिनंद, अनुभौ चकोर चंदा,
आप रूप कौ सरूप, कोटि ज्यु दिणंदा ॥ ऋ० ॥ २ ॥
शिव शक्ति न चाहूं, चाहूं न गोविन्दा।
ज्ञानसार भक्ति चाहूं, मैं हूं तरा बन्दा ॥ ऋ० ॥ ३ ॥

२—श्री अजित जिन स्तवनम्

राग भैरव—(जागे सो जिन भक्त कहावै सोवे सो संसारी)

अजित जिनेसर काया केसर, तू परमेसर मेरा।
सिद्ध बुद्ध सुविशुद्ध मुक्ति मग, प्रापक है पद केरा ॥अ०॥१॥
अकल अमूरतीक अविनासी, आतम रूप उजेरा।
अलख निरंजन अकल अकाई, असहाई पद तेरा ॥अ०॥२॥

भ्रम भरूजी चिदघन भ्रमहारी, भ्रमिवा शब्द घनेरा* ।
दीनबन्धु इ दीन दयानिधि ! ज्ञानसार तुहि चेरा ॥भ्र०॥२॥

३ श्री संभव जिन स्तवनम्

राग भरव

(राम मंत्र भज रे हरे २, हर राम कहि २ राम नाम कहि हरे हरे)
संभव संभव संभव कहि कहि, संभु सभु मति कोई कहे ।
संभु स्वयंभू संभव नामा, यातें मन मति भरम गहे ॥सं ॥१॥
संभव संभु सयंभू अभिन्ना, इह सभु मिथ्यात भए ।
गुणिमंत जिन पद संज्ञा तें, कनक धतूरे नांहि लहे ॥सं ॥२॥
राग द्वेष मिथ्या परणिति धर, मिग मत भ्रमका सरूप बहे† ।
ज्ञानसार कहि उन सभु में, समवरूप न मिथ कहे ॥सं ॥३॥

४—श्री अभिनंदन जिन स्तवनम्

राग वेलावल

अभिनंदन अबधारी मेरी, म हूं पतित विहारी ॥अ०॥
पतित उधारन विरुद अनादी, वाकी ओर निहारी ॥मेरी०॥१॥
केते पतित उधार विरुद लहि, मेरी वेर बिसारी ।
एक उधारी अपनें विरुद, क्यु नाही उभारी ॥मेरी०॥२॥

पाठान्तर— * घनेरा † वहे

थोरे करम थकि बास मिद्ध हुँ, मधु न आलम टारी ।
अवसर समकी विनती करहुँ, ज्ञानसार निसतारो ।।मे०।।३।।

५-श्री सुमति जिन स्तवनम्

राग भैरव (जागे सो जिन भक्त कहावे सोवे सो संसारी)

सुमति जिनेसर चरण शरण गहि, कारण करण तिरण की ।।
बहिरातमता छोड आपना, अन्तर आतम मांवें ।
थिरता योग चरण शरण की, अरपणता सदभावें ।।सु०।।१।।
जिन स्वरूप सजोगें आतम, समताई गुण चीनें ।
समताई गुण गुणि अभिन्नें, आप सुभावें लीनें ।।सु०।।२।।
आतम सुभावें आतम परता, व्यापकता सरवंगें ।
ज्ञानसार कहि चरण शरण की, आतम अरपण रंगे ।।सु०।।३।।

६-श्री पदमप्रभु जिन स्तवनम्

राग बिलाल

पद्म प्रभु जिन तू प्रभु दि स्वामी, तुहीं मेरा अंतरयामी ।
हूँ बहिरातम हूं भवरूपी, तू परमातम सिद्ध सरूपी ।।प०।।१।।
हूँ संसारी मति थितकारा, तें धरत्यादिक दूर निवारी ।
हूँ कामादिक कामी रागी, तू निष्कामा परम विरागी ।।प०।।२।।
हूँ जड संगी जड विचारो, तू आतमता परखित धारी ।
दीन हीन तें करुणा कीजै, ज्ञानसार नें निज पद दीजै ।।प०।।३।।

७—श्री सुपारस जिन स्तवनम्

राग वेलावल (मेरे प्रभो चाहिये)

श्री सुपास जिन राजरौ, सुष दरसण चाहूं।
आगुनको नी उक्ति नी, मन संका न्याउं ॥श्री॥१॥

द्रव्यार्थिक नयै करी, पुन निरखै भाव।
विवहारी नय आपतां, मत ही उलझाउं ॥श्री॥२॥

वस्तु गती जिन दर्शनी, तसु सीस नमाउं।
ज्ञानसार जिन पंथ नो, मैं भेद न पाउं ॥श्री॥३॥

८—श्री चन्द्रप्रभु जिन स्तवनम्

राग रामगिरि (कुंथु जिन मनडो किम ही न बाजै)

मनुआ समझायो नहि समझै, समझायो नहि समझै।
ज्यु ज्यु सठ हठ कर समझाऊ त्यु त्यु उलटौ उलझै ॥म ॥१॥

ध्यानारूढ थई जो धारू, तौ मांझूरी मूझै।
एहनौ इण[1] 'समझावण'[2] हारौ, जे समझी नै सुलझै[3] ॥म०॥२॥

चन्द्रप्रभु जो करै प सहाई, तौ प्रभु हो परिबूझै।
ज्ञानसार कहै मनुआ नै, तौ प्रभु ही आस्या पूजै ॥म०॥३॥

पाठान्तर—१ कोई २ सुमझावण ३ समुझै।

९—श्रीसुविधि जिन स्तवनम्

राग (रे जीव जिन धर्म कीजिये)

सुविधि जिनेसर तादरो, मत तत जे आणें ।
ते मिथ्या मति नवि ग्रसें, मत ममत न ताणें ॥सु०॥१॥
थापक उत्थापक मतो, ए मरम ममची ।
निद किम्म जिन मत हम नै, मति ममर्मो सुमति ॥सु०॥२॥
ज्ञानसार जिन मत रता, त गहिम[१] पिछाणें ।
छुद सुपरखित परणमी, अनुभव रस माणें ॥सु०॥३॥

१०—श्रीशीतल जिन स्तवनम्

राग—सोरठ

ऊमला राम नाम मनाश्री ॥ ऊ० ॥
पांच लेवों चोरों राखू, उलमयां उलम्मण टाम ॥मना०॥१॥
यां महि छू नहि तुम्ह बाहिर, शीतल शीतल धाम ।
तामयें मिथ्या ताप ममावण, जिन गुण सर्क आगम ॥म०॥ऊ०॥२॥
रागी सनम थकी मिश्राई, मारगा ह्रै शुभ काम ।
ज्ञानसार पहे मन माता, मार्गी दागी नाम ॥म०॥ऊ०॥३॥

११—श्रीश्रेयांस जिन स्तवनम्

राग बेलावल—(परम प्रभु जिम तादरौ मुझ नाम सुहाय)

श्री श्रेयांस जिन साहिबा, गुण अगम हमारी ।
ममरथ सामी तू मिल्या, गहिया अनम भिग्।।। ॥श्री०॥१॥

पाठान्तर—१ गहरव

दीनदयाल कृपाल नो, जो विरुद धरावे ।
अन्तर आतम रूप नी ते सम्पति जगावे ।।श्री०।।२।।
शक्ति सहाइ आप छे, तो निज पद लीजे ।
ज्ञानसार अरदास नी, आशा सफल करीजे ।।श्री०।।३।।

१२—श्रीवासुपूज्य जिन स्तवनम्

राग—वेलावल

वासुपूज्य जिनराज नो, शुद्धि दरसण भावे ।
मत-मत ना उनमादियां, यौंहि जनम गमावे ।।वा०।।१।।
मत-मद नी उनमत्त थी, तत्त्वातत्त्व न बूझे ।
राग दोष मति रोग थी, पर भव नहिं सूझे ।।वा०।।२।।
ज्ञानसार जिन धर्म ने, सग नय समभाई ।
अनुगामी ने संपजे, आतम ठकुराई ।।वा ।।३।।

१३—श्रीविमल जिन स्तवनम्

राग—कलिंगड़ा

माई मेरे विमल जिनेसर सामी ।
आतम रूप नो अंतरयामी, परनामें परणामी ।।मा०।।१।।
अविराधी गुण मयीय अभेदी, साधकता नी सिद्धे ।
तेहिज साध्य स्व शुद्धि तारक, चेतनता नी ऋद्धे ।।मा०।।२।।
रूप अभेदे शक्ति अभेदी, विमल विमलता मानें ।
आतमता परणमन प्रयोगे, ज्ञानसार पद पावे ।।मा०।।३।।

१४-श्री अनंत जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(पद्मप्रभु जिन ताहरौ मुझि नाम सुहावे)

तू ही अनंत अनंत हूं, बस्ति परख नौ येगे ।
मान मेल्ह साहिब करयो, तो ही अवगुण हेरो ।।तू० ।।१।।
चूक मरयो चाकर सदा, ते सनमुख देखो ।
तो सेवक स्वामी तणो, स्यौ गहिसी लेखो ।।तू० ।।२।।
सौ गुनहा बगसै बदे, स्वामी सलहीजै ।
ज्ञानसार नै साहिबा, निज पद सौंपावै ।।तू० ।।३।।

१५-श्री धर्म जिन स्तवनम्

राग पंचम—(मारूं मन मोह्यु रे श्री०)

धर्म जिनेसर तुझ मुझ धर्म मां, भेद न होय[1] अभेद रे ।
सत्ता एकै धर्म अभिन्नता रे, तो स्यौ एवड़ो भेद रे ।।ध० ।।१।।
राग दोष मिथ्या नी[2] परणितै रे, पाग्यमियौ परिणाम रे ।
हूं संसारै वेद थी संसरू रे, ताहरूं शिवपद धाम रे ।।ध० ।।२।।
तू नीरागी तू ही निरमदी रे, निरमोही निरमाय रे ।
अजर अमर तूं अचल अव्ययी रे, ज्ञानसार पद राय रे ।।ध० ।।३।।

पाठान्तर—१ नहीं च २ मिथ्यात्वां

१६–श्री शान्ति जिन स्तवनम्

राग सारंग

जब भव भ्रमण गयो सब मेल्यो
पाछल पूठी पीठै लाग, मेल्यो सो ही न मेल्या ॥जि० ॥१॥
शब्द रूप रस गंध फरस में, भमइ रहत अथम्ग्या ।
सकर फरसी सुमता मिरखै, आश्रव मांहि भगेल्यो ॥जि० ॥२॥
संयम माग प्रवर्तन समयै, आतम रहत पछेल्यो ।
संत जिनेसर ज्ञानसार को, मन कबहू नहिं अस्यो ॥जि० ॥३॥

१७–श्री कुंथुनाथ जिन स्तवनम्

(कहा अज्ञानी जीव क०)

कुन्थू जिनवर साहिबा, सुन अरज हमारी ।
हू शरणागत तारसी, तू शिव मग धारी ॥कु० ॥१॥
शिव मग ने अनगाहतें तैं शिव गति साधी ।
आतम गुण परगट करी, आतमता साधी ॥कु० ॥२॥
दीन जाण करुणा करी, शुध माग बतावै ।
ज्ञानसार जिनधर्म थी, शिव पदवी पावै ॥कु० ॥३॥

१८–श्री अरि जिन स्तवनम्

(तू आतम गुण जाण रे जाण)

अरि जिन अशुभ अज्ञान विधान
सर्व क्रिया निष्फलता मान ॥अ ॥१॥

तीन तत्व नी जे मोक्षसाख, तेहिज शुद्ध श्रद्धान सु साख।
पलि उत्सत्र न मापे जेह, बीजु लक्षण एहनूं एह ॥म०॥२॥
त्रीजूं अवंचक करणी करे, ते निज रूप ने निश्चे वरे।
ज्ञानसार शिव कारण अमूल, अर जिन मारूयूं श्रद्धा मूल ॥म०॥३॥

१६ श्री मल्लिजिन स्तवनम्

राग रामगिरी (भाव महोत्सव रंग रली री)

मल्लि मनोहर तुम्ह ठकुराई ॥म०॥
सुता भये तें भूप बधाई, घंट सुघोषा दव घुराई ॥म०॥१॥
जय जय घोष न मायो जग में, अनमिष नारकिये सुख पाई।
सुर वनिता मिल गाई बधाई, सुरपुर में मांडव बधाई ॥म०॥२॥
इंद्राणी घर आंगण नाचे, भर मुक्ताफल थाल वधाई।
ज्ञानसार जिन जनम जगत की, हरख हकीगत किन वरणाई ॥३॥

२०—श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(श्री महाराज मनावो)

मुनिसुव्रत जिन वंदौ, सहसम अरूविनिर्कंद आनंदौ ॥मु०॥
हूं सन्मुदें वदन स्मिता, उदयें अनुभव चंदौ ॥मु०॥१॥
वस्तु गतें निज तत्त्व प्रतीतें, मिथ्यामति अति मंदौ।
कुशल विलास आतमता रूप, परखें परमानंदौ ॥मु०॥२॥
कारक जोगें कारज सिद्धी, हूं जाणें मतिमंदौ।

ज्ञानसार की ज्ञानसारता, मम मासैं जिण चंदो ।।मु ।।३।।

२१ श्री नमि जिन स्तवनम्

राग ध्यास्या—अब हम अमर भए न मरैंग

(अंबर देहो मुरारी ए मिश्र)

नमि जिन हम कलि क ससारी,पुद्‌गल के सहियारी ।।न०।।

क्या वूझै हम मंदन पूजन, नमन भाव शुभ तारी ।।न०।।१।।

पुदगल खावै पुदगल पीवैं, पुदगल पथर पथारी ।

पुदगल संगै हमही सोवैं, पुदगल लगन सुप्यारी ।।न०।।२।।

वदनादि नो भ्रातम भर्पण, बिन संबंध न वारी ।

ज्ञानसार नी ज्ञानसारता, नमि जिनवर सहियारी ।।न ।।३।।

२२ श्रीनेमि जिनस्तवनम्

राग वसंत ख्याल—(परमगुरु जैन कहो क्युं होवे)

एसे वसंत लखायो, नमि जिन एस वसंत लखायो ।

परम ध्यान सिघरी की तापे, मिथ्या शीत पलायो ।

किंचित शीत रयो भव वित को, पासैं मांगस आयो ।।न ।।१।।

शुक्ल ध्यान गुदरी बगसैं जिन, कैसे शीत न जावे ।

ठंढ पर्या बिन पार्श्व इगी, मन गरमी नहिं पावै ।।न ।।२।।

बिन गरमी बिन हाथ पैर सूं, साधु क्रिया किम कीवै ।

साधु क्रिया बिन ज्ञानसार गुन, शिव संपद किम साझै ।।न०।।३।।

पठान्त —१ भारी

२३ श्रीपार्श्व जिन स्तवनम्

राग रामगिरी—(अवर देहो मुरारी)

पास जिन तू है जग उपगारी, तू है जग उपगारी ।
जग उपगारी विरुद धारके, लोजै खबर हमारी ॥पा०॥१॥
जगवासी में जो माहि राखो, तो मोकू हो तारी ।
बिरुदें तारो जो नहि तारो, मोहि करन' की मारो ॥प०॥२॥
पतित उधारन बिरुद तिहारो, ताकू क्यू बिसरीजै ।
ज्ञानसार की अरज सुणीजै, चरण शरण राखीजै ॥प०॥३॥

२४ वीर जिन स्तवनम्

राग भैरव—(अब लग आपे नहिं मन ठाम)

वीतराग किम कहि वधमान ॥वी०॥
मम विसमी जिन समता राखें,
दीनाधिक नौ क्यों अभिधान ॥वी०॥१॥
प्रतवै श्रद्धयादिक इसी, परिषद में आपै मनमान ।
अपमत्तो वहाक्रीडा करता, तारघो भीम विनीतां मान ॥वी०॥२॥
गोशालै नै अविनीता लघु, अमम भवे दोषों शिव थान ।
ज्ञानसार नै हशियन आपै, दो दीठे उग न समान ॥वी०॥३॥

पाठान्तर— १ करम

कलश-प्रशस्ति राग—धनाश्री (मन्नगुरु जिनके)

गौड़ेचाजी तें सुदि, सुचि बुधि दीधो।

तुम्ह सहायें बुद्धि पंगुर थी, जिन गुण नभ गति सीधी ॥गौ०॥१॥

अधर धन्ना स्वपद साटनी, भाव भेद रस भीनो।

अ घ मोपिर आशय नहीं समझू सी भ त ऊंची सीधी ॥गो ॥२॥

कासा-वासा सहु थी करि नै, भक्ति युक्ति रस पीधी।

सुमति समय विम प्रवचन माता, सिद्ध वाम गति लीधी ॥गौं०॥३॥

वर खरतर गच्छ रत्नराज गणि, ज्ञानसार गुण वेधी।

विक्रमपुर मिगसर सुदि पूनम चौवीसू स्तुति कीधी ॥गौ०॥४॥

इति पद

पं० प्रवर ज्ञानसारजिद्गणिः कृत चतुर्विंशतिका समाप्ता।

---

१ सुमति-५ समय-७ प्रवचन माता=८, सिद्ध-१ वि सं १८७५

॥ विहरमान वीसी ॥

श्री सीमंधर जिन स्तवनम्

राग—करेलडा घरे रे

किम मिलियें किम परखियें, किम रहियें तुम पास।
किम रहियें सेवना करी, तट थी चित्त उदास ॥१॥
सीमंधर प्रीतडी रे, करिय कोण उपाय, भाखो कोई रीतडी रे।
ते तुम आवुं नहीं, मिलवे क्यों सम्बन्ध।
जो नियरे मिलवुं नहीं, तो परिचय प्रतिबंधि ॥२॥ सी०॥
प्रथम प्रकृत नें अमिलतो, पाछल करिय वात।
ए अनुक्रम आपणा विना, परिचय नों प्रतिघात ॥३॥ सी०॥
परिचय विण कोई मन्न, न दियें सेवक पास।
पासे हो सेवक न रहे, रहिवा नी सी आश ॥४॥ सी०॥
जो रहियें पासे सदा, तो अवसर अरदास।
करियें पिण मोटा करे, न करें निपट निराश ॥५॥ सी०॥
जो कारण तुम्ह भरस नी, सेवा करस्युं साम।
इण काल मुझ वन्दना, पोहचज्यो परिणाम ॥६॥ सी०॥
दूर थकां कमठी परें, महर नजर महाराज।
ज्ञानसार थी राखज्यो भरम्यें तो मदु काज ॥७॥ सी०॥

पाठान्तर—१ केम २ मिलाप

२ श्री युगमधर जिन स्तवनम्

(बीरा चांदला। ए देशी)

युगमधर जिनराज श्री रे, सुमस् निवड सनेह ।
करता मांही बापमी रे, किम तुम दाखो छेह र ॥१॥
युगमंधर जिन, सबल विमासण एही र ।
साम विरागिया, राग बिना नहीं नेहो रे ।यु०॥ २॥
मूल बिना नहीं तरुवरा र, ग्राम बिना नहीं सीम।
साम बिना जीवित नहीं र, राग नेह नी नीमो रे ।यु ॥ ३॥
हूं इण भरत नी कीड़ली र, तु शिव वामी सिद्ध ।
सरिखा विण न हुवै कदे र,प्रीत रीत नी विद्धो र ।यु ॥ ४॥
भासंगो किम कीजियै रे, करियें जेह नी आस ।
ज्ञानसार नै प्रीछज्यो र, परख कमल नीं दासा र ।यु ॥ ५॥

३ श्री बाहु जिन स्तवनम्

(मधसाकर हूँती आ देसै)

बाहु जिनेसर सेवा सारी, हूं भाखूं विध सुविचि सारी ।
द्रव्य भाव पूजा बे भेदें, प्रथम अमम भव पद अखेदें ॥१॥
मन निरपख तिम रुचि पूजा नी, अक्षेदी विध ए न छुपानी।
अग भग्र द्रव्य पूजा जेह ते धनी ग्रथिया बोधे एह ॥२॥

असंख्यात मन ना पर्याय, भाव पूजा ना भेद कहाय ।
उपशम क्षीण सयोगी ठाणे, चौथो षड्विध भेद वखाणे ॥३॥
जे प्रवचन नां वचन न छेदे, ए मारग्यौ जिन पंचम भेदे ।
किरिया करै समय[1] अनुसारे, पंचकल्याणी लक्षण धारे ॥४॥
निमता[1] एकंत पक्ष न राखे, ते जिन सप्तम भेद वखाणे ।
मानसार जिन पडिमा जइ, जिन सम माने अष्टम एह ॥५॥

४—श्रीसुबाहु जिन स्तवनम्
(ललनां नी देशी)

श्री सुबाहु जिणंद नों, परम धरम परमाण ॥ललना॥
कीधौ त्रिकरण शुद्ध थी, जिन आगमगम[2] जाण ॥ल०॥१॥श्री॥
इग विह सम सत्ता मई, दुविहं दो नय धार ॥ललना॥
तीन तत्त्व त्रिविधे भण्यां, चा दानादिक च्यार ॥ल०॥२॥श्री॥
पण विह पञ्च महाव्रत, छव्विह काय निकाय ॥ललना॥
सग विह सग भय निरमई, अड विह प्रवचन माय ॥ल०॥३॥श्री॥
इत्यादिक बहु भेद था, धर्म कह्यो विवहार ॥ललना॥
निश्चय आतम रूप थी, वस्तुगत धर्म विचार ॥ल०॥४॥श्री॥
असग भवे उदये हुवे, ए विवहार स्वरूप ॥ललना॥
निश्चय अंतिम भव लहै, ज्ञानसार रस रूप ॥ल०॥५॥श्री॥

पाठान्तर—१ सिद्धांत । टिप्पणी—१ निमम छतो २ मार्ग ।

५-श्री सुजात जिन स्तवनम्

ढाल—(चिवरे जगत गुरु)

मैं प्रणम्यो निरवे करी हो जिनजी, जिन धर्म सम नहीं कोय ।
सकल नयाश्रय[1] आगमैं हो जिन, धर्म जगत ना जाय ॥१॥
सुख रे सुजात जिन, तुम्ह धरम समो अवर को नहीं ।
जिम इण भव मा सुम्ह शरणो एह छै, इण जिन सेवे मग
मैं सही ॥२॥सु०॥
जिम गहिली नौ परिरखो हो जिन, तिम सहु धरम कथन ।
कर्म-रहित करता कहे हो जिन, इम किम मिलै वचन ॥३॥सु ॥
ईश्वर प्रे्यो स्वर्ग में हो जिन, नरकै जावे जीव ।
भूत मई केई कहे हो जिन, परगम्मायें सदीव ॥४॥सु ॥
मिथ्या मत मद मोहिया हो जिन, म्यू जायीं नय वाद ।
ते जिन तुम्ह समर्मा मके हो जिन, 'ज्ञानसार' सवाद ॥५॥सु ॥

६-श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनम्

(मदिर करो जिनजा)

श्री स्वयंप्रभ साहरी जिनजा, विरुद सुणयो मैं कानकै ।
परम पुरुष जिनजी ॥
सेवा सांची सात्यवै जिनजी, देइनै थे शिव थानकै ॥प ॥१॥

टिप्पणी—१ नय का आशय । पाठान्तर—२ न गमैं ।

क्यु करि पहुँचूं तुम कन्ने, तो किम सारू सेव के ॥प०॥जि०॥
भलगां थी ही तावरी जि०, भाव धरूं नितमेव के ॥प०॥२॥
जो निजरां सन्मुख रहूं जि०, तो फल प्रापत होय के ॥प०॥जि०॥
पंखी हो पहुँचे नहीं जि०, मुझ संभव नहीं कोय के ॥प०॥३॥
इंहांथी ही अवधारज्यो जि०, वीनति वारंवार के ॥प०॥जि०॥
तुम सरिखो समरथ धणी जि०, पाम्यो परम उदार के ॥प०॥४॥
तुं जगतारक हितकरू जि०, स्वयंप्रभु जिनराय के ॥प०॥जि०॥
ज्ञानसारने तारवा जि०, कीजै वेग उपाय के ॥प०॥जि०॥५॥

७ श्री ऋषभानन जिन स्तवन।

राग–(भेखिक मन अचरिज थयो)

तुम्ह परणाम नै परणम्यै, हूं निजरूप नौ कर्ता रे।
तू मुहि साधक सिद्ध है, धू हूं सम इग सत्ता र॥
ऋषभानन जिनरायजी ॥१॥
पूर्व रूप नै अभिलषी, जो निरखूं निज रूपो रे।
पर परिणाम नै परणम्यै, हूं कारक भव कूपो रे ॥२॥ऋ०॥
मिथ्यात्वादिक हेतु नै, परिणाम परिणामी रे।
इ बांधूं अठ कम नैं, कर्म कर्ता नौ कामी र ॥३॥ऋ०॥
संवेगादिक साधके, चेतनता नौ रामी रे।
इ कर्ता निजरूप नौ, ज्ञानादिक गुण पामी र ॥४॥ऋ०॥

ए गुण गुणिय अभेद है, "शिव अ पक्षो निरमायो र।
अखय अपुनरावर्त थी, ज्ञानसार गति साधी र ॥५॥प्र०॥

८ श्री अनंतवीर्य जिन स्तवन।
राग-(सोमधर करजो मया)

इग मींढ्यां हूं तुम कनै, दो मींढ्यां अति दूर।
तीनूं लक्षण मेलव्यां, चिदानन्द रस पूर ॥१॥
अनंतवीरज अवधारज्यो, गुपति रहिस नी ए वात।
मोटा मरम न दाखवै, तेम पराई ज तात ॥२॥अ०॥
जो मेव्यां थी सहु समो, अन्वय लक्षण धार।
व्यतिरेकी नै मेलव्यां, परम गति दातार ॥३॥अ०॥
हूं तुम भेद न एकता, तौ किम हुवइ अभेद।
जु जन करयें ताहरें, पर पर्यायत नौ ए खेद ॥४॥अ०॥
तुझ मुझ अंतर भेदवा, ज्ञानकलश गुण धार।
ज्ञानसार गुण एकता, चेतनता ना व्यापार ॥५॥अ०॥

९ श्री विशाल जिन स्तवन।
राग-(अलपा फल हो केवना)

श्रीविशाल जिनराय नौ, परम धरम सुपरीतो रे।
करम नाश नै कारणै, ए सम अवर न मीतो रे ॥१॥
जय जय जिन धर्म जगत में ॥

ग्राह्य अरथ नय एकता, वलि सापेख वचमो रे।
भाख्यो अनत भगवंत ज, तिम भाखे ते धमो रे ॥२॥श्रय०॥
पण इण दूषम काल ना, मत ममती उनमादी र।
क सुम्ह थापे ऊथपे, वेद विसंवादी र ॥३॥श्रय०॥
थापकवादी इम कहै, जिन पूजा नै कामी रे।
कलिय कतरथी बींचवी, इम जपै जिनरामो र ॥४॥श्रय०॥
ऊथापकवादी कहै, पूजा नहीं आचरणा रे।
बिन आरंभ पूजा नहीं, जिन धर्म नहीं बिण वपणा र ॥५॥श्रय०॥
फूल फली नें कतरवें, जिन मुनि हिंसा दाखी र।
माठ दया ना नाम में, जिन पूजा जिन भाखी र ॥६॥श्रय०॥
मत वादी मत ताणतां, धर्म तत्व न्यू नासै र।
ज्ञानसार जिन मत रता, न मत ममत न तासै रे ॥७॥श्रय०॥

१० ॥ श्री ऋषभ जिन स्तवन ॥

राग—(धन २ संबति साचो राजा)

स्यूं हूं गायां गाऊं ताहरां, तो पिण भाग न माहरा र।
मारग चलतां भार मारां, थी स्यां दाम ना साग र ॥१॥
ऋषभप्रभु जिन सुम किम रीझै ॥
मैंमुग्ध पा पापूर्ण पीयो अधिक्री मरा नाणीं र।

जो कोई चूक करी ते बगसौ, पिण इतकी स्यूं ताणी रे ॥२॥द०॥
जे कोई दास करेसी सेवा, अवसर भरम जगावै रे।
जो बगसेवा नी नहीं मनसा, तौ किम सेव करावै रे ॥३॥द॥
सेव करावी दवा टायौ, हसि नै दांत दिखावै रे।
ते स्वामी नै सेव करातां, क्यु ही लाभ न आवै रे ॥४॥द॥
कहिवा नौ विवहार सेवक नौ, करवौ स्वामी सारू रे।
ज्ञानसार नी खबर लहेस्यौ, तौ सहु कहिस्यै वारू रे ॥५॥द॥

११ ॥ श्री वज्रधर जिन स्तवनम् ॥
राग—(आदर जीव क्षमा गुण आदर)

श्री वज्रधर १ सनमुख मिलवा, चाहूँ छू मुझ मन जी।
प्रह ऊठी नै समवसरण में, वांद ते धन धन जी ॥श्री०॥१॥
न सकू तुम श्री सनमुख मिलिवा, तौ पिण तुमचै पास जी।
आम्ब धन गिर ऊपरि चाहरी, तेम करू अरदास जी ॥श्री ॥२॥
जो इतला वीसा न तारौ, मुझ मांहि सी भूल जी।
पांच मद जिनराज करै सो, तौस्यौ करवौ सूल जी ॥३॥श्री०॥
अवसर समझ करी अरदासै, जौ पूरवस्यौ हाम जी।
नहितर वार आम न पूरा, पछतावै स्यौं काम जी ॥४॥श्री ॥

पठान्तर—१ नहीं।

पेट भांव नें सेवा मागें, ते गाशीवै दास जी।
ज्ञानसार थी सेवा थाई, किम नवि पूरौ आस जी ॥५॥श्री०

१२-श्री चन्द्रानन जिन स्तवनम्

राग—(इण पुर कबल कोई न लसी)

चन्द्रानन जिन पूर्व उपाई, परम प्रकृत त उदयें आई।
मारग दश मारग फल पायो, जैन धरम नें सरवें आयो ॥१॥
रूप रंग बल लांबी आय, पांचू इन्द्री परगट पाय।
सुगुरु सयोग संयम लीधौ, मन वचन नहीं पालन कीधौ ॥२॥
दुःकर केता हाथ कीधा, ते पण उन्य उपायें सीधा।
श्रम उपशमा श्रम उदय थी, मद लोभ म मनोन्य थी ॥३॥
पाछलि पूर्वी सरवे साइ, पदवें वृद्धावस्था आई।
ज्ञान वयें करणी नहीं कीधी, हिव इन्द्रिय दमन नी सिद्धि ॥४॥
पिण पछतावा गरम न काई, श्री किम स्वामी दोष सदाई।
अल्प समाधि मरण शुभ कन्यो, ज्ञानसार पीनति मानें यो ॥५॥

१३-श्री चन्द्रबाहु जिन स्तवनम्

राग—(महिलां ऊपर मेह)

मैं आएयो महाराज पै, राज निवाजस्यों हो लाल ॥रा०॥
धीमी महु अमगार पैं, लाज नौं काज स्यां हो लाल ॥ला०॥
मरीजै तर छोड, न अन्त फल न्यिं हा लाल ॥अं०॥

न दियै तो पिण पंथी, मीसामी लिय हो लाल ॥मी०॥१॥
माज लगै कर जोड़ी, सेवीजै मदा हो लाल ॥से ॥
कीधी छूं बगशीश, ममालीजै कदा हो लाल ॥स ॥
तो पिण मिण इक मुख्, फिर तुम्ह मांमरू हो लाल ॥फि ॥
बगसेवा नी वार, वांक सब माहरू हो लाल ॥वां०॥२॥
जेहनें देवा होय, वांक न्याये करै हो लाल ॥वां०॥
रूप दीमती गाय नी, लात मधु सहै हो लाल ॥ला०॥
मन मन भालग कीनी, साम समारियै हो लाल ॥मा०॥
दिव दिश सेवा माहरू, किम न विचारियै हो लाल ॥कि०॥३॥
मांगू न तुम पास, भनंती भाद करै हो लाल ॥भ०॥
माहरी मुझ नें दर्यां, जीर न किम बहै हो लाल ॥जी०॥
मादि पराई आप, दयावी गरहसी हो लाल ॥द०॥
इस लचब इज साम, भनती दासमी[1] हो लाल ॥भ०॥४॥
त्रिजगत स्वामी बिरुद, भनादि वाहरो हो लाल ॥भ०॥
हूं पिरा भमवामी, तू साहिब माहरौ हो लाल ॥तू ॥
चन्द्रबाहु जिन महिर, निभर मर रासमी हो लाल ॥नि०॥
ज्ञानसार ना जीव, दुलम यश दासमी हो लाल ॥दु०॥५॥

पाठान्तर—१ मारासी।

१४ ॥ श्री सुमंगम जिन स्तवनम् ॥
(काज सिद्धेजी रे होसे नाहलो)

सॅमुख तुम थी किम ही न मिल सकूं, तो गी मन नी बात ।
कहिये कृपा सुख नै धीरप दिये, इम सोचूं दिन रात ॥१॥सँ०॥
काल अनंत जे म दु:ख सह्या, सू आयो जिनराज ।
हिव ओनी सफल ना भय थको, गश्रीजै महाराज ॥२॥सँ०॥
तुम पिण किम थी ए मीनति, करू कीधां थी हुवे सिद्ध ।
न पोते संमार मंसरें, त किम आये सिद्धि ॥३॥मै०॥
संकल मिथ्या कारण समियं, पोतें सकल धाम ।
कवता नै माँहे विलगीयं, निदर्से हूवे श्याम ॥४॥मै०॥
तारघा तारैं तू हीं तारस्ये, तू तारक निरधार ।
भरत कर्म हिव माम सुपगम, ज्ञानसार न हार ॥५॥मैं०॥

१५ ॥ श्री नेम जिन स्तवनम् ॥
(करतां सूं तो प्रोत सहू हूंसी करे रे)

नम प्रभु हिव कैया बिधे, धीरज धर्म रे ।
चोली मन् समकार, भ्रम किम ही न सरयू रे ॥
तो ही सगरू ताहरो, भवर न मन गमे र ।
पिण फल प्रापत बिना, मुझ आशा किम मंम र ॥१॥

चींग पथा कर अवर, दव हुआ मन करूं र ।
ता प्रभु तुमची आंण, आंण किम ही न फिरूं र ॥
पिउ हिव इम किम निमसी, साम विचारियै र ।
मुझ मन धीरज हुय, तिम किमपि उचारियै रे ॥२॥

नीरासा असवार, केण पर चालियै र ।
विण आस्पायै मनुज, मनम किम चालियै † रे ।
गरखाई माचार, विरुद थां धारयौ र ।
तां इनकी सुख वात, सात हिव साम्यौ र ॥३॥

साच्या कला तारिज, तारै हुं बहु र ।
मुझ वसा आतम कर, बैठो छू कहू र ।
आव जग जो अवर, दव नै सेवती र ।
तां जगवासी मर्च, देव कर पूजती र ॥४॥

पिउ तुझ आगम वाच सुणा तिण नवि ठर्गे रे ।
चोरी चक्र फिरतां, अन्न किम ही न पचै र ।
भद्रा चोरी चक्र, भामना साम्की रे ।
ज्ञानसार व भार, चढ़ै नहीं काठ की र ॥५॥

† हुचारैं

१६ ॥ श्री ईश्वर जिनस्तवन ॥
राग—(वीरा चांदला)

आपथयें सेहवे विना रे, गति कहाँ कम अणाय ।
जौहरी विण जिम रतन नौ रे,मोल्ल किम्यें नवि थायौ रे ॥१॥
किम करि कीमियें, सेवा भेद अपारो रे ।
किस परि छीजियै, थाहें लवण* नौ पारो रे ॥२॥कि०॥
दीपा विण दगारता रे, सूंमें केम लखाय ।
ओलग विण ओलग तणी रे, रीत न आखी आयै रे ॥३॥कि०॥
भाव लगें ओलग तणांरे, आएयौ नहींय विवेक ।
तहिम किण विध कीजिये रे, मसल्ल विमासण एको रे ॥४॥कि०॥
दूर थकां ही राखज्यो र, मुक्त सेवक पर भाव ।
तुम्क मरिस्यैं समरथ विना रे,कइयं नहि निरमायौ र ॥५॥कि०॥
बादल विण गिरवर तणी र, छाया अवर न थाय ।
घर बिना थमि धार में रे, केस दग न भरायौ र ॥६॥कि०॥
ममरथ सूर विना कदे र, कमलल वन विकसाय ।
गयवर कुम प्रहार नौ र, सिंह बिना किम थायो रे ॥७॥कि०॥
अलधर विण सरवर तणौ र, पेट न भरट भराय ।
ममल पवन प्रेरें बिना र, फर्ण घोर घरायौ रे ॥८॥कि०॥

* लवण समुद्र

मन वंछित देवा भक्तो रे, कल्पद्रुम सुमरत्त ।
जिम शिव सुख नै आपवा रे, तूं साचो परमत्त्वो रे ॥६॥कि०॥
प्रीत इकंगी पालिस्यो रे, ईसर जिन जिनराज ।
ज्ञानसार नै तो हुस्यै रे, निश्चै शिवपुर राजो रे ॥१०॥कि०॥

१७ ॥ श्री वीरसेन जिनस्तवन ॥

राग—(हिवरे जगद्गुरु गुरु समकित मीमी भाविये)

में मांडी अति गति पत्री हो जिनजी,
छोड दिया छै पाव ।
इण खोटे पंचम अरै हो जिनजी, तुम हाथे निरमाव ॥१॥
सुख रदयाल राय, तुम्ह महिर निजर भर निरखिये ।
तुम्ह सुनिजर हो तुम्ह सुनिजर साम कै,
मेघ अमी धण वरसिये ॥२॥सु०॥
जे पोतानी माननी हो जिनजी, तेहनी अधिकी हैंस ।
कोनी पिण नवरै पडी हो जिनजी,
कुण कहै तो इस ॥३॥सु॥
आपमती माम् नहीं हो जिनजी, कहनी हितनी सीख ।
हित अरथी नहीं आदरू हो जिनजी
म गरू हित मग वीख ॥४॥सु॥

थांघो भीड़ मएयो रहें हो जिनजी,
ज्यू ही दिन ज्यू रात।
कहितौ किमपि न भय करूं हो जिनजी,
सम विषमी जे घात ॥५॥सु०॥
पतित उधारस ताहरी हो जिनजी,
विरुद गरीबनिवाज।
मुझनें जो न निवाजस्यौं हो जिनजी,
तौ किम रहसी लाज ॥६॥सु०॥
हुँ सेवक प्रभु तू धणी हो जिनजी, वीरसेन जिनराय।
ज्ञानसार गुणहीन नी हो जिनजी,
करस्यौं राज सहाय ॥७॥सु०॥

१८॥ श्री देवयशा जिन स्तवन ॥

ढाल—श्री संखेश्वर पास जिनेश्वर भेटिये

थाज लगै फल प्रापति सो तुम थी थई,
स्यु करसी परकाश, सहू जानो नहीं।
स्वामी थी नहीं कहियै, तौ केह थी कहूँ,
अवसर पाम्यै प्रात, बात किम नवि कहूँ ॥१॥
सहु नी सेवा छोड़, सायवी ताहरी,
सी तें कीध सहाय, सांभल्ले माहरी।

देवल देवल देव, पथा सन पूजता,
बीठा पख कग कंचन आशा पूजता ॥२॥
हुँ तो अवर न मांगू, जो चारित पले,
तुम सहाये मुझ मन नी आशा फले।
एहवे अवसर दास ने, आप न वाघस्यो,
पाम मनती रिद्ध नै, कहियै मायस्यौ ॥३॥
तौ पिय सेवा सारू, पिय गिणतो नहीं,
माम सेवक समध नी, वात न का रही।
राखेवा सम्बन्ध, तो भाम निवाजियैं,
देवपणा त्रिन लोक नै मोसें लाजियैं ॥४॥
जे पोते निरंजन, तुमनें स्यु दियैं,
कबही नहीं जे पाम, रीझवी स्यु लियैं।
पिय जिनराज नी मंदिर, सदिर एके हुस्यै,
ज्ञानसार ससार-निवास श्री छूटस्यै ॥५॥

२६ ।। श्री महावीर जिन स्तवनम् ।।
राग— (हिवरे आठ गुरु)

मैं तो ए आयपो नहीं हो जिनजी, मुझ थी इणको भेद।
पुरुषोत्तम थई राखस्यो हो जिनजी, एहिज मुझ मन खेद ॥१॥

पाठान्तर—१ पूरता २ ताने।

कहि र महामद तुम करुणानिध किण विध कहूँ ।
तुम ऊपर हो करुणा नहीं प्रश के,
हूँ करुणानिध किम लहूँ ॥२॥क०॥
जो सेवक नै तारस्यो हो जिनजी, तो पूरवस्यौ लाड ।
पाल विलम्बौ राखमो हो जिनजी,
तो स्यो करिस्यौ पाड ॥३॥क०॥
तारपा कथा तारसी हो जिनजी, तारै छै जगनाथ ।
भाग लगै हो माहरी हो जिनजी, चीटी न चढी हाथ ॥४॥क०॥
हिव पहिली बादर करो हो जिनजी, राम्या चाहो लाज ।
मानमार नै तारजा हो जिनजी, ढील न कर जिनराज ॥५॥क०॥

२० ॥ श्री अजितवीर्य जिन स्तवनम्
राग—कागलियो करतार मयो सी पर लिखू

साहिबियाँ साहिबियाँ मसनदी छिदां निरागियाँ र,
ज चाल तुम छंद ।
तेहन आपै अनती संपदा र, हो तोड़ी भव भय फन्द ॥१॥सा०॥
ज नहीं चालै साहरं कथन में र, न करै वचन प्रमाण ।
तेहनै आप नरक निगोद स र,
निरुपम दु'ख नी खाण ॥२॥सा०॥

हूं अपराधी पिण तुम आश्या नैं रे, सिर पर धारूं साम ।
इम जाणी नैं जो तुम तारस्यौ र,
तो सरसी मुझ काम ॥३॥मा०
आ अपराधी मौड़ो तारस्यौ र, तुमची दोरप* जोय ।
भरत करू जिम मीढो कांपली र,
तिम तिम भारी होय ॥४॥मा०
नीति रीति समझो नैं माहिया रे, भविकवीरज भगवाम ।
धीरज न कीजै बहिलौ दोखियै रे,
ज्ञानसार शिव धाम ॥५॥मा०

॥ कलश प्रशस्ति ॥

(ढाल—शालिभद्र धन्नौ ऋषिराया)

इम बीस जिनवर जिनराया, आतम संपद पाया जी ।
धैन लाभ खरतर भवपाया, अमई अमम अमाया जी ॥१०॥१
रत्नराज गणि गणि मणि शोभे, ज्ञानसार सुजगीसैं जी ।
भावक आग्रह प्रेरक फरसे, भाव सहित अति हींसैं जी ॥१०॥२
संवत अठार अठ्ठ तर बरसैं, गौतम केवल दिवसैं जी ।
विक्रमपुर वर कर चौमासें, स्तवन रच्या उल्लासै जी ॥१०॥३
इति पं० श्री ज्ञानसारजिद्गणि कृत विंशति जिन स्तुति सम्पूर्णम् ।

* कठिनता

बहुत्तरी पद संग्रह

(१) राग—भैरव

कहा भरोसा तन का, अवधू भिन्न रूप छिन छिनका ॥क०॥
छिन में ताता छिन में सीरा, छिन में भूखा प्यासा ।
छिन में रंक रंक तें राजा, छिनमें हरख उदासा ॥क०॥१॥
तीर्थंकर चक्री बलदेवा, इंद चंद्र धरणिंदा ।
भासुर सुरवर सामानिक वर, अन्य राणा राजिंदा ॥क०॥२॥
संसारी जीव पुद्गल राचै, पुद्गल धर्म विनाशा ।
या संगति तें जन्म मरण गन, ज्यूं जल बीच पतासा ॥क०॥३॥
भिन्न भाव पुद्गल तें भावै, तू अनकल अविनाशा ।
ज्ञानधार निज रूपे नाहीं, जनम मरण भव पाशा ॥क०॥४॥

२ राग भैरव

ऐसी अजब तमासा, अवधू, जल में बासा प्यासा ।
है नांहि है द्रव्य रूप तें, है है नांही वस्तु ।
वस्तु अभावे बंधादिक नौ, संभव नहीं अवस्तु ॥ए०॥१॥
बंध बिना संसारी अवस्था, घटना घटै न कोई ।
पुण्य पाप बिन राउ रंक नौ, भिन्न भाव नहीं होई[1] ॥ए०॥२॥

पाठान्तर—१ कोई

सिद्ध सनातन शुद्ध सभावें, जो निश्चय नय भावै ।
सो षधादिक नौ आरोपण, तीन काल नहिं पावै ॥ए ॥३॥
हृदय कमल करणिका भीतर, आतमरूप प्रकाशा ।
बाह्य छोड़ दूर तर खोजे, अंधा जगत सुलासा ॥ए०॥४॥
सापमई सरवंगी मानें, सत्ता भिन्न सुभावै ।
स्याद्वाद रस नौ आस्वादी, ज्ञानसार पद पावै ॥ए ॥५॥

३ राग—भैरव

और खेल मत खेल बावरे, आसम भावन भाय र ॥औ०॥
ऊपत विनाश रूप रवि परिणाम, जड़ के गत चित काय रे ।
अविनाशी अनपद चिद्रूपी,
काले तू न कलाय रे ॥औ ॥१॥
रोग सोग नहिं सुख दुख भोगी,
जनम मरण नहिं काय रे ।
चिदानंद घन चिद आभासी,
अमई अमम अमाय र ॥औ ॥२॥
गज सुकुमालादिक मुनि भायौ,
जड़ संबन्ध विभाय र ।
ततखिण कवल कमला अविचल,
अक्षय शिवपद पाय र ॥औ ॥३॥

इत्यादिक दृष्टान्त घनेरे, केते लौं कहिवाय रे।
आतम तत्त्व यदी तप नित नी,
भव्य भ्रमण न कहाय रे ॥औ०॥४॥
ज्ञान सहित जो किरिया साधै, आतम बोध लखाय रे।
ज्ञान बिना संयम आचरणा,
चौगति गमन उपाय रे ॥औ०॥५॥
तू जो तेरे गुण को खोसे, सो में कछु न सगाय रे।
ज्ञानसार तुम्ह रूपे अविचल[१],
अजर अमर पद राय रे ॥औ०॥६॥

(४) राग—भैरव ।

पर[२] परणमन विभावै, आतम अना कृपाणा न्यायै ॥प०॥
मिथ्यात्वादि हेतुमय आतम, आपही बंध उदीरै।
आप ही उदयें सुख दुख वेदै, गत्यागति चित मीरै ॥प०॥१॥
ऐसो मूढ न अवर अगूढन, आतम धरम न समझे।
सिद्ध सनातन तू सबकालै, फिर क्यूं करम अरूझै ॥प०॥२॥
सधा द्रव्य सुभाव लछन तें, सम अनादि सिद्ध सूं ही।
निज सुभावमय ज्ञानसार पद, व्यक्त सम्भि सिद्ध सूं ही ॥प०॥३॥

१ अमत्वल २ पर परिणति मन माय।

(५) राग—भैरव ।

जब[1] जड़ परम विचारा, अवधू तब हम तें जड़ न्यारा ।
छेदन भेदन मल मय रूपी, जड़ के नास विकारा ।
शब्द रंग रस गंध फरसमय, उपत सहित आकारा[2] ।।ज०।।१।।
जब्य संयोगी जौ लौं आतम, तौ लौं हम सविकारा[3] ।
पर परखित सैं भिन्न भए जब, तब विशुद्ध निरधारा[4] ।।ज०।।२।।
बंध मोख नहीं तीनूं कालें, नहीं हम जड़ संबन्धी ।
ज्ञानसार जब रूप निहारयौ, तब निश्चै निरबन्धी[5] ।।ज०।।३।।

टिप्पणी—

१ जब नाम=विचारै जड़ रो धर्म सहज पणा विभाग है ते धर्म विचारतां भी म्हारो चेतनत्व धर्म है, ऐथी हम से जड़ न्यारा ।

२ उपजवो सहित-सड़णो आकार स्वरूप ऐ पुद्गल धर्म है

३ जब्य म्हांसूं जो व्यावहारिक रूप जड़ रा म्हे संजोगी हुआ तिवारै म्हारो आतमा सविकारा—विकार सहित हुओ शब्द रूप गंध स्पर्श रो धारिक हुआ ।

४ तिके तीन म्हे पर परखित से भिन्न भए जब नाम=विचारै तब नाम=तिवारै, निरधार निश्चै संभावै विशुद्ध हां निर्मल हां ।

५ निर्मेल स्वरूपवान हुआं थकां म्हे ममत कीनो नाम=' मुक्ति भि पर चित्तमें मनने " म्हारे बन्ध मोख तीनं काले ही

(६) राग—भैरव

चेतन[1] धर्म विचारा, अवधू तब हम तैं जब न्यारा ॥
मिथ्यात्वादि धार नहीं कारण, बंधन हतु हमारे ।
चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान सकति विस्तारे[2] ॥चे०॥१॥
ज्ञान[3] सकति निज चेतन सत्ता, भाखी जिन दिनकारे ।
सत्ता अचल अनादि अबाधित, निश्चय नय अवधारे[4] ॥चे०॥२॥

म्हौं म्हारे जड़ सूं किसो सबन्ध इसो विचार म्हूं म्हारो ज्ञानसार आत्मिक स्वरूप म्हे निहारयो देख्यो तब नाम= तिण विरियां म्हे विचारयो म्हेंतो तीनूं कालें निरबन्धी छां । इति सम्बन्ध ।

१ आत्मत्व धर्म सम्बन्धी कथन आत्मा रो आत्मत्व धर्म कह्यो अथवा चेतनत्व धर्म कह्यौ अवधू नाम=हे आत्माराम ! "तब हमतैं जब न्यारा" म्हारे जड़ सूं तीनूं ही काल में असंबन्ध है ।

२ मिथ्यात्वाविरत कषाय योग[1] ए ज्यो च्यारें हो बंधन रा कारण छ सो हमारे नाम=म्हारे नहीं । कारण नाम=अरण नहीं । क्यु कारण नहीं ? म्हे तो चेतनता परिणामी छां । चेतना असंबन्ध रहां छां तिण सूं म्हे तो ज्ञान सकति ने ठीक विस्तारण करां इसा रहतां म्हारो तो ओ ठीक धर्म है ।

३ पूर्व कही सो ज्ञानशक्ति ते निज चेतन सत्ता निज नाम आत्मिक स्वरूपे सहित जे चेतन. तनी सत्ता नाम="सत्तेव तत्त्व" जिन दिनकारे अर्थात्=जिन सूर्ये एम कह्यो ते सत्ता केहवी है ? अचल है सूक्ष्म निगोदें पिण ते चली नहीं यथा "अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाडियाचिट्ठइ" इति सिद्धान्त वचन प्रमाणात् अतएव अनादि अबाधित पीड़ा रहित ।

४ निश्चय नयें अवधारणा कीनौ ।

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु को, तुझ मुझ अंतर एतो ।
तू परमातम हूं बहिरातम[5] तम रवि अंतर जेतो ।।चे०।।३।।
यातैं दास भाव लखि अपनो, कृपा कसर नहिं कीजै ।
दीनबंधु हे अन्तरयामी ! ज्ञानसार पद दीजै ।।चे०।।४।।

(७) राग भैरव

अब हम[1] रूप प्रकाशा, अवधू जगत तमाशा भासा ।।अ०।।
टांगो वस्त्र न सिर पर पागी, तामें भूखा प्यासा ।
रोग जरजरी देही दीरघ, ऐसे पर फिर हासा[2] ।।अ०।।१।।
रूप रंग नहीं अनुभववस्था, सिंघासन नीरासा ।
सानुरूप वनिता न संगति, फिर हासै परिहासा ।।अ० ।।२।।
बाहिर रुदन तहां हूं[3] हासा, मोह छाक छकियासा[6] ।
ज्ञानसार कहि जगवासी को, बाहिर बुद्धि प्रकाशा ।।अ०।।३।।

(८) राग—भैरव

मनुआ मम नहीं आवे, अवधू कैसे रोय दिखावे ।।म०।।
ज्ञान क्रिया साधन तें साध्यो, लालर में न लखावे ।

---

५ तत्सत्वे तत्सत्त्वं अन्वयः तदभावे तदभावो व्यतिरेकः । तू परमातम हूं बहिरातम तारे मारे सूर्य अंधारे जिम अंतरो ।
६ "मोह छाक छकि" नामक्कपर कर फिर गई । फिर आशा नामक तृष्णा ।

पाठान्तर—१ अब २ फिर पल पर हासा ३ कमूं ।

सोवत जागत बैठत उठत, मन मानें जिह ध्यावे ॥म०॥१॥
श्राश्रव करणी में श्रापेही, सिव प्रेरयो उठ धावे।
सश्रम करणी को आरोपू, तो भव ही भ्रमावे ॥म०॥२॥
नौ इन्द्रिय संज्ञा है याकू, पै सबहू धूमावे।
इनहू थिर कीना सो पुरषा, अन्य पुरषा न कहावे ॥म०॥३॥
सुर नर मुनिवर असुर पुरंदर, को इनक वश भावे।
षद नपुंश इक्लो अनकल, सिव में रोय रमावे ॥म०॥४॥
सिद्ध साधनें सब साधन तें, एही अधिक कहावे।
ग्यानसार कहि मन वश याकै, सो निहचै शिव पावे ॥म०॥५॥

(६) राग—विभास

मोर भयो अब जाग बावर ॥मो०॥
कौन पुण्य त नर भव पायो,
पशू सूता अब पाय दाव र ॥मो०॥१॥
धन वनिता सुत भ्रात तात को,
मोह मगन इह विफल भाव र।
कोय न तरठ तू नहीं काकउ,
इम संयोग अनादि गुमाव र ॥मो०॥२॥
आरज ग्ना उत्तम गुरु संगत,
पई पूरब पुण्य प्रभाव र।

ज्ञानसार बिन मारग लाघउ,
क्यूं डूबै भ्रम पाव नाव रे ॥मो०॥३॥

(१०) राग—पद

जाग रे सब रैन बिहानी।
उदयो उदयाचल रविमण्डल,
पुण्यकाल क्यूं सोवै प्राणी ॥१॥
कमल सकल वन-वन विकसाने,
अजहूं न तेरी दृग उघरानी।
चेतन धर्म अनादि तुमारो,
जड़ संगत तैं सुध विसरानी ॥जा०॥२॥
सुम दृश दोय अवस्था पाये,
नींद सुपन ए जड़ निसानी।
आत्मरूप सभार आपनो,
कब तुमरै पर कुमति परानी ॥जा०॥३॥
सुधि बुधि भूले निरूपम रूप की,
यातैं घट जड़ होत कहानी।
निरखै ज्ञानस्वरूप तुमारो,
ज्ञानसार पद निज राजधानी ॥जा०॥४॥

मेरे पद लखि भरम धरै कोउ, आतम तत्त्व उसेरा।
निश्चै भए तत्त्व प्रगट भया तब, ऐसा वचन उचेरा[४] ॥मे०॥५॥
कपट कदाग्रह लखि गच्छवासी, तज गच्छ वास बसेरा।
हिरदै नयन सो नीके निरखूं, इह किंचित अधिकेरा ॥मे०॥६॥
आतम तत्त्व लच्छन नहिं दीसै, जिह तिह ममत घनेरा।
ज्ञानसार निज रूप न निरख्यो, तैं तैं सब उरझेरा ॥मे०॥७॥

(१२) राग—वेलावल

जिन चरणन को चेरउ, हूँ तो जिन० ॥
आगे पीछे तूंहिज तारिस, तो क्यूं करै अबेरो ॥जि०॥१॥
परमावर्त्तन परम करम बिन, कैसे मिटे भव फेरो।
तूं क्यूं तारिस हूं तारक स्यो, जो हूं करिस निबेरो[*] ॥जि०॥२॥

---

४ 'मेरा पद' म्हारा पद अपि नाम=केवल कोई प्राणी भरम धारै इसा म्हारे मुख सूं निरासी वचन निकल्या तो कोई छै अपने आत्मतत्त्व रो निश्चय संभाले यथा पद तद में प्रगट थयो अथापछे, पर ए कथन मात्र छै स्वरूप ज्ञानाभावात् ।

* परमेश्वर स्यूं अस्तुवर "जो हूं करिस निबेरो" नाम=हूं जिन चरमावर्त्तन करिसु, हूं तीन चरम करण करिसु तो हे परमेश्वर तू तारक स्यामो ? नाम=केमो तू स्यामो तारक ? "दिआयां तारणार्थ" ए विरुद्ध थारी स्यामो ?

तूं परमातम हूँ बहिरातम, तू साहिब हूँ चेरो।
दीनबन्धु कर महिर निजर मर, ज्ञानसार पद मेरो ॥जि०॥१॥

(१३) राग—वेलावल

कहा कह्यो हू न माने, माई मेरो कंत० ।
किती वेर कहि कहि पचि हारी,
प्रगट कह्यो कहि छाने ॥मा०॥१॥
ममम्फ़ पगो सो सिर सजनी, क्या कहिये मईया नें।
बुरी बात अपने मग्ता की, कहिये कौन बहाने ॥मा०॥२॥
हारी बार बार कहि सजनी, तब प्रगटी कहिवा नें।
माया ममता कुबुद्धि कुबरी, उनके संग हराने ॥मा ॥३॥
निज स्वरूप बालक नहिं जाने, पर प्रगति रति माने।
मर्यस्वरूप ज्ञान तैं भगिनी, अपने-पर पहिचाने ॥मा०॥४॥
तब तेरें परसग परैंगो, क्यूं एतौ दुख माने।
ज्ञानमार ते हिल मिल खेलै, सिद्ध अनंत समाने ॥मा ॥५॥

(१४) राग—वेलावल

अनुभव हम कब के संसारी।
मर जनम न अनादि काल में, शिवपुर बास हमारी ॥अ ॥१॥

भ्रम भूला इत उत डंडोल्, है चेतनता नेरी ।
या बिन सबर न अपनें पर की,परत सबेर अबेरी ।।मे०।।२।।
परमावबनादि कारण कर, पाकगी मव फेरी ।
ज्ञानसार मब दृष्टि खुलेगी, अजर अमर पद केरी ।।मे०।।३।।

(१०) राग—बेलावल

ज्ञान पीयूष पिपासी, हम तो ज्ञान ।। ।।
अनंत काल मव भ्रमण अनंतें, ए आशा भवि पासी ।।ह०।।१।।
मिथ्यात्वादि बंध कारण मिल, चेतनता जड़ मासी[१] ।
खीर नीर मप्रदेश अव्यापक, त्यों व्यापक अविनासी ।।ह०।।२।।
मव परिचित परिपाक काल मिल, चेतनता सुप्रकाशी[२] ।
ज्ञानसार आतम अमृत रस, तृपत[३] भए निरआशी ।।ह ।।३।।

टिप्पणी—
१—जड़ करनें मासी नाम-मिश्रित हुई, पर खीर नीर है ते सप्रदेशी अव्यापक है प्रदेशो मिन्न-भिन्न है। खीर रो प्रदेश मिन्न है नीर रो प्रदेश मिन्न है त्यों अविनासी ही नाम=चेतनता जड़ करनें मासी है नाम=तन्मय नें जड़ सा तमिया नें संयोग संबंध है पिण समवाय संबं ।
२—परत रै विषै [illegible] ही चेतनता सो सुप्रकाशी जड़ कर नें मि[illegible] ।
[illegible] संपूर्ण वासना थी,

(१८) राग—वेलावल

पर घर घर कर माथ रह्यो री ॥प०॥

कितो वेर गहि गहि करि छारयो,

कैसे अपनो याति कह्यो री ॥प०॥१॥

मर जनम्यो विरच्यो नहीं तप ही,

कबही न परमव सम वाधो री।

आपु माड्यो दीनो जेतें, तेतें तुमकुं वसन दयौ री ॥प०॥२॥

तू न सरीर सरीर न तेरो, सोपावें निज मान रह्यो री।

ज्ञानसार निज रूप निहारी,

अकल अमर पद अमर भयो री ॥प०॥३॥

(१९) राग—वेलावल

साधो, क्या करिये अरदासा, वे कम पूरक आसा ॥सा०॥

मानव जनम देश कुल आरिज, जनम दिया बिन खासा ॥सा०॥१॥

पंच ठकेश लिंग बिन दरशाय, रूप रंग मत्त मामा।

प्रगट पंच इन्द्री नर इन्दर[1], पूरण आयु प्रवासा ॥सा०॥२॥

पाठान्तर—१ हुनर।

याकी मंदिर बाहिर क्षीरोदधि, राजधानी चौरासा ।
शिवनगरी अभिव्याप लोक कौ, राज दियौ रिद्धरासा ॥सा०॥३॥
याके अंग रंग की संगति, अंग करता सुप्रकाशा ।
ज्ञानसार निज गुण अब चीने, हम साहिब जड़ दासा ॥सा०॥४॥

(२०) राग—रामकली

अनुभव ज्ञान नयन अब मूंदी, तब तैं भई अवधू दी ॥अ०॥
करण कषाय ममत जोगादिक, सरब विरत रति छू दी ॥अ०॥१॥
मूल निदान अनादि काल को, मोह सुभट भारी ।
भ्रम 'भूला इत उत टटोरी', है इह ही को इदो ही ॥भ्र०॥२॥
सुगुरु कृपा करि प्रवचन अंजनि, चाखि मिलाई आंखि ।
हृदय भीतर ज्ञानसार गुण, सूझे सहिज समाखे ॥अ०॥३॥

(२१) राग—रामकली

अवधू परखी बिन पर कैसो ॥अ०॥
दीपक बिन ज्यूं मंदिर न शोभै, कमल बिना सर ऐसो ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ ईदिक ।

गृह कारज घरणी अधिकारी, पाणिनीय पद गावै ।
नाम मूढ भूल नहिं कहिहु, मांगन कैसे लावै ॥म०॥२॥
सरधा कहि न्हिपै समता घर सपरिवार स मिलिपै ।
विरह तुमद ज्ञानसार ज्ञान तें, अपने आतम कलिपै ॥म०॥३॥

(२२) राग—रामकली

अवधू हम बिन जग अंधियारा, है हम तें उजियारा ॥अ०॥
पवन ज्योत अस्वविहत व्यापक, अप्रदेश अविशेषै ।
प्रतिबिंबित मूरादिक मणिमय, पुद्गल धर्म विशेषै ॥अ०॥१॥
अप्रमेय अप्रदशी पृच्छा, है नांहि है दशा ।
रूपारूपी का पृच्छायें रूप अरूप प्रवेशा ॥अ०॥२॥
रूपी द्रव्य मझोरे रूपी अवर अनादि अरूपी ।
रूपारूपी वस्तु अमार्ग, संग संग न अरूपी ॥अ०॥३॥
सत्ता भिन्न सुभावै जेनी, सरवंगे गममावें ।
ज्ञानसार जिन वचनामृत नों, परमारथ पद गावें ॥अ०॥४॥

(२३) राग—रामकली

माई मेरो आतम अति अभिमानी ।
मैं तो मन वच क्रम रस राची,
कीरपि[1] किमपि न आनी ॥मा०॥१॥

---

[1] अर्थे—१ दया

मामूपस तन सब रंग मांड्यौ, प्रीतम गति न पिछानी ।
ज्यु ज्यु हूँ हित नित प्रति चाहूँ, त्यु त्यु करत रूसानी ॥मा०॥२॥
कैसे काम निभेगो पर को, क्यु कर निसपति ठानी ।
ज्ञानसार निरधार निगम गति, पय पानी को पानी ॥मा०॥३॥

(१४) राग—रामकली

अनुभव आतम राम अयाने, सो तुम तें नहि छाने ॥अ०॥
गये अनादि काल दर पुरखी[1], खोसे तीन खजाने[2] ॥अ०॥१॥
पर परिचिति के हाथ आपनौ, पूंजी सूंपे छानै ।
घटति रकम अपाय न पूछै, खाता मेल न आनै ॥अ०॥२॥
बाकी रकम और के खाते, कोई सूं न सरूझै ।
देसावर आसामी आखी, सो तो मूल न समझै ॥अ०॥३॥
कैसे काम रहेगो इनको, रखे मको नहिं लावै ।
ज्ञानसार जो पूंजी सूंपै, तो कछु रहि जावै ॥अ०॥४॥

टिप्पणी १ हे अनुभव नाम=आत्मिक स्वरूप चिन्तवन करवां वाळा अनुभी अर्थे स्वरूप चिन्तवन-ने वाळा है। 'आत्माराम अयाने' नाम=म्हारो आत्मा अजाण है सो तुमतें नहीं छाने नाम=थांसू छाना नहीं।
२ दरपुरखी नाम=सात पीढ़ी दर।
३ खोसे तीन खजाने नाम=ज्ञान दर्शन चारित्र का।

(२५) साखी

आतम अनुभव अंग को, नवलो कोई संवाद ।
चाखे रस नहीं संचवे, आमे गति निरबाध ॥१॥

राग—सारंग रामकली

अनुभव अपनी चाल चलीजै ।
पर उपगारी बिरुद तुमारो, वाकू क्यू बिसरीजे ॥अ०॥
तुम आगम बिन हमकू कबहि न, प्रीतम मुख निरखीजे ।
आज काल आवन नहि कीजे, कैसे कर जीवीजे ॥अ०॥२॥
अब तो वेग मिलाय पिया कूं, किंचित ढील न कीजे ।
ज्ञानसार जो न बने तुम थें, तो नौ उपर दो+ दीजे ॥अ०॥३॥

(२६) राग—सारंग

अनुभव दोसन कब घर आवे ॥अ०॥
शशि मुख वचनामृत बिन कैसे, हृदय कमल विकसावे ॥अ०॥१॥
मोहनीय के लरका लरकी, हंस हंस गोद खिलावे ।
चौगति महिल कुमति रति रस गति, रमते रैन बिहावे ॥अ०॥२॥

+ ९ और २=११ होना अर्थात् भाग जाना ।

झूठी बात तुमारे आगे, कैसे कर बतलावे ।
सुमता नाम सुनत ही मनतन, आतम अति फटि आवे ।।झ ।।३।।
कहा कहे जो सुने सयानी, मोह मन न मिलावे ।
ज्ञानसार आपा पर चीने, विन वेद उठ जावे ।।झ०।।४।।

(८७) राग—सारंग

प्रीतम पतिया क्यों न पठाई ।।प्री०।।
ताही संगत अति रति राते, यातें हम विसराई ।।प्री ।।१।।
कुलटा कुमित की मोहन संगति, इन तें ताम सुहाई ।
फल किंपाक समो आसादन, परिणाम दुखदाई ।।प्री०।।२।।
अंत बिरानी सें पर न बसे, समझ सुचेतन राई ।
ज्ञानसार सुमता संयम पर, हित मिल प्रीति वधाई ।।प्री०।।३।।

(८८) राग—सारंग-वेलावल

प्रीतम पतियां कौन पठावै ।
वीर विवेक मीत अनुभौ घर, तुम बिन कबहुं न आवे ।।प्री०।।१।।
घर जो छरया परठी चाटे, पेड़ा पाडोसण खावे ।
कबहुं न सुधरो घर घरणी जो, पर घर रैन बिहावे ।।प्री ।।२।।

ए सब संदेसे लिख कागद, अनुभौ हाथ पचावै।
ज्ञानसार एव पर नावत, सौ कछु रोय बनावै ॥प्री०॥३॥

(२६) राग—सारंग

नाथ बिचारौ आप बिचारौ।
दासी सें हिल मिल रति खेलो, यामें शोभ तुमारी ॥ना०॥१॥

पर अपछर सी सुन्दर नारी, छोरी खेलत बारी।
अमल मसे कूर तज सकर, त्यों यानै मरुत मारी ॥ना०॥२॥

सपम रमणी रामी आतम, पर भगत अति रवारी।
देख देख निज घर घरणी सू, प्यार करत अपारी ॥ना०॥३॥

सुमति पठायौ अनुभौ आयौ, पर घर परठ निवारी।
सुमता घर मैं ज्ञानसार कू, न्यायो सगिय न वारी ॥ना०॥४॥

(३०) राग—सारंग

नाथ तुमारी तुमही आयौ ॥ना०॥
पर अपछर सी घरणी परहर, पर रमणी रति माचो ॥ना०॥१॥
कर पीड़न कर पीहर घर घर, मर्याई न कीनौ आयौ।
अति आग्रह परणी पर घरणी, क्यू एती अति ताचो ॥ना०॥२॥

कंत अंत घर बिन नहीं, सरसी, निहचे आप मिलावो ।
ज्ञानसार एती सुनि आए, शीतल दुख बिसरावो ॥मा०॥३॥

(११) राग—सारंग

माई मेरो कंत अत्यन्त कुभावी ॥मा०॥
पर परणित से माता डोरत, डोरत निज तैं तावी ॥मा०॥१॥
सुमति विरचि महा गुण परखम, बोलत अवली बावी ।
माया ममता अविरति कमने, करिय कुमति पन्नगावी ॥मा०॥२॥
याह मेरे बैरी ज्याह, मिलत आपकी बावी¹
प्रापीं प्रीति भचाऊं कैसें, ज्ञानसार रस दावी ॥दा०॥३॥

(१२) राग—सारंग

अनुभव पार्मे सुमरी हांमी ॥अ०॥
मोल अनीत रीति नहीं इनकी, पावो कहा स्यावासी ॥अ ॥१॥
घर घर घर घर भटकत डोरत, कैसी पदवी पासी ।
कौन पिता कुम किनको मैय्या, सग रमै सा दासी ॥अ०॥२॥

पाठान्तर—१ स्वामी

कर उपाय मिथ्या संग टारो, नहीं भव भव भटकासी ।
"ज्ञानसार" मिल मिल समुझावे,
सखियें समझे जासी ॥अ०॥३॥

(४३) राग—सारंग

कहा कहियें हो आप सयान तें ॥क०॥
अंग दुखाय कह्यो नहीं आवे, प्यारी अपनी यांग तें ॥क०॥१॥
अन्योक्ति दृष्टान्त सुनावे, कोई घाट बयानें तें ।
एते पर भी मूर्ख न बूझै, प्रगट देख अखियान तें ॥क०॥२॥
उपम सिद्ध निदान सरसबर, सुमति कहै सखियान तें ।
आप मिलो अब ज्ञानसार तें, कौन गरज सखियान तें ॥क०॥३॥

(४४) राग—सारंग

प्रभु दीनदयाल दया करिये ।
मैं हूं अधम तुम अधम उधारण,
अपने विरुद कूं निरवहिये ॥प्र०॥१॥
अधम उधार अधमउधारण, विरुद गह्यो चित चितइये ।
मोहि उधार प्रतच्छ प्रमाणो, विरुद मनुज लोगे दरये ॥प्र०॥२॥

तो भी तारक अधम न मोसो, उधरन कस कर्यूंना करिये ।
ज्ञानसार पद राम विराजै, सहिजैं भवसागर तरिये ।प्र०।।२।।

(१५) राग—आसा रामगिरी

अवधू ए जगका आकारा, कोई करता न करणेहारा ।।अ ।।
पृथिवी पाणी पवन अकाशा, देखत होत अचंभा ।
इत्यादिक आखेप परगट, दीसत कोय न थंभा ।।अ ।।१।।
या भरमें भूले जगवासी, करता कारज गावै ।
करम रहित जग करता कारक कैसे कर समावै ।।अ०।।२।।
करतु अकरतु अन्यथा करसी, समरथ साहिब माया ।
घट पट घटनायें पुन परची, या रच जग निरमाया ।।अ०।।३।।
करयो न कोई करैय न करसी, यह अनादि सुभावै ।
विनस्यो कद ही न विनसे ए जग, जिन आगम जिन गावै ।।अ०।।४।।
अगन शिखा पकज नहीं प्रगटे, शशिक उन्ड नहीं सींगा ।
आकासे न हुवे फुलवाड़ी, कमों माया अ गा ।।अ ।।५।।
कृत विनास अकृत अविनासी, शब्द प्रमाण प्रमाणो ।
ए सघस तुमरी सहयाये, शंकर रूपक आणो ।।अ०।।६।।
अन्त आद बिन लोक न कहिस्यौ, भय अहिरण संडासी ।
प्रथम पछे धरना नहिं संभव, समकालै ही पडासी ।।अ०।।७।।

(४७) राग—आसा

अवधू आतम तत्त्व गुपित मूके, आपही आप सुरूके ॥ अ०॥

आतम देव धरम गुरु आतम, आतम सिव सिव शिक्षा ।
आतम शिवपद करता करणी, आतम सत्व परीक्षा ॥अ०॥१॥

आतम गुण थानक आरोहण, क्षायिक भाव वितरणी ।
आतम केवल दसन नाणी, अचल अमर पद धरणी ॥अ०॥२॥

अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधु सकल वरती ।
आतम मरो ज्ञानसार पद, अव्याबाध अनंती ॥अ०॥३॥

(४८) राग—आसा

अवधू मा कृग के अगवासी, आस्या धार उदासी ॥अ ॥

वसधि उसंधे गिरोध न संगे, सिध बोलम में पैसे ।
जो निराशी सुख न उदासी, दिल चाहे उठ बैसे ॥अ०॥१॥

वैवेहक बिन जो निराशी, सोई विबंधन मासी ।
याकी आस्या बिन आस्या नो, कीस कौन उगासी ॥अ ॥२॥

कामादिक सब याकी संतति, पर परिणत की मासी[1] ।
याते योगी सोध सरोगी, जो आस्या नहीं पासी ॥अ०॥३॥

अखरंभ मधि अनहद धुनि है, सहिजे आप प्रकासी ।
आतम परमातमा अनुसर, ज्ञानसार पद पासी ॥अ०॥४॥

१ मासी

(३९) राग—आसावरी

अवधू आतम मरम भुलाना, याते आतम तत न पिछाना ॥अ०॥
अलख तत में भ्रम तम नाहीं, निज स्वरूप उजियारा।
अनम मरन गति आगति नाहीं, शिवपद चिर अविकारा[1] ॥अ०॥१॥
बिद नहिं राग भोग नहिं भोगा, अचल अनादि अगाधा।
साधा अभिधा ज्ञानसार पद, अचल अव्याबाधा ॥अ०॥२॥

(४०) राग—आसा

अवधू सुमति सुहागिनी जागी, कुमति दुहागिन भागी।
अविसंवाद पद फल अन्वित, जिन आगम अनुयाई।
एम शब्द अरथ का प्रापति, पायो सगति पाई ॥१॥
विष प्रतिपच फरी आतम था, रूप द्रव्य अविरोधी।
एसो आतम परम गहन निज, प्रदीपा गहन विशेषो ॥२॥
न गहना मरम भया उजियारा, सद्गुरु परम विचारा।
ज्ञानसार पद निरख भीना, समगम बन व्यापारा ॥३॥

(४१) राग—आसा

अवधू आतम रूप प्रकाशा, भरम रहा नहीं माशा ॥अ०॥
नहीं हम इन्द्री मन वच तन वस, नहिं हम साम उजासा ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ वास सुखारा

क्रोध मान माया नहीं लोभा, नहीं हम जग की आसा ।
नहीं हम रूपी नहीं भव कूपी, नहीं हम हरख उदासा ॥अ०॥२॥
बध मोष नहिं हमरे कबही, नहीं उतपात विनाशा ।
शुद्ध सरूपी हम सब कालै, ज्ञानसार पद वासा ॥अ०॥३॥

(४२) राग—आसा

अवधू आतम धरम सुभावै, इम संसार न आवै ॥अ०॥
यही भरम हम भय ससारा, इम संसार समाय ।
उदित सुभाव भानु आतम घर, भ्रम तप तें मरमाय ॥अ०॥१॥
पर घट घटना घर पर न घटै, तीनू काल प्रमाय ।
असानधारक थी सीतातप, घट में कब न घटावै ॥अ०॥२॥
तैसे आप परम थी आतम, कोई काल न आवै ।
निभरम सदा काल तुम मांहि, चेतन परम रमावै ॥अ०॥३॥
जल तरंग थी अनघत्त चंचल, छाया धूप लखावै ।
ज्ञानसार पद मय निस्चै नय, सिद्ध अनादि सुभावै ॥अ०॥४॥

(४३) राग—आसा

अवधू छिन मत जग उपगारी, या हम निहचै धारी ॥अ०॥
सरब मई सरबंगि मानै, सरबा भिन्न सुभावै ।
भिन्न भिन्न पर मत गम मारखै, मत ममत्त हर नावै ॥अ०॥१॥

जननी जाया जाया जननी, मर पिय थाये माई।
माता वनिता वनिता माता, पितु माता पुन भाई ॥अ०॥२॥
दुख दोहग दुरगतें इकलो, जनमें फिर मर जाई।
बंध मोग में आप इकलो, क्यू समझै नहिं भाई ॥अ०॥३॥
शुद्ध अनादि रूप तू तो थे, जड में तू न समाई।
समवाई गुन को तुम्ह समझै, ज्ञानसार पद राई ॥अ०॥४॥

(४४) राग—आसावरी

मेरा आतम अविधि अयाना, यातैं आतम हित नहिं जाना ॥
मेरा आतम अविधि अयाना, यातैं आतम हित नहिं जाना।
काम राग अहित अति छारा, नद्यादिक लघु दारा।
मन वच काय करण मिन रोथे, आश्रव द्वार उघारा ॥मे०॥१॥
टन आश्रव त करम रूप जल, सरवर जीव भरावा।
यातैं चौगति मांहि ममाया, भ्रमहू अत न आया ॥मे०॥२॥
अब जिन धरम क शरणा आया, आतम रूप न पाया।
ज्ञानसार गुन तरो चीने ता, गति आगति नहीं आया ॥म०॥३॥

(४६) राग—आसा

साधो भाई ऐसा योग कमाया, यातैं मुग्ध लोक भरमाया ॥सा०॥
बाह्य क्रिया दरसाई साची, अभ्यंतर तैं कोरा।
मासाहस परिकर फिर सोचित, रे रे आतम चोरा ॥सा०॥१॥
संयम पायो पुन संयोगैं, पाल्यौ नहीं तैं पापी।
फिर ऐसो नहिं दाव बणैगो, चितवन चित्त अव्यापी ॥सा०॥२॥
क्या कहियें कछु कह्यो हू न मानै, रे रे आतम अंधा।
ज्ञानसार निज रूप निहारैं, निहचैं है निर्ग्रंथा ॥सा०॥३॥

(४७) राग—आसा

साधो भाई आतम भाव परखा, सो हम निहचै लेखा ॥सा०॥
नहीं व्यवहार संसार तैं कबही, नहीं हमरे कब लेखा।
नहीं इनसें लाणो नहिं बाकी, खाता खताई देख्या ॥सा०॥१॥
समतायें आतम समभाई, तीनूं काल विशेखा।
मिट गया भरम भया उजियारा, ज्ञानसार पद पेखा ॥सा०॥२॥

(४८) राग—आसा

साधो भाई आतम खेल अखेला, सो हम खेल न खेला ॥सा०॥
बंध मोक्ष सुर दुरग की घटना, आतम खेल न घटना।

सिद्ध सनातन है सब काले, उपत विनाश अपन्ना ॥सा०॥१॥
नाहीं पुरुष नपुंसक नारी, शब्द रूप नहीं फ़रसा ।
नहीं रस गंध नहीं बल आयु, नहीं कोऊ साम उमासा ॥सा०॥२॥
नहीं चन्द्र सूर नहीं तारा, नहिं उसमें नहीं बैठ ।
नाहीं अलख अलख की माला, नहीं समाधि में पैठे ॥सा०॥३॥
ए निरपेख आतम को खेला, इनमें कछू न आए ।
हम विवहारी आतम हमरे, भ्रम तम तें भरमाए ॥सा०॥४॥
गया भरम भया उजियारा, लोकालोक प्रकाशा ।
ज्ञानसार पद निरूपम चीना, उनका यही तमाशा ॥सा०॥५॥

(४६) राग आसा

साधो भाई जग करता कहि माया, साई हम निरमाया ।
मिथ्या संग करो अब तब ही, माया पुत्री जाया ।
जनमत पर पर परना परबी, याह जग उपजाया ॥सा०॥१॥
स्वाभाविक याको परिवारा, जग व्यापक अपारा ।
उपति खपति थिति याकी सतति, सोई जग व्यौहारा ॥सा०॥२॥
याहू भिन्न कहे करता नें, माया जिन निपजाया ।
उना माया सू जगत उपाया, ए झूठी अपवाण ॥सा०॥३॥

पाठान्तर—१ आ

करम रहित पुन माया कारक, एह असमंथ थाता ।
धर्म बिना इकेली अगनी, नहीं धूम उपपाता ॥सा०॥४॥
कर्तु अकर्तु अन्यथा करणे, हम ही हैं सामर्थी ।
पर परिणति से भिन्न भए अब, किंचित कर असमर्थी ॥सा०॥५॥
अचल अगाध अबाधित अव्यय, अरुज अनादि सुभावे ।
एस आनंदघन पद में हम, जीत निशान घुरावे ॥सा०॥६॥

(५०) राग—आसा

साधो भाई अब हम भए निरासी, सब तैं आसा दासी । सा०॥
राव रंक धन निरधन पुरुष, सब ही इमर सरिसा ।
निर आदर आदर गमनागमन, नहीं कोई हरख उदासा ॥सा०॥१॥
राजा काऊ पाँव मो फरसे, तोहू तनक न राजी ।
दुरजन ओ कोऊ तरजे, तो आतम न विराजी ॥सा०॥२॥
जरा जनम मरण वस काया, पात नहीं भरोसा ।
बिन प्रतीत का आसा धारे, छोड़ दिया विष तोसा ॥सा०॥३॥
अब बेफिकर खुशी दिल सब दिन, बरमाह मनमस्ती ।
पार्ट उदे अस्त नहीं पूछे, क्या सुना क्या बस्ती ॥सा०॥४॥
भूख पियासा शीत उष्णता, राखे तनु न समावे ।

पाठान्तर—१ अनादि २ नहिं सबकी ३ सबै।

सरस निरस सामासामे पुन', हरख शोक मन नावे ॥सा०॥५॥
एते पर आतम अनुभौ गति, मन समाधि नहीं आवै ।
मन समाधि बिनु ज्ञानसार पद, कैसे हू नहीं पावै ॥सा०॥६॥

(२१) राग—आसा

संतो घर में ढाव लगाई, कौन बुझावे भाई ॥सं०॥
घर को कहै मेरो घर नाहीं, परकीया कहै मेरा ।
मेरो मेरो कर कर मारयो, करयो जगत को चेरो ॥स०॥१॥
सुरनर पण्डित देखे सब ही, कौन बुझावे भाई ।
मगड़ै वाला आप ही समझै, वाघ ढाइ उन मांहि ॥सं०॥२॥
मिट गया मेरा हुआ सुरझेरा, आध्यातम पद चीना ।
कवल कमला रम सब' सगे, ज्ञानसार पद लीना ॥स ॥३॥

(२२) राग—आसा

साधो भाई निहचै खेल अलेखा, सा हम निहचै खेला ।
ना हमार कुल ग्रात न पांता, ए हमरा आचारा ।
मदिरा मांस विवर्जित जो कुल, उन घर में पैसारा ॥सा०॥१॥
वर्जित वस्तु बिना जो रबै, सो सब ही हम खावैं ।
उन्हीं का पास अकरापित, धोवण मल सब पीवैं ॥सा ॥२॥

पाठान्तर—१ पिन २ बस ।

टिप्पणी—आत्मानि स्वांच इति अभ्यात्मी ।

पड़िक्कमणा पार्चु नहीं स्थापक, सामायिक ले वैसैं ।
माधू नहीं जैन के मिन्दे, जिन घर बिन नहीं पैस ॥सा०॥३॥
भावक साधू नहीं को साधवी, नहीं हमरे श्रावकणी ।
सधी भद्रा जिन मम्मन्थी, सो गुरु सोई गुरणी ॥सा०॥४॥
नहीं हमरें कोई गच्छ विचारा, गच्छवासी नहीं निंदैं ।
गच्छवास रतनागर सागर, इनकूं अहनिशि वंदैं ॥सा०॥५॥
थापक उत्थापक जिनवादी, इनसे रीझ न भीजें ।
न मिलणां न रिंदन वंदन, न हित अहित न चीज ॥सा०॥६॥
न हमरो इनसे वादस्थल, चरचा में नहिं लीजें ।
किरिया रुचि क्रिया ना रागी, हम किरिया न पतीजें ॥सा०॥७॥
किरिया बड़ क पान समाना, स्वतारक जिन माखी ।
सोई अवंचक वंचक सो हीं, चौगति कारण दाखी ॥सा०॥८॥
पै किरिया कारक कूं देखें, आतम अति ही हींसै ।
पंचम काले जैन उद्दीपन, एह अंग थी दीसै ॥सा०॥९॥
सब गच्छनायक नायक मेरे, हम हैं सबके दासा ।
पै आलाप संलाप न किणसूं, न कोई हरख उदासा ॥सा०॥१०॥
पड़िकमणा पोसा न करावै, करतां देख्यां राजी ।
पच्चखाणे व्याख्यान न आग्रह, आग्रह थी नवि राजी ॥सा०॥११॥

जो हमरी कोऊ करै निन्दा, किंचित अमरम आवै ।
फिर मन में जग नीति विचारैं, तब अतिहि पछितावैं ॥सा०॥१२॥
क्रोधी मानी मायी लोभी, रागी द्वेषी पोषी ।
साधुपणा जो देश न लेश न, अविवेकी अपशोची ॥सा०॥१३॥
ए हमरी हमचर्या माली, पै इनमें इक सारा ।
जो हम ज्ञानसार गुरु चीनै, तो हूं भवदधि पारा ॥सा०॥१४॥

(२३) राग—शुद्ध वसन्त

क्यूं आज अजानक आए मोर,
कर मंदिर निरख लखना की ओर ।
परमाद रूप अंधियार घोर, सुसुमात उदै रवि के सजोर ॥१॥
अब शुद्ध रूप गहिके अनूप, वरियै कवस कमला स्वरूप ।
तब ज्ञानसार पद शुभ सरूप, पायो आतम परमात्म रूप ॥२॥

(२४) राग—शुद्ध वसन्त

क्यु आज चतुर चर चित चटोर, इन प्रीत पच नहिं चलत जोर ।
किन कहे निहोरे हेत मांहि, न चले हित प्रीतम आप चाहि ॥१॥
इक हाथे तारी नहिं बजंत, यानत क्यु खैंचत अंत संत ।
परघी बिन घर की काम राज, को करिहै बिह पतो समाज ॥२॥
पर घर में क्या काढे सवाद, जिनमें पतौ लोकापवाद ।
यातैं अपने घर चाल कंत, मिहि ज्ञानसार खेले वसंत ॥३॥

मगे न तरी गरज पिया के, राते चित विस रंग ।
अपनों आप मरूप भूलके, जोर रह अङ मंग ॥म०॥२॥
मगे पिया तर चश नाहीं, खोलों कर इम ओर ।
प्रथम करनला प्रीतम आय, अब जाय मिलों करजोर ॥म०॥४॥
अनुभा आय पिया ममझाय, धर प्याय घन रंग ।
मुगति महिल मिल आनमार म् , मेलें धमाल उमग ॥म०॥५॥

(५७) राग—पूरबी

छबी छबि बदन निहार निहार ।
प्रोषित पति अगमागम कीनीं, विसरी विगत विहार ॥छ०॥१॥
गय अनादि काल में पसो, दीठो नहींय दीदार ।
निरुपम निहार निहार निहारत, रंजिय रूप रिझवार ॥छ०॥२॥
अंतर मक सुरत अंतर, प्यार करी अपार ।
लीनें आनमार पद भीतर, चेतनता मरतार ॥छ०॥३॥

(५८) रागणी—पद

मामरि आज रंग बधाई म्हारे० ॥
गीर गारव प्रीतम आय, धुनि भरण मनु पाईजी,[1] म्हारे ॥१॥
धममम धलीय मिली मंयम पर,
निरत हरग हरगाई जी, म्हारे० ॥

[1] धुनि भरनम सुन पाई ।

माया ममता कुबुद्धि कूबरी, गही बदन विलखाई की, म्हांरै ॥७॥
चेतनता कवल शिव कमला, सुमति सुचेतन राई की, म्हांरै ॥
ज्ञानसार प्र रम बस हिलमिल, छीनै फंट लगाइ की, म्हांरै ॥३॥

(५५) राग—मारू

पिया बिन गरी (य) दुहेली हो, पि०॥
देर दिरानी सास जिठानी, मन के रानी चली हो ॥पि०१॥
पिय संगति अति ब्याप्यौ जो सुख, सो सुख इन दुख भूली हो।
तलफू बिन पानी ज्यूं मछली, विरहैं ग्रहक गहेली हो ॥पि २॥
टेर टेर के घर कहत हैं, बिसरन रहणो इकेली हो।
न मामर न पीहर आदर, निर आदर मलवली हो ॥पि०३॥
सखी अमारी बिरहवा नारी, मरणा कहैय सहेली हो।
ज्ञानसार प्र मिलिय यूं ज्यूं, फून सुवास चंबेली हो ॥पि०४॥

(६) रागणी—खमकाम।

पिया मोक्ष काहे न बाले, दे दे साबै पीठ ॥पि०॥
मीतन मरा पिया बिरमाये, नेक न जोरै दीठ ॥पि०॥१॥

का जाने गति अवर गति की, चाचूं कहा पसीठ ।
कीला कहिकहि पिय समझावूं, निठुर निसव है पीठ ॥पि०॥२॥
वीर विवेक पिया समझाव ता पर अनुभौ ईठ ।
सखा सुमता ज्ञानसार कूं, आय मनावै नीठ ॥पि०॥३॥

(५१) राग - धन्यासी गुजराती

प्यार नाह घर बिन, योंही जीवन जाय ॥ प्यार ०॥
पिय बिन या वय पीहर वासौ, कहि सखि कम सुहाय ॥१॥
हा हा कर सखि पइयां परत हू, रूठड़ौ नाह मनाय ।
घर मन्दिर सुंदर तनु भूसन, मात पिता न सुहाय ॥२॥
इक इक पलक कल्प सौ बीतत, नीसासैं निप जाय ।
ज्ञानसार पिय आन मिलै घर, तौ सब दुख मिट जाय ॥३॥

(५०) राग—धन्यासी

पर क घर बिन मेरो कैसो घर घर मांहि ॥प०॥
मैं पीहर पाया परदसी, सरफा मर नांहि ॥प०॥१॥
कुल कौहू नदिसा नहि कबहू, जावन निदवन वांहि ।
एसें पर कू पूची लागी, जोगन हूै निकसांहि ॥प०॥२॥
वार विवक कहैं सुण मैथी, एतौ दुख क्यूं कराहि ।
आगम आवन कीना मरता नैं, ज्ञानसार गल मांहि ॥प०॥३॥

(९३) राग—सोरठ

रहे तुम आज क्युही वदन दुराय ॥र०॥

श्रिय जीवन सखियन में प्यारी, हारी हा हा खाय ॥र०॥१॥

अविरति घू घट पट ऊघारी, अनुभव मुख निरखाय।

एते पर भी मान न मनें, मूर्खे अ्याज बढ़ाय ॥र ॥२॥

भव परिक्षित परिपाक हुते पर, आई धाई माय।

अति आग्रह सब ज्ञानसार पू, लीने कंठ लगाय ॥र०॥३॥

(९४) राग—सोरठ

रैन बिहानी र रसिया, जाग निंबद रा वीर के रैन० ॥

मिट्यो विभाव तिमिर अंधियारो, स्व सुभाव उगानी र रसिया ॥१॥

तुम कुल इक ऊआगरवस्था, हार गयो है बिरानी।

यातें हूं पक्खपूण उठाव, क्यु सुध बुध बिसरानी र रसिया ॥२॥

अब अपने घर आप पधारो, अन्त बिगानी बिरानी।

ज्ञानसार स्व कुमति दुहागिन, भाग गई विलखानी र रसिया ॥३॥

---

१ हे आत्माराम ! थारे बड़े गुणठाणे रो तौ अन्तमुहुर्त पूरी थयो सो ना तू ममारी सौ सातमे गुणठाणे री छाया प्रवर्त्ती तद्रूप जागवो अर्थ अप्रमादीत्वात् है विचार ! शुद्ध चेतना तेहना माई, भवरव विभावरूप तिमिर अन्धकार मिट्या सूर्य रूप स्वभाव उदै थयो।

(६५) राग—सोरठ

वारो नणदल बीर, कहूँ कांसू ॥ वारो० ॥

मिथ्या मतिका पू भी खाई, बयम सनम फकीर ॥१॥

गई गई सो मलिय रहा सो, घर घर मनको पीर।

वालू बीर बरू बीरम घर, विरहे सनम शरीर ॥२॥

माल लाल बिन्दी नहीं भावै, आभूषण नहीं चीर।

ज्ञानसार वालो[१] आन मिलै घर, तौन रहै काई पीर ॥३॥

(६६) राग—सोरठ। चाल, सांवरे रंग राची

लालना ललचावै, बाई मौने ॥लालना०॥

छिण में रूसण तूसण छिण में, छिण में रोय हँसावै ॥वा०॥१॥

अन्तर बदन कोय न पूछै, प्रगट कही हू न आवै।

सोवै पूर उढाय इसै घर, अंगल आप बसावै ॥बा०॥२॥

बीर विवेक संग ले आय, सुमता कंठ लगावै।

ज्ञानसार प्यारी मृदु मुसकत, परमारथ पद पावै ॥बा०॥३॥

(६७) राग—सोरठ

मली हूँ इकली हेली, लगी तलावेली।

छिम बीवन लोवन सग खेलें, यांत खरिय दुहेली ॥१॥

मरु न परत छिन भीतर अंगन, तलफ अति अलबेली।

छिण मोपू छिण बैठ उठ, आयो सनम गहेली ॥२॥

पाठान्तर—१ इरभर २ वाल्हो (=वल्लभ)

इते अथानक प्रीतम आये, सेरी अनुभव सेली।
ज्ञानसार स्. हिलमिल खेले, सरधा सुमति महेला ॥३॥

(६८) राग—सोरठ

मरखा तो आग्या माया अजु न पुम्हाया।
बाहिर अभ्यंतर सग सग यू, मान् जोग कमाया ॥म ॥१॥
निपट निकामी निपट निरागी, निरमाही निरमाया।
घ्यांनी आतमग्यांनी ज्ञांनी, एमा रूप दिखाया ॥म०॥२॥
मान छोड मद छक्या छोड़ी, छोड़ी घर की माया।
काया ममत्व्या[1] सब छोड़ी, तउम न छूटी माया ॥म ॥३॥
अगमें इक रवताम्बर अवधी, सरव शास्त्र में गाया।
ज्ञानसार के सबसें पवती, माया पोती आया ॥म०॥४॥

(६९) राग—सोरठ होली

अरी मैं, कैसे मनावें री, मेरा पिया पर संग रमत है ॥ कैस०
सौतन सग रैन रंग रमतां, मुहि न पुछावै री ॥म०॥१॥
हाहा कर मत्रि पायां परत हूँ, पीय मिलावै री । एरी कोई०
विरहानल अति दुसह पिया बिन, कौन पुझावै री ॥म०॥२॥
सुमति संग ले अनुभौ आये, सब परठ सुनावै री॥ अरी सब०
ज्ञानसार प्यारी दो हिलमिल, सोरठ गावै री ॥मे ॥३॥

पाठान्तर—१ छुभपा।

(७०) राग—होरी पूरिया, सोरठ मिश्रित

घर घर खेलत मेरो पिया, कछु बरजो नहीं अपने भैया ॥घ०॥
अकोरिन[2] के संग नचत है, तत तत ताथेइ ताथइया ।
चंग बजावै गाली गावै, कौन बनाव बन्यौ दइया ॥घ०॥१॥
सर समवासी चमर धुदारी, श्याम बदन सिर पर धरिया ।
सिथ रंगरी ऊठी पग गो[3], लाज मरत हूं मैं मैया ॥घ०॥२॥
इह सब चेष्टा पर परिणति की, निज घर में रमिहैं मथिया ।
आतम ग्रीश गुरु रूप खेलै, ज्ञानसार जिन में मिलिया ॥घ०॥३॥

(७१) राग—कानड़ो

यूं ही जनम गमाया, भैया यूं ही जनम गमायाँ ।
संयम करणी सुपन न करणी, साधु नाम धरायाँ ॥भै०॥१॥
मुख मुनि करणी पेट भरणी, ऐसा जोग कमायाँ ।
लगो गृह पर कमठी नी पर, इन्द्रिय गाय चरायाँ ॥भै०॥२॥
मूढ मूडाय माडरा ना परि, जिन मति मथन सुझायाँ ।
भेष कमायो भेद न पायो, मन तुरंग वश नाया ॥भै०॥३॥
मन साधे बिन संयम करणा, मानू तुम फरमायाँ ।
ज्ञानसार न नाम धरायाँ, ज्ञान का मरम न पायाँ ॥भै०॥४॥

पाठान्तर—१ नहीं २ झकोरिन ३ पगरी ।

(७१) राग—तोड़ी

अब हम तुम इक ज्योति जुरे, तब न्यून मोति नहीं मेरी ॥
परमावर्त्तन परम करन मिल, पाकेगी मत मेरी ॥प्रभु पाकेगी०
मिथ्या दोष अनादि काल घट, मिट भ्रम तम अंधेरी ॥प्र०॥१॥
सत्ता द्रव्य अनन्य सुमाहै, चेतनता न अनेरी ॥प्रभु चे०
काल लब्धि नहीं ख्यामें ढोला, तोसूं बीच घनेरी ॥प्र०॥२॥
तब ही शुद्ध सरूप गहेंगे, शैली अनुभव तेरी । प्रभु शैली०
पर परिचित तज ज्ञानसार रा, मत आतम पद केरी ॥प्र०॥३॥

(७२) राग—काफी (ताल—गोठीदा वार वधाव)

(अब) तेरो दाव बण्यो है, गाफिल क्यों मतिमान ।
आरिज देश उत्तम ध्रम संगति, पाई पुण्य प्रमान ।तै ॥१॥
क्रोध लोभ मद माया ममता, मिथ्या अरु अभिमान ।
गत दिवस मन वच तन रातो, चेतन चेत सयान ।ते ॥२॥
मत मत ताक तक्यो ज्यूं मिगल, परमत गति अग्यान ।
उखाडे तरे कदा कारन, जिन मत रहिम पिछान ।ते०॥३॥
मध्य वस्तु जिम द्व सब में, सरवंगी सम मान ।
इक इक देशी सब मत आखै, सब देशी जिन वान ।ते ॥४॥
सरवंगी सम जिन मत मावै, पावै आतम ज्ञान ।
ज्ञानसार जिन मत रति आनै, पावै पद निरवान ।ते ॥५॥

जिनमत धारक अवस्था गीत

(७४) राग—पंचम

आप मतिये मला मूढ मतिये मला ॥टेर॥

मंद मतिये दुसम काल नें जैनिये,
जैन मत चालणो आय कीनो।
परभव बीह ना बीह नें अवगिणी,
निरभय ममत रस अमृत पीनो ॥आ०॥१॥

एक कहे धापना जिन भणी पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ आणो।
जानु परमाण थल जल कुसुम आणिनें,
सुर रचे वृष्टि ते म्यु न जाणो ॥आ०॥२॥

भेद कहि विविध विध विंब जिन पूजतां,
जिन भगता न आरम्भ दाखें।
नवा आगम निपमाय निज कर करि,
फूल चूंट प्रगट पाठ माग ॥आ०॥३॥

एक कहि धरम नू मरम दाखी दया,
सहन् तत्त्व स गम माणो।
नीर दयातो सचायो न अपथ्य पली,
मर गयां लेश हिंसा न जाणी ॥आ०॥४॥

एक कहि अम मनराज मीठो लियें,
वेम करिय न आरम्भ गिणियें ।
इम गणाहि ज मन प्रकृति वधे,
ते सव्वं सिद्धता सम मणियें ॥आ०॥५॥

केई कहि प्रथम नय कथन विवहार नू,
पारणामिक पक्ष कय मानूँ ।
कई कहै वचन नू माल गृप्यू सवे,
निश्चयें सिद्धता जैन दाखे ॥आ०॥६॥

विविध किरिया करी विविध ससार फल,
फल अनेकान्त के गति समृद्धि ।
गति समृद्धिपर्यं मन भ्रमण नवि न्हां,
तह थी सी थई आत्म बुद्धि ॥आ०॥७॥

नहीं निश्चें नयें नहीं विवहार थी,
है नहीं है यथा वस्तु रूपें ।
अस्त मरयं कुम्भ प्रतिबिंब सत्ता रही,
घर सत्ता रही रवि सरूपें ॥आ०॥८॥

जिन मत ममत सत्ता न पामीजियें,
ममत सत्ता रही मत ममत ।

जिनमत धारक व्यवस्था गीत

[बालावबोध]

राग—पंचम

मंदमतिए दुसम काल नें जोरिए,
जैनमत चालणी प्राय कीनो।
परमब बीह ना बीह न अवगिणी,
निरमयैं ममत रस अमृत पीनौ ॥मंद॥१॥

अर्थ —अल्प बुद्धिवाले पंचम आरा नें जैन दरसनिए जैनमत नाम=जैन दर्शन मतें चालणी प्राय नाम जैन दर्शन सत्य मध्यमिथ्यार्थ नें *अल्पबुद्धिवाले अते जैन दर्शनिए भिन्न भिन्न एक मताश्रित* कल्पन रूप छेद करते अते जैन दर्शन मतें चालणी प्राय नाम=जिम चालणी में बहु छेद होय तिम जिनमत में चालणी प्राय कीनौ। किसे कारण स्यौ ? 'परमब बीह ना नाम=परमेश्वर भाषित सिद्धान्त की एक अक्षर अमे उत्थापीसु तो संसार अपार अमनें अनन्तो परिभ्रमण करवू पडस्ये, बीह नें' नाम=तो डरने अवगिणी नाम=अवगणी अते अवगिणना करीनें नाम=न विचारी ने निरमयें नाम=निरभय थए अते कस्मात् कारणात् अज्ञत्वात्, ममत रस नाम=ममत्व रूप जहर रस में अमृत नाम अमृत समान मानी नें पीनौ नाम=पान कीधो छे जिम पक्षी कंठ सूधी ममत्व जहर रूप रस भर्यो छे जिणे पक्षी ममत्व भई भई रहावें।

एक कहि थापना बिंब जिन पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ दाखो ।
जानु परिमाण थल जल कुसुम आंखने,
सुर रचे वृष्टि ते स्यु न भांखो ॥सं०॥२॥

अर्थ—एक कहितां नाम=एके केचित एवं वदंति, केईक पक्षांत वादी मतममत्वी सिद्धान्त नू एहवू वचन 'न रमिज्जा न बोहज्जा' ए वचन बहुरी ने स्याम रक्त वस्त्र धारया छे जिणे ते कहे थापना बिंब जिन' नाम=थापना निक्षेप थापन कर्यां जे 'जिन बिंब' नाम= जिन प्रतिमा प्रते पूजतां' नाम=पूजा करतां थकां फूल धूपादि' नाम= फूल फल धूप दीप नवधादि आरंभ दांखो' नाम=आरंभदोष दांखो, एहवू वचन स्याम वस्त्रधारी कहे आहो मज्यो बिना आरंभे पूजा नो अभाव ने जिहां आरंभ तिहां धर्म नो अभाव परमेश्वरे वखांणयो छे 'आरंमे नत्थि दया' 'दया मूले धम्मे पन्नते' तेथी पूजा न करवी एहवू सुणवे एकंत पूजा पछी आश्रांतरी वाद् छटा-छोट करतो बोल्यो — जानु परिमाण थल जल कुसुम आंखान' नाम=परमेश्वरे विद्यमान छते गोडा प्रमाणे थल जल सम्बन्धी फूल स्यावीने सुर रचे वृष्टि नाम=देवता भया करे 'ते स्यू न भांखो' नाम=मबी भाखता स्यु ? तिहां को पुप्पादि पूजा में परमेश्वर हिंसा भाखता तो मा न कहिता पर पूजा सावधकारी जाणीने दया मा साठ नाम तेमां पूजा दया ना नाम में गिणी फिरी पंचमांगे 'हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ' एहवू पाठ पोते न कहता ।

तेह कहि विविध विध बिंब जिन पूजवा,

जिन अनंता न आरंभ दाखै।

नवा आराम निपजाय निज कर करी,

फूल चूंटै प्रगट पाठ भाखै ॥र्म ॥२॥

अर्थ—'तेह कहे' नाम=तत्पश्चात पुनः परामर्शक ते अज्ञानी फिरी वस्तुत कहयू कहे विविध विधि' नाम=अन्य प्रकारे जिन पूजन पूजवां जिन प्रतिमा नो पूजा करवां 'जिन अनंता न आरंभ दाखे' अनंते काले अनंती चोवीसी मा अनंता तीर्थंकर तेहमां एकेही परमेश्वरे कहयू न कहयु (जे) अमारी पूजा में तुमने आरंभ मारयो ने अनंते ही परमेश्वरे कहयू कथ्य 'न आरंभ दाखै पूजा निरारंभिका' फिरी ते कहे कहयू प्रगट पाठ छे जिन पूजा नाहिम निमित्ते श्रावक नवा आराम (निपजाव) करावे पछी चार श्रावक मालमे आई फूलो ना फूलो ऊपर वस्त्र मा प्कार पछा पछी में ते फूल में पाणी छांटवा थी पछी चार मा फूल फूलपोषा किरी-आप पछी सोना ना अवला आंगुलियो में भारा ते फूलो में चूंटै। टोडर करवा कारणे पछी चूंटी टोडर करी आरतो थी प्रथम कंठे पहरावे। प्रभाते परधान बेला फूल्या फूल चीखै त कारणे पछी उतरै-चौथे त अठावीस २८ पर पकेक डेहरे कटोरीकी बीबीकी में देखी ने तेहमें कोइ पूछे कहयू जिहां अथम छै तईये तेमे कहे "प्रगट पाठ भाखै" सिद्धान्त में प्रगट पाठ छै ते पैताळीस में दीस तू नथी। कोइ ए पाठ छे समासरण मे जानू प्रमाणे विशेषता

पाठान्तर—१ आरम

तेहनी प्रकृति प्रमाणे प्रवर्त्तते छते सरल प्रसन्न होय। ए सरल प्रकृति वाला नो कथन छे पर ए मन तो ओड ही की चंचल अनादि ही को एक है तथी एहनी इत्यानुसार से प्रवतवो तेम योग्य छ। कथ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" एथीज आनन्दघन आत्मार्थीयें पिण इमज कह्यु :—

> मागम आगमधर नें हाथे नावे किण विध आंकू ।
> किहां किण जो हठ करी नें हटकू तो ब्याल तणी पर बांकू हो ॥

ते कारणे त कहे 'जेम मन राम मात्रां लिये नाम= जे जे ठामें ए मन राजा छाने चढ्यो थको जे जे तरंगे जे जे आज्ञा फुरमावे ते ते काय प्रवर्त्तवो मोक्षार्थी ने योग्य छे। जिम राजा ने हुकम मापक प्रवर्त्तवी राजा राजी थई मोटी जागीरी आपे तिम ए पिण राजा मध्य मोक्ष जागीरी आपे। तेम करिये न आतम गिणिये' नाम=मन आज्ञा आपे तम कयू करते आरंभ न मानूं। तिवारें पन्नासीये प्रश्न कयू—हयगेय उपादेय कथा ते हयगयादि स्वा ? तद्पित कहे 'हय गेयादि ज मन प्रवृत्ति करे' नाम= जे वस्तु मां मन नी वाहना नी प्रवृत्ति थयी ते हय ने ज वस्तु मां जाणवानी मन प्रवृत्ति थयी त गय में ज वस्तुमां मननी आदरवानी प्रवृत्ति थयी त उपादेय न थये सिद्धना तण्य मणिय नाम= तहवी मननी प्रवृत्ति सिद्ध थयां छतां सिद्धना नाम=मोक्षना माय तैरा मणिदे नाम=ने मनमती नागरंपो मदनूं करे ए सिद्धांत थयी ए वचन अत्यन्त विरुद्ध छ।

वचन नूं ज्ञान गुंथ्यूं छे तेमां सर्व प्राणीयो नी बुद्धि वसमा रही छे तेथी बाल क्या । बाधूं ए सर्व कथन मात्र छे। निरचयें सिद्धता जैन वाले' नाम=जैनदर्शन नूं तात्विक रहस्य ए छे-निश्चे मकोध सिद्धता छे। निश्चयाभावे सिद्धता नौ अभाव, कथ महाकष्टें करी अनंते भव सेव्यो विवहार तेथी सी सिद्धता थई ? तेथी अनत में भवांते निश्चय आवसी तइयेज सिद्धता थसी जिनज आनदघन कहे निश्चे एक आनदो पुन' 'निश्चे सरम अनंत' ॥

विविध किरिया करी विविध ससार फल,
फल अनेकान्ति कैं गति समृद्धि ।
गति समृद्धी पणें भव भ्रमण नवि टले,
तइथी सी थइ आतम सिद्धि ॥७॥सं०॥

अर्थ—"विविध किरिया करी" नांम=नाना प्रकारनी किरिया जिन दर्शन मां ठहरी । आमकाल ना जिन दर्शनी ते कहिवे करीने जैन दर्शन मोक्ष साधक कहीजे छे । "करणं क्रिया" नाम= करवूं ते किरिया कहीजे ते पंचम काल मां जैन दर्शनी कोई किम ही जैन दर्शन प्रवतना बतावे न कोई किमही बतावे । एतले भिन्न भिन्न कर्मनें भिन्न भिन्न क्रिया 'विविध संसार फल' नाम=नाना प्रकार म ससार फल नाना प्रकार नी क्रिया थको थयूं जिम जिन नें दीप पूजा करतां अंधत्व उतारी होय, नैवेद्य पूजा नौ भोग फल बतावको । तेथी नाना प्रकार नी क्रिया नाना प्रकार संसार फल थया । कर्म भिन्न भिन्न कथनताए नें बाहुय नाना फल थया तइये फल अनेकांतिकें गति समृद्धी नाम=अनेक

कथं एक नयापेक्षकत्वात्। 'सुर सत्ता रही रवि स्वरूपे' मांम=सूर्य
नी सत्ता जिम सूर्य ना स्वरूप में रही तिम जैन दर्शन नी सत्ता जैन
दर्शन मां रही छ एम नयानुयायकत्वात्।'

> जिनमतें ममत सत्ता न पामीजिये,
>
> ममत सत्ता रही मत ममत्वै।
>
> द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में,
>
> धर्म धर्मी सदा एक वृत्वें ॥मं८०॥६॥

अर्थ—'जिनमतें ममत सत्ता न पामीजिये' मांम=जिनमत नै
विषे मम ममत नी सत्ता कदापि न पामिये पावू क्यों कठे
एकांतवादी बोल्यो-कथं किम न पामीजे ? तदुपरे जैन दर्शनी तेनें
उत्तर आपे अनेकांतकत्वात्-अनेकांतपणा माटे यथा-नाम
दर्शयति 'यत्र यत्र अनेकांतकत्वं तत्र तत्र निर्ममत्वं' इति
सिद्धांत। 'ममत सत्ता रही मत ममतें' मांम=ममत्वनी सत्ता किहां
रही छे किहां मत नो ममत्व छे तिहां अने इम मानिये छिये ए
अन्य इम न मानियें ते मत ममत्व नें विषे ममत सत्ता रही छै।
कथं एकांतत्वात्-एकांतपणा माटे यथा 'यत्र यत्र एकांतत्वं तत्र
तत्र मत ममत्वं' तेथी किहां एकांते पण छे तिहांज मत ममत्व
नी सत्ता छै। अत्र दृष्टांत द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में मांम=
द्रव्यता द्रव्यत्व धर्मीपणु द्रव्य में रह्यु छै धर्मता द्रव्यत्व धर्मीपणु
तेहमें विषे रही छे। द्रव्यत्व धर्मता रह्या तो कोई द्रव्य में
विषे पर्र भिन्नभिन्नरूप करयां छतां द्रव्य नू धर्म द्रव्यत्व तेहने
विषे रही द्रव्यता तिम जैन नें विषे जैनत्व धर्म तेहने विषे रही

साधू जैनधर्म अमारे हाथे किम चढ़े ? तेनू उत्तर—ए सर्व मतधारी दुकानदार छे जिम दुकानदार ने पल्ले साच नहीं तिम एऊ पिण। तइये मध्य फिरी पूछे अमनें करणीय कार्य धोइक बताय। तइयें बतावे आप नंपा करो नाम=आपणा आतमानो आप निंदा करो। 'भव भवे मरहरो' नाम=भवान्तरागतिरूप भय थी डरहरो पूजा रे आतमा तू जिन प्रणीत आगम नो एक अक्षर हीन वा अधिक करीस तो अनंतो भवभ्रमण, रे आतमा तुमने करनो पड़स्ये, तेनो भयराखो। 'परहरो मुखें निंदा पराइ' नाम=मुख हूं थी छता वा अछता पर ना अवगुण कहिवा परहरो-छोड़ो ए त्याज्य छे सम दम सम भजो' नाम='सम'=शत्रु मित्र तुल्य भजो-आदरो 'दम'=पंचेन्द्रिय दमन आदरो, क्षम=क्षमा आदरो ए आदरणीय, 'तजो मत ममत म' नाम=मत रो ममत्व हठग्राही पणो छोड़ो एतले जिनसिद्धांत सू पोतानो प्रवर्तन विरुद्ध दीसे तोही न छोड़ें आत्मार्थी तेह न छोड़ो। 'राग दोषादि' नाम=राग नें द्वेष नें आदि शब्दे कलह अभ्याख्यानादि नें छाड़ो। पुनः=वली 'आस दाई नाम आस्था दाई वाणी नें छोड़ो ए ने छोड्या बिना सरण अर्थ छे।

''अन्वयं और व्यतिरक हेतु करी,
समझ निज रूप नें भरम खोवै।
शुद्ध समवाय व आत्मदशा परिणत,
ज्ञान नू सार पद सही होवै ॥१२॥सं०॥

अर्थ—हिवें आत्मा जेथी आत्मीक स्वरूप पामे तेहवा जैन दर्शन नू ते रीतें कथन छें त रीत कही बतावे। 'अन्वय और

आध्यात्मिक पद सग्रह

(१) राग—भैरु

मार मया मोर मयौ, मोर मयाँ प्रांणी ।
चेतन तू अचेत चेत, सिग्या सुधहानी ॥मो०॥१॥टेक॥
कमल खड खंड पिकमान, फाँसनी सुदानी ।
कंज उपम खंजन मी, नैनां न धुरांनी ॥मो०॥१॥
है विभाव विष नींद, सुपन की निसांनी ।
तर सुखुमाम मांहि, दोनू न समांनी ॥मो०॥२॥
आरोपित धर्म हैं, सुरूप की दुरांनी ।
रूप फ सुज्योत, ज्ञानभाग ज्योत ठांनी ॥मो०॥३॥

(२) राग—पट

मोर मयाँ मम भाग प्राखा,
पशु भमह अभिमान पुरानी ॥मो०॥
मनुष्ठ जनम तू पशु नांह धर्यो,
पशुमानी सिग्या सुधहांनी ॥मो०॥१॥
चेतनधर्म अचेत मया पशु,
धन धन धनन सुघानी ।

पीता यात आपु बल ओदन पु,
रूप रूपकत पुमसी पानी ॥मो ॥२॥
पर परमित परमन प्रयागी,
नींद सुपन तुम्ह मांहि ममाना।
ज्ञानसार निज रूप निरुपम,
तामें जागरता नींमानी ॥मो०॥३॥

(३) राग—पारगी

उठ रे आतमआ मोरा, भयो घर में भोर ॥उ०॥
अज्ञान नींद अनादि, न रहि चित्त कोर ॥उ०॥१॥
निज भाव संपद सरी, पक्षों बल फोर ॥उ०॥२॥
नहीं रोग सोग वियोगा, नहीं भोग को सोर ॥उ०॥३॥
नहीं बध उदयादिक ना, कोई करते ज्ञार ॥उ०॥४॥
यही भाव निज निश्चै नो, विवहारे छोर ॥उ०॥५॥
ज्ञानसार पदवी तुम्ह में, कछु और न ठौर ॥उ०॥६॥
सिद्ध रूप सिद्ध सपद नो, भोगी नहीं ज्ञार ॥उ ॥७॥

(४) राग—सारंग वृन्दावनी

हो रही तातैं रूप विहाई ॥हो०॥
छाऊ माऊ करती डोले, ज्यूं वच्छ विछुरि माई ॥हो०१॥

एते दिनों पिया सू रमत, अजर्यं उद्गार न आई ।
नाठ पिपा कहुँ निभर निहारे, क्यू बैग्न उठ धाई ॥ हो ॥२॥
पृहद लंगोदर सर रदनी, बमन देम न सुहाई ।
सुमति पियारी प्राण पिय मिल, ग्रानमार पद पाई* ॥ हो ॥३॥

(५) राग—धन्याश्री । राग्र—नाठों नेह को

मास गयां पछी क्यू हो आय, न घाले साय ॥मा०॥
निदये याही ज्ञान हेत थो, क्यू संथे मर याय ॥मा०॥१॥
मध में सूब कहायले, रोते घालिहे हाय ।
है मा तेरी सूआ पीछैं, ओर दुवेगो नाथ ॥मा०॥२॥
तृष्णा रागें परणम्यो तू, यातें प्रलक्ष अनाय ।
ग्रानमार गुण मपना, निभम्प सनाय ॥मा०॥३॥

(६) राग—धन्याश्री

विषम अति प्रीत निभाना हो ॥वि०॥
जिय सांतें ही प्रीत निभे जो, ता ई सुगम मयाना ॥१॥
मोवन मग दुमह प्रान ते याते विषम पयाना हो ।
प्राणदान अपदान मीन मृग, गाय गाय कछु गानाहो ॥२॥
अंग आलिंगन मीत विष पागो, फैलें धीर पराना हो ।
गूठी ऊडी थम हो। क, तैसे पिय थम प्राना हो ॥३॥

* नाम निपारी सुमति पिया सूं ज्ञानसार गर्म आई ।"

में रन बस तन पिय संग चाहूं, पिय पर रंग लुभाना हो ।
मध्याल तें विरहानल की, ताप अनल दुग दाना हो ॥४॥
कमल सुपणम की मनु बार्फ, प्रलयै विलय बहाना हो ।
ज्ञानसार एती सुन आए, छिन सब दुख बिसराना हो ॥५॥

(७) राग—काफी

गार सयान कहा कहि समझावै ॥टेर॥
सूते कूं धकधूण उठावै, जागत नर कैसे कें जगावै ॥गा॥१॥
जागरता इक उजागरता, इन दुल दोय अवस्था गावै ।
और दई गही नींद सुपनता, नार्गा अपने हाथ दीखावै ॥२॥
नींद न कर ज्युं सुपन न आवै, नींदि गया जागरता पावै ।
जागत जागत उजागरता होवै, ए जग न्याय कहावै ॥३॥
सूतें सुध भूल गय घर की, पर घर में सब रैन गमावै ।
जानत दोय अजान सयानी, वासें क कैसे धरि आवै ॥४॥
कौन सुनै कासूं कहै मजना, पग में हा पग मांहि बिलावै ।
सायर छोल उठें सायर तें, पै उनकी उन मांहि समावै ॥५॥
इक इक दुरउ सब जग में मजनी, पै सुहि दुरउ का अन्त न आवै ।
बेग पठाय सयानो दूती, बिन दूती नागर बस नावै ॥६॥
तुम हो आतुर वे अति आतुर, दोनु कर कैसे कै सीमावै ।
पै हम दूती पिरुद धरावै, सबके ज्यु त्यु आन मिलावै ॥७॥

एकहू हाय न माऊँ तारी, सग छन दोनूं हाथ बजावै ।
रैन दिनां रटना मुहि उनकी, पैं पिय एक घरी नहीं आवै ॥८॥
बिन पीतम बिरहा तन तावै, सीत समीर इतैं सतावै ।
तो सब दुख मिट जाय सयानी, ज्ञानसार बिन वेगिहि आवै ॥६॥

(८) राग असावरी

कौन किसी को मात, जगत में। कौन किसी को मीत ।
मात तात अरु भ्रात सजन सु, काहे रहत निचींत ॥ज०॥१॥
सबही अपने स्वारथ के हैं, परमारथ नहीं प्रीत ।
स्वारथ बिनस्यैं सगो न होगो, मींता मन में चींत ॥ज०॥२॥
उठ चलेगो आप इकलो, तू ही तू सुविदीत ।
कोे न किसी को तू नहीं काको, यह अनादि रीत ॥ज०॥३॥
तातें इक भगवत भजन की, राखो मन में नीत ।
ज्ञानसार कहै ए अन्यामी, गायो आतम गीत ॥ज०॥४॥

(६) राग सोरठ

सांम नाम न लयौं, मा सार्थ मन सु ॥मां०॥
कयो करम करम फल कांमी नांमी जाय बयो ॥मां०॥१॥
सम परस्वार्मी माया दर्सा उलमित चित न भया ॥मां०॥२॥
घन गन गाड रम्या रूपक में, फाहूं कछु न दयो ॥मां०॥३॥
ज्यूं ज्यूं हूं सुलझन टूं चायो, त्यूं त्यूं उलझ पर्यो ॥मां०॥४॥

छक पगहँ अब बाजी आई, तब हूँ हार गयो ॥सां०॥५॥
आसा मागी गई नहीं माया, आसन मार रुयो ॥सां०॥६॥
आप को मायो पाप उपायो, नहिं कछु धरम कियो ॥सां ॥७॥
मनसा गेथन सोधन घट को, एक घरी न कियो ॥सां०॥८॥
वैस सुनी ज्ञानसार कु, माहिब निरमहियो ॥सां ॥९॥

(१०) राग—सोरठ

चेतन में हूँ रावरी रानी ।
वीर विवेक कहे समझावो; अंत बिरानी बिरानी र ॥चे०॥१॥
और सखी उपहास करत है, समो नी सेज सुहानी ।
मेरो पिया पर मग रमत है, तातें पंहर पानी र ॥चे ॥२॥
वीर विवेक हितु तुमही से, भगनी होत है रानी ।
मेरे पति कु आप मुझावो, कहो मैं सोइ कहानी र ॥चे ॥३॥
वीर विवक कहे भगनी से, उधम मिटे निदानी ।
मरघा मति ममता मिल स्पर्श ज्ञानसार कु जाना र ॥च ॥४॥

(११) राग—मारू

ध्यान जगाई हो विवेक, सुहागनि । ध्यान जगाइ हो ।
उठ सुहागनि प्रीतम आए, करह बधाई पधाई हा ॥वि ॥१॥
उठी सुहागनि मरिय आभरखे, हित कर कंठ लगाई हो ।
गवर परी घर तबही मरघा, घसमसि मंदिर आई हा ॥वि ॥२॥

कर जोरी कहि सरघा सामी, मंदिर निजर फुरमाई हो।
चौगति महिल छोर छोटी कू, बड़ी याद क्यूं आई हो ॥चि०॥३॥
सुमति पठायो अनुभौ आयौ, उन सब सुद्ध सुनाई हो।
छोर दई उन कुटिल कुमति कू, आयो संग ले माई हो ॥चि०॥४॥
रमै रंग मग क्रीडा मंदिर, सुमति सुचेतन राई हो।
प्रेम पीयूष प्याले भर पावत, ज्ञानसार पद पाई हो ॥चि०॥५॥

(१२) राग—तोडी

कुमत सुमति अति वैरनि नावै ॥कु०॥
सग कर दूर रहो अति रमवो,
रंग भर छिन इक पिय न बुलावै ॥कु०॥१॥
कोइ विकल्प करयो मान केरै परयो,
झूरि झूरि पिय आंख गमावै।
भरी भरी सेगी न कबहूँ,
सो वैरन सुधि पास पठावै ॥कु०॥२॥
विकल्प संक मिट कटैय मग्य तम,
आप आय घर ध्यान धसावै।
कपल कमला निज घर आवै,
ज्ञानसार पद चेतन पावै ॥कु०॥३॥

उदय उपाय करम चित बध, आतम दुख सहूं ।
पर गुण रु वे निजगुण सु वे, सवें सुख गहू ॥कै०॥३॥
औसर पाय प्रगट परमातम, आतम जोग वहू ।
मानसार शुध चेतन मूरत, नाथ अनाथ लहू ॥कै०॥४॥

(१६) राग—कनड़ी

चेतन बिन दरियाव दी मछरी रे ॥चे०॥
कोइ ललारयो माने मारयो चे संग अनंग रंग बिछुरी रे ॥१॥
आप पूतारी मेरी आछू चे, कूट पकर कर पछरी र ॥२॥
आप ही चारो आप पचारो व ज्ञान अनंत गुण गु छरी र ॥३॥

(१७) राग काफी

कैइ मरदता म्यानें हींडो छो, छोवी नै आप बिगारी र ॥कै०॥
काज आइहा केइ पच्यो छै, मारम्यै थापे नी मागे र ॥कै०॥१॥
ज तुम्ह नें छै प्यारी नाग, न्यारी थास्यै नागी र ॥कै०॥२॥
पर नी रमणी हवणा मासी, परमव लागस्यै खारी र ॥कै०॥३॥
चत चेत तू चित में चेतन, नहिं तो थारी लागी र ॥कै०॥४॥
मानसार कहै प्रभु सेवा, छै मनु ने सुखकारी र ॥कै०॥५॥

(१८ राग सामेरी

औगुन किनके न कहिय र माई ॥औ०॥
आप मर सब औगुन ही चे, औरन कू क्या कहिये र माई ॥१॥

रंगग मलती देख सबही, पगतल कौन बताइवे।
लागा पगतल लाय पुम्कावो, सो काछु तन रुए चहिय र माई ॥२॥
आप पुरं हो है जग सबही, आप मले तो मलेहि है।
ज्ञानसार जिन गुन जप माला, निमदिन रम्स रहिये र माई ॥३॥

(१६) राग—बिहाग (पपीहा बोल्या रे)

दरवाजा छोटा र, निकला मारा जगत उनीस ॥द ॥१॥
क्या पधू क्या माई साधू, क्या धनी क्या धोटा र ॥द ॥२॥
राय हय करथी दो इक परखी, क्या कोई छोटा मोटा र ॥द ॥३॥
क्या पूरब क्या उत्तरपंथी, दक्षिण पश्चिम मोटा र ॥द ॥४॥
ज्ञानसार दरवाजे नाए पासें सिद्ध सनोमा र ॥द०॥५॥

(२) राग—सोरठ

आलीआ मे थारी बाट पती छ, महिरां वेग पधारो ॥आ०॥
आयु करम निन साखू की थिति,

कोडि सागर इक कोडि गुणी छै ॥आ ॥१॥

कत दिन चितवतां म्मक, ज्यू ज्यू प्रीत घणी छै।
निरबाहन नहीं प्रीतम हाथ,

निरबाहन मनपाक घणी छै ॥आ०॥२॥

भलो बुरो तोही चल आयो, अंत तो घर केरो धणी छै।
ज्ञानसार को ढील न कीजे, प्रीत अंतर कौन भयो छै ॥३॥

(२१) राग—सोरठ

है सुपनो संसार, प्रभु कू भज भूल मावरे ॥टे०॥
आ जग कहुं विष समान है, सकल बंधु न को प्यार ॥१॥
दुनिया रंग बाहरबाजी ज्यूं, क्यों मोचे न गिंवार।
ज्ञानसार घट भीतर साहिब, खोजे क्यूं बरबार ॥२॥

(२२) राग—सोरठ

पू भरी दुनिया ओ पू भरी दुनिया।
आशा दार फिरै ज्यूं घर घर, शिटत करन मुनियां ॥१॥
चारित्रवत मूढ़ा बगवासी, ज्यूं अंगल मुनियां।
ज्ञानसार कहै सब मानी की, बहिर बुद्धि बानियां ॥२॥

(२३) राग—काफी

मनड़ा नी भमे केने कहिये बातो।
खिण जोगी खिणखिण मन भोगी, खिण सीरो खिण ताठो ॥१॥
गुप्त चिंतवन वारू परगट, छाजे नथी रे कहिवातो ॥म०॥
चैत्य वंदने तू न प्रवर्ते, ते मुझ नथी र सुहातो ॥२॥
जोरावर थी जोर न चाले, तेहथी सई भारी लातो ॥म०॥
रूसणा तूसणा वारू[1] खिणखिण, गिणती नथीय गिणातो ॥३॥

---

1 बारो

इक सामादक ज्यूं एकान्ते, ज्यूं ही दिन ज्यूं राती ॥म०॥
विष वेला उपराठी तू विष, संयम नी करै घाती ॥४॥
सुर पुरंदर नर शिर धुजावै, वेद नपु शा कहाती ॥म ॥
ज्ञानसार यो निज घर होतो, मोतो ले स्यास खिलाती ॥५॥

(२४) राग—वसन्त

घर आवो ढोलन पर संग निवार,
तुमरो परसों कहा प्यार पार ॥प०॥१॥
नहीं जाति पांति कुल को स्वभाव,
एतो उनसौं क्या राग भाव ॥प०॥२॥
छांडो क्यों न उनको संग मीत,
जग में भव भव करिहै फजीत ॥प०॥३॥
चलिये अपने कुल की मरयाद,
कुल छांड कहा काढ़ा सवाद ॥प ॥४॥
माई पर अंते निज न होय,
निज पर सौ पर कबहु न समझ कोय ॥प०॥५॥
अन्ते पर बिन सरहै न कन्त,
मिहि ज्ञानसार खेलै वसन्त ॥प०॥६॥

(२५) राग सोरठ—सामेरी

आम वपु छै काम रे माई ॥आ०॥

पवन रु काया इक ठीक नाहीं, चित चंचल नहिं ठाम रे माई ।

कहुं हूँ भेप भेपधर हूँ ही, कहूं हूँ अनेरा काम रे ॥२॥

आतम विषये अगम मगन हूँ, कहूँ हूं निरगत काम रे ॥३॥

चित अंतर पर झलमल चितवू , मुख लेऊं भगवंत नाम रे ॥४॥

ऐसें खूनी ज्ञानसार की, सरम राखियो साम रे माई ॥५॥

(२६) रागिनी—पूरबी

मये क्यों, आप सयान अयान ॥आ०॥म०॥

पर संगति पर परचित परिणाम, रूप रहे विसरान ॥म०॥१॥

मेट विभाव सुभाव संभरिके, सधा यल पहिचान ।

मोह अज्ञान आश के नारन, पायो पद निरवाण ॥म०॥२॥

(२७) राग—सोरठ

झूठी या जगत की माया, क्यों भरमाया ।

कबहू मृगतृष्णा से मृग की, पानी प्यास बुझाया ॥झू०॥१॥

जैसे रांक स्वप्न भयो राजा, हाल हुक्म फरमाया ।

जागे से कछु नजर न देखे, हाथ ठीकरा आया ॥झू०॥२॥

झूठा तन धन झूठा जोबन, झूठी माया काया ।

मात पिता सुत वनिता झूठे, झूठे क्यू विरमाया ॥झू०॥३॥

निज स्वरूप निश्चै नय निरखे, तो में कुछु न समाया ।
तू तो तेरे गुण को भोगी, ज्ञानसार पद राया ।।कु०।।४।।

(२८) रागिणी—भैरवी

भामे हो भये भोर, भले ही ।।भा०।।
सौतन संग रैन रंग खोते, भात आरस मोर ।।भ०।।१।।
चौगति महल खाट ममता पें, क्यों छोरी कर जोर ।।२।।
रात विभाव विहानो उदयो, पर सुभाव सकोर ।।३।।
तब पीतम तुम सुमति संभारी, मत कहा करू न निहोर ।।४।।
पे कुल कन्या की मरयादा, अपने रत की ओर ।।५।।
वातें ज्ञानसार के आगे, ऊभी बकर जोर ।।६।।

(२६) रागिणी—बेलावल

सोई ढंग सीख लै सोई ढंग सीखलै गी, जो पिया गहे पर माँहि।।
नींम सयानी हूँ समझाऊ, तुम कहा समझो नाँहि ।।सो०।।१।।
पर आये तें आदर पाये, सो चाहिये तुम माँहि ।।सो ।।
मैं कहा आप् प्रानपियारे, कैसें राजी नाँहि ।।सो०।।२।।
मैं तो मन तन वचन तें तेरी, चोरी बिन दमां ही ।।सो०।।
मान अपमान समान मान कै, आई वीर पठाई ।।सो ।।३।।

अंग सुरग समार साथ ले, सरभा सुबुधि सहाई ॥सो०॥
प्राणपियारी सुमति तिया की, ज्ञानसार गलबांहि ॥सो०॥४॥

(१०) राग—बेलावल

चेतन खेले नौ ककरी री, नौ ककरी री, नौ० ॥चे०॥
घरसो घर भर सो भव पावन, याहि भाति ज्यु फर[१] चकरी री ॥१॥
अंगुरी चेरन[२] कर्म को प्रेरणो, याहि भावति इक गय पकरी री।
मर सें[३] घर अरु घर तें पुनि मर, दोरी पकरन क्रम बकरी री ॥२॥
घर भर मव घर मर को फरबो, खेलणो नांही इत फकरी री।
पास प्रभु भव घर मर वारो,[४] ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥३॥

११ राग—धमाल

आये मोहन मेरे, आज रंग रली ॥आज०॥आये०॥
सिद्ध सुहागन प्रीत बनाई, समता सरघा की कौन चली ॥१॥
सरका तें बहु पाय परी अब, देर दिरानी छिली।
सास समी समासरस[५] दीनी, सेठ जिठानी दौर मिली ॥२॥
संतो महव अजअव मुत्ती, सरकी चार चली।
सम दम विनय निरीह पियाले, चाई माई गल लाय खिली ॥३॥
सब परिवार संमार साथ ले, चेतनवा सु चली।
ज्ञानसार सु सुगत महिल में, खेलें धमाल की आस फली ॥४॥

१ फर में। २ मेरन। ३ मर तें। ४ हारो। ५ सुमारिस।

(१९) रागणी—सोरठ

रसियो मारू सौतन रै साथ रली, रसियो०॥
मेरो कह्यो मानत नहीं सजनी, महुव रही हमसाथ ।।टे०।।
चौगति महिल राग ममता पैं, रमतें रैन विहाय ।।टे०।।१।।
सौतन संग घूमतो घोर, मोहित मृदु मुसकाय ।।टे०।।२।।
सखा समता ज्ञानसार कूं, ल्याई साथ मनाय ।।टे०।।३।।

(२१) रागणी—सोरठ

को करो मैं रैंन विहांनी, नींद न आवैं ।
नींद न आवै नींद न आवैं, नींद न आवैं ।।की०।।टेर।।
उदयें आतम ज्ञान अरक कैं, रात दिमाग विहावै ।।की०।।१।।
हंसि सुद्ध मारैं सहित पसरतें, भ्रम तम कम न रहावै ।
चकवा चकवी मोर मये तें, हिलमिल प्रीत बढावैं ।।की०।।२।।
सोम लूक अब अंध भयो तब विसई चंद छिपावैं ।
ज्ञानसार पद चेतन पायो, यातें अचल कहावैं ।।की०।।३।।

(२४)

अचरिज होरी आई रे लोभ्ये, अचरिज होरी आई रे लाला ।
लाल गुलाल उडत आर की, एहि' मिथ्यात उडाई रे ।।१।।

१ इह।

पिचकारिन की झड़सी लगी है, पाची रस' परसाई रे।
चंग मृदग बाजत स्याद्वाद की, अनहद नाद घुराई रे ॥२॥
मद' मिथ्यामति होरी गावत, इह मति जिन गुण गाई रे।
अठसठि की होरी लगाई, इह कछु करम जलाई रे ॥३॥
मद पानी जन मदिरा पीवत, केइ मुढ फेरे न माई रे'।
ज्ञानसार के ज्ञान नयन में, अनुभव सुरखी छाई रे ॥४॥

(२५) राग—होरी

भाव रंग भीनी होरी आई।
अनिवृत करण प्रीतम आगम की, सरधा न्याई बधाई ॥१॥
पिय प्यारी की सुचि रुचि चितवन, दशीप गुलाल चलाई।
माखी पय पिचकारी सुख की, दंपति अरिय मचाई ॥भा०॥२॥
चंग मृदंग अनादि धुनि की, धुनि मिलमिल धुनि नाई।
आप सरूप आनंद रस भीने, सोहं होरी गाई ॥भा०॥३॥
शुक्ल ध्यान की शुक्ल तरंगे, मृदु मुसकान मुसकाई।
ज्ञानसार मिल कर्म काठ की, सहिबे होरी लगाई ॥भा०॥४॥

१ जिनवाणी। २ चोटी। ३ केई मुपरिन लाई रे।

(२६)

होरी रे भाव रंग भरी रे, रग भरी रस से भरी रे।
भाव अगम भावन पिय कीनो, भागम बदरी हरख झरी रे ॥१॥
विरह मिटयौ तनु ताप मट्यौ सब, शीतलता व्यापी सबरी रे।
पुत्र भये बिन पिता मात के, बींदो लागत पर बिखरी रे ॥२॥
पुर्में प्रीतम आंख्यां आगैं, देखत प्यारी नयन ठगी रे।
जीव जीवन इन ज्ञानसार तें, पिय प्यारी की सब सुधरी रे ॥३॥

(२७) राग—होरी काफी

भाई मति खेले तू माया रंग गुलाल व ॥मा०॥
माया गुलाल गिरन तें मूंदी, आंख अनंते काल व ॥१॥
जल विवेक भर रुचि पिचकारी, छिरके सुमति सुचाल व।
उघरवि ज्ञान नयन तें खेलै, ज्ञानसार निज ख्याल व ॥२॥

स्तवनादि भक्ति-पद संग्रह

(१) श्री शत्रुंजय तीर्थ स्तवनम्

राग—आव्यो आयओ रे ए देशी

गायज्यो गायज्यो रे हो, विमलाचल गुणगान। भविकजन।
इण गिरि आदि जिनेसरू रे, पूर्व निवाणुं वार।
समवसरण रायण तले रे हो, जगगुरु जगदाधार ॥भ०॥१॥
नेमि विना तीर्थंकरा रे, समवसरण तेवीस।
विश्व वलि चौमासो रह्यारे हो, अजित शांति जगदीश ॥भ०॥२॥
पांचे पांडव इण गिरे रे, पाम्या पद निरवाण।
मुगति गइ वरवा मणी रे हो, ए गिरि चोरी जाण ॥भ०॥३॥
सम्ब मुनि दस कोडि सुं रे, नमि विनमि वलि तेह।
दोय दोय कोड मुगते गया रे हो, प्रणमीजे धरि नेह ॥भ०॥४॥
के सीधा इण गिरवरे रे, सीमकस्ये कई सीध।
सिद्धखेत्र ए सासतो रे हो, नमिये सुखनी नींव ॥भ०॥५॥
एहवो नहीं इण कलियुगे रे, तीरथ पृथ्वी मांहि।
पाप ताप समवा मणी रे हो, ए गिरि सुरतरु छांहि ॥भ०॥६॥

एक जीम इण गिरि तणा रे, गुण कता कहिवाय ।
अधमगति सगले करी रे हो, ज्ञानसार गुण गाय ।।म ।।७।।

(२) श्री शत्रुंजय यात्रा स्तवन

आज्यो आयजो रे हो प्रीतम परम पवित्र सुगुण नर आयजो रे
म्हे साम्या सेत्रुजै सखी रे, पिउ पिया चाले साथ ।
आदनाथ दरसण करी रे हो, करियै शिवपद हाथ ।।सु ।।१।।
फूल चंबेली चंगेरियां रे, भर भर नाना भांत ।
पुष्प बादलि पूजा करां रे हो, बादल नव नवी भात ।।सु ।।२।।
मुगता मुगताफल भरी रे, सुन्दर सोवन थाल ।
सघाती स्वयठ ठवां रे हो, अनुपम फूल नी माल ।।सु ।।३।।
तीन प्रदक्षणा जिम करां रे, तिम वलि तीन प्रणाम ।
भाव पूजा करवा सखी रे हो, बैसूं बैसण ठाम ।।सु०।।४।।
शक्रस्तव शक्र करयो रे, तिम कर करिये प्रणाम ।
क्षमा पद पूर्ं[१] करी रे हो, भ्रोमरिये जिन धाम ।।सु ।।५।।
इम यात्रा सेत्रुज तणी रे, करिये कंत कृपाल ।
ज्ञानसार पदवी वरी हो, मरिय मुगत मो फल ।।सु ।।६।।

(३) श्री ऋषभ जिन स्तवन

राग—काहिरबो

नाभिजी के नंद से लागा मेरा नेहरा ।।ना०।।

१ (ह्री) याला । २ चूडी ।

बदन मदन मुख, मदन कदन मुख,
प्रभु को बदन किधुं, समरस मेहरा[1], ।।ना०।।१।।
अमल कमल दल, नयन उजल मल,
मीन युगल मानु, उछलत सेहरा ।।ना०।।२।।
भाल विशाल रसाल अकल द्युति[2] ।
शरद शशि मानु आठमी को जेहरा ।।ना०।।३।।
नासा चम्प दीप कली, सरली सींगी फली ।
दन्त पंति कान्ति मानु[3], चंद का सा उजेरा ।।ना०।।४।।
केवलो वर्णन करूं, [4]उपमा कहां ते धरूं ।
ज्ञानसार नाम पायो, ज्ञान नहीं गहरा[5] ।।ना०।।५।।

(४) श्री बीकानेर मण्डन ऋषभ जिन स्तवनम्

राग—काफी

मूरति माधुरी, ऋषभ जिनन्द की ।।मू०।।
विक्रम मथ पुर मुकुट मनोहर,
सा बिम्ब कौस्तममणि प्रतिमा धरी ।।मू०।।१।।
भाग विभाग शास्त्र परमम कर,
सुघर कारीगर सुन्दर या घरी ।

१ मेहरा । २ दुति । ३ मनु भठमी । ४ ओपमा । ५ माहिरा ।

भंगी विध विध रंग सुरंगी,
देखत छवि अति नयन कमल ठगी ॥सु०॥२॥
शान्त सुधारस मुख पर बरसत,
हरषत सुहि मन मोर नवल भरी।
ज्ञानसार जिन निम्नर निरख्यो,
निरखत सिद्ध थानक स्थिति मांभरी ॥सु ॥३॥

(५) श्री नेमिनाथ होरी भैरव

नेमिकुमार खेलें होरी य, लाल गुलाल भरी झोरी ॥नें०॥
इत थे आए नेम नगीना, उत थ कृष्ण की सब गोरा ॥नें०॥१॥
अबीर गुलाल की भरि भरि मूठें, डारं मुख पें दौरी दौरी।
भर पिचकारी नीर सुगध, छिरक मुख कर टकटोरी ॥न ॥२॥
पेन भरण हर तिय नहिं परणें, सब सखि मिल कर टकटोरी।
कारें से ब्याह मो कान करगी, मममें नहिं सखि ते मोरी ॥न ॥३॥
एसे मदन की वतियां सुनके, जोर रहे मुख याल मोरी।
रामुल्ल नम सगाई जोरी पिय मेर मैं पिय तोरी ॥न ॥४॥
होरख आय चले रथ फेरी, बिन औगुन पिय क्यों छोरो।
संयम गहि थो मुकि पधारे, ज्ञान नमें दो कर जोरी ॥नें०॥५॥

(६) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—तोडी

पिय बिन मैं बेहाल खरी री ॥पि०॥

छिन मुरझानी सुध बिसरानी, घरर धूम घरनीय परीरी ॥१॥

दोर सखि सब मिलिय सयानी, सीत समीर झकोर करी री।

पलनि उघार नजर भर पेखे, बिन पीय बिषना छाहि घरी री ॥२॥

रातें नीर झरयो आंखनि तें, मुख पै कजरा रेख परी री।

सोल कला संपूरन ससि को, राह गयो ज्यू सिघांन भिरी री ॥३॥

मयम गहि गिरिनार गिरी पर, पिय प्यारी दो मुक्ति बरी री।

मव खल तारी पार उतारो, ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥४॥

(७) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी खमाज

तोरण आंदी प्रभु रथड़ो रे फाय्यो एकरस्यु घरि न्यावोरे

मैं बागी सहियां प्रीतम नें समझावो रे ॥१॥

हस्ती रूटको यादव न्यावो रे मैं बारी।

पशुअन परि प्रभु किरपा र कीनी, मोपरि महिर करावीरे ॥२॥

नव भव को प्रभु नेह न छोड, नेह नवल कर मोइ र।

गढ गिरिवर प्रभु सहसा रे बन में, संयम लाघो शुभ दिन में ॥३॥

नेमि राजुल प्रभु सुगति महल में, खल खेलत निसदिन मं ।
ज्ञानसार प्रभु दास तुमारो, इह भव पार उतारा रे ॥म ॥४॥

(८) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वो दिस सग्गा नाल विहार ॥नाल० (२) वो०॥
फिर पीछ्ठ रथ चाले यादव, तब पीउ पीउ पुकारे ॥वो ॥१॥
मोकू छारि सुगती कू चाहो, मैं क्या अवगुन प्यार ॥२॥
अठभव प्यारी नारी तेरी, इक इक वार निहारे ॥वो ॥३॥
तीय सब हो पीय पिय नहिं समई, तिय पीतम की लार ।
ज्ञानसार पीय तिय के नामै, वारीयां वार हजारे ॥वो ॥४॥

(९) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वालिम मोरा मे ममझावो र, साईसड्डी प्रीतम मारा०॥
राजुल कहै सुन सखिय सयानी, दौर दौर तुम जावो र ।
पालव झाली कहिज्यो पीउने, एक वेर घर आवो र ॥१॥
बिन आगुन क्यों तजडो पियार, औगुन इक बतलावो र ।
सहिसावन जाइ संजम लीना, केवल सखो भले भावो रे ॥३॥
नेम राजुल मिल्या सुगति मझारे, ज्ञानसार गुन गावे रे ॥४॥

(१) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

मेंडा नम न भाय, पीय बिन क्यों दिन जाय ।।मैं०।।
क्यों दिन जाये क्यों निश आवे,
हां प्यारे तरफ तरफ जिय जाय । मैं०।।
दामनि चमके हीरा† चमके,
हां प्यारे कारी घटा गहिराय ।।मैं।।०१।।
पिउ पिउ पिउ पपइया बोले,
हां प्यारे मो जियरा अकुलाय ।।मैं०।।२।।
बिन औगुन क्यों तजहो पियारे,
हां प्यारे कहियो सब समझाय ।।मैं०।।३।।
पिय नाथ तिय चढ़िय गिरी पर,
हां प्यारे ठम ठम ठवती पाय ।।मैं०।।४।।
पति पत्नी दो मुक्ति पधारे,
हां प्यारे ज्ञानसार गुण गाय ।।मैं०।।५।।

(११) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी—पद मिश्रित

आवंतरौ पीयु वारौ, मेरो पियु आवंतरौ कोऊ वारौ ।।मे०।।
तोरण से तुम फेर चले रथ, मोप कांको आधारौ ।।म०।।१।।

† बिजली

पशुवन से तुम करुणा माणी, हम अबला निरधारो ।।मे ।।२।।
राजरिद्ध सब छोड़ी राजिंद, मैंसे काचरी क्यारो ।।मे०।।३।।
महिलावन मह संयम लेके, नेम चढ़्या गिरनारो ।।मे ।।४।।
ज्ञानसार मुनि की ए वीनति, मुहिर करी अवधारो ।।मे ।।५।।

(१२) श्री नेमिनाथ राजिमती स्तवन

राग— खारी

[चाल—कोई चूरियाँ स्यौरे चूरियाँ; गली गली मनिहार पुकारे ग्याँवे को गांठरियाँ कोई० ए० हरी]

मोहि पीयू प्यारे प्यारा ।।मो०।।
आठ भव प्यारी नारी थारी, नवमें क्यों भया न्यारा रे ।।१।।
तोरण आप चले रथ फेरी, अब हम कौन आधारा रे ।।२।।
छोर दई रोती राजुल कू, आप भये अणगारा रे ।।मो ।।३।।
थोरी जाऊँ तेरे नांमै, वारियाँ वार हजारा र ।।मो ।।४।।
ज्ञानसार निज गुण नो समरथ, करई बेर मवारा र ।।५।।

(१३) श्री सम्मेतशिखर तीर्थमाला स्तवनम्

[चाल—मिसरी री ये डिल्ली म्हे आगरे थां म्हां किसो सनेह ये चमकाई]

समेतशिखर सोहामणो, जिहां पुहता जिन बीस ।
दुगति रमणी सुख वालहा हो, प्रभुजी सिद्ध पहुंता ईस ।।१।।

अजित आदि अंतिम प्रभु, पारस पारस सार ।
अश्वसेन कुल दीपता हो प्रभु, माता वामा सुमकार ॥२॥
प्रभु शरणे हूं आवियो, भय भञ्जन भगवन्त ।
लख चौरासी हूं भम्यों हो प्रभु, दरसण बिन तुम कंत ॥३॥
आज भलो दिन ऊगीयो, भट्या श्री जगनाथ ।
भरम सीधा मांडगा हा प्रभु, भेट्यो भव दुख माथ ॥४॥
मुझ आंगणि सुरतरु फल्या, सुरघटि मिलियो आय ।
कामधनु घर ऊपनी हो प्रभु, तुम परखे सुपसाय ॥५॥
चिंतामणि मुझ कर चढ्यौ, नवनिधि सिद्ध सरूप ।
अष्ट सिद्धि सुख सम्पदा, हो प्रभु चित्रावेलि अनूप ॥६॥
मुझ मन तुझ परखे रम्यौ, पकज षट्पद जाम ।
चंद चकोरा जिमि लग्यो हो प्रभु, चक्रवाक जिम भास ॥७॥
पायस के मन में बसें चंद सदा सुखकार ।
मेरा मन जिमि घन बसे हो, प्रभु बलदायक जगसार ॥८॥
सम्वत अठारै इक्यावनै, माह सुदि पंचम सार ।
मानसार कर जोड़िनै हो प्रभु, प्रणमै वार वार ॥९॥

इति श्री सम्मेतशिखर तीर्थ स्तवनम्

१ पाठान्तर—म क्याथिये

(१४) श्री समेतशिखर तीर्थयात्रा स्तवनम्

[ढाल—भमिका मिसुपका पद वंदो०]

सेत्रुंज साध अनंता सीधा, सीमंस्यै वलिय अनता ।
पूरव भा आचारिज हुआ, कहि गया ए कहंतारे ॥१॥
प्राणी, शिखर समो नहीं कोई ।
तिहां किस चिण इक अपम जिनेसर, गमनमरणा नहीं सीधा ।
एहवे मोटे तीरथ एक जिन, पूथा नहींय प्रसिद्धा रे ॥प्रा ॥२॥
अष्टापद इक आदि जिणंदा, निश्चय पदवी पाया ।
रेवयगिर नमीसर सुखकर, सीधा श्रीजिनराया रे ॥प्रा ॥३॥
आबूगिर पर एक न जिनवर, सीधा नहीं जगचंदा ।
तिहां वलि कोई नहीं तीर्थंकर, कवलज्ञान दिणदा रे ॥प्रा ॥४॥
इम अनेक तीर्थ तीर्थकर, किहां सीधा केइ नाहीं ।
एहवो परगट ठामें ठामें, पाठ छै आगम मांहि रे ॥प्रा०॥५॥
समेतशिखर पर वीसें टूंक, सिद्धा जिनवर वीस ।
तिण नहीं एहवो तीरथ जगम, नमीअ नमावी सीस रे ॥प्रा ॥६॥
संवत अठारै उगणपचासे, महा सुद बारस दिवसें ।
सेंघ सहित मसी यात्रा कीनी, ज्ञानसार सुजगीस रे ॥प्रा० ॥७॥

(१५) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

[ढाल-धन धन संप्रति साचो राजा]

पास प्रभु भरदास सुणीज, दास थी करुणा कीजै रे।
पापा जीव ने शिक्षा दीजै, एन्न कारज कीजै रे ।।पा०।।१।।
कोप कहै अ वचन निगासी, तो तेहनी करे हामी रे।
विण पोतानी मतिनी फासी, ते तो कां न निकासी रे ।।पा०।।२।।
मीठाई मेलें नहिं मीठी, ते म निज्ञरे दीठी रे।
सुगुरु कहै हित वचनें जे मीठो, गुरुनो थाक अपूठो रे ।।पा ।।३।।
पोताना, भू डाई न आखे, परनो तुरत पिछाखै रे।
आपखपै हवि पहिलें ठाणो, सत्तम मोमां माखै रे ।।पा०।।४।।
होय रयो ए करम ना थासी, थतो ऊंचे पासी रे।
कहो किम कम न सामो थासी, अंते अघानक आसी रे ।।पा०।।५।।
एहनी रीत अछै नित एही, इक सुख कहिय केही रे।
भीमिनराज हित मन लेई, एहनें शिवसुख देई रे ।।पा ।।६।।
तू मरखे सुख दुख नो दाता, तू त्रिभुवन ना ताता रे।
रत्नराज मुनि थी साता, ज्ञानसार गुण गाता रे ।।पा०।।७।।

(१६) श्री पार्श्वनाथ स्तवन

[ढाल—मेहलीया मवर की रो करहलो]

परम पुरुष सू प्रीतड़ी, कीजे किम किम करतार जी।
निपट निरागी साहिबो, ईं रागी निरधार जी ।।१।।

म्हारी परम प्रभु जी मानज्यो, करुणा कर करतार जी ।
हूँ सेवक प्रभु तू धणी, हिव भवपार उतार जी ।।म्हा ।।२।।
कर माही ऊभो थको, कीजे सेव सदैव जी ।
पिण प्रभु किमही न पालवै, एह अनादी टेव जी ।।म्हा०।।३।।
चाकर पहुँचे चाकरी, साहिब समपै दान जी ।
तो सेवक नो साहिबा, वाधै जग में वान जी ।।म्हा ।।४।।
साहिब पिण सेवक तणी, राखै नहिं जो माम जी ।
साहिब सेवक नो मणा, किम निरवहसी काम जी ।।म्हा०।।५।।
इम जाणी सेवक परै, करो महिर कृपाल जी ।
निरधारां आधार तू, तू ही दीनदयाल जी ।।म्हा ।।६।।
पारस प्रभु सू वीनति, करी धणु करजोड़ जी ।
ज्ञानसार पद दीजिये, सुख अनंती कोड़ जी ।।म्हा ।।७।।

(१७) श्री गोडी पार्श्वनाथ (ज्ञान-स्तव) स्तवनम्

राग—सोरठ

करी मोरि सहाय, गौडीराय करीय सहाय ।
मूलचंद की मंद बिरियां, खपर लीनी आय ।।गो ।।१।।
भ्रम प्रताप अताप मंडा, स्पर्श नाही जम छाय ।
आंख फीकी पड़ी ऊभी घूमरी बलि आय ।।गो ।।२।।

नींद भंग उमंग ज्यौंही, मन न अपने माय।
उछलन मिस नमा दस दिस, झाला दे अमराय ॥गौ०॥३॥
ग्ह मेरे नाहिं संगी, संगी पीव रहाय।
माप ममसो उनहि के सग, चलेंगे उठ भाय ॥गौ०॥४॥
ए विवस्था दख मेरे, लगी उर में लाय।
अरयौ पिञ्जर हंस बाखी, प्रेम हु न रहाय ॥गौ०॥५॥
सुख चद्या घर आप मस्तवर, इते धरचे भाय।
टरयौ पिंजर देख पंखा, रयो ऊड न जाय ॥गौ०॥६॥
प्रम प्रलाप न लाप ऊंचो, त्यौर अपने टाय।
चढ़ी आंख्यां उतरी तब, घूमरी नवि खाय ॥गौ०॥७॥
नींद रंग उमंग अंगे, मम हु ठहिराय।
चित पीछे नसां ठहिरी, ब्रम्म अपने जाय ॥गौ०॥८॥
तुम हमारे नाहि संगी, पीठ हु न हराय।
काल चित परिपाक बाकी, आंधी में उठ जाय ॥गौ०॥६॥
मामि कारज करयौ सांमी, लाज राखी जाय।
मो पतित की पकस पंगि, विपद दीप बकाय ॥गौ०॥१०॥

(१८) श्री पार्श्वनाथ स्तवन

राग—सारंग

हमारी अंदिरयां अति उलमानी।
दरसन देखत चिन्तामन को, रोम रोम विकसानी ॥ह०॥१॥

हरखित नाचत नैनन पुतरी, वल्लन मृ द उमगनी ॥हं ॥२॥
घूघरिनाद घूमत मन पृ टी, मनहद नाद घुरानी ॥हं०॥३॥
मादल ताल पलनकी परसत, रोम सार पुसरानी ॥हं ॥४॥
दू ने बीन समाप्र मिलत मद, ज्ञानसार रमदानी ॥हं ॥४॥

(१६)

मरी भरब है भवसेन लाल ष ।मे०॥
सेव्यो सदा बाल साहिब हू , मैं मरी पय बाल स ।म ॥१॥
पन नामी पारस भिन मेरी, लगन गौमकी कृपाल ष ।
ज्यू त्यू राखी हृदापन की, रहगी लाज दयाल ष ।म ॥२॥
मैं सम देव रूप धन निधन, कया मांगू करताल ष ।
ज्ञानसार कु संपत दीजै, ज्यू पय माला पाल स ।म ॥३॥

(२) श्री अरकथा भर्म लक्षण

[राग—मग मोहना जिनराया]

अधिकारी यति भचिन्त्यासी, शिवपद मरसुख सुविलासी र।
मगजीवना जिनराया, तोरा सुरनर प्रणमें पाया रे ।ज ॥१॥
उज्वल गुणगण तनु मोह, सुख मरके मनह मांहे र ।ज ॥
पद्मपत्र वरखे प्रभु दीपै, भगावह क्रोधवृत्ति जीपै र ॥ज०॥२॥
उपशम भसि इस्ते घारी, भरि उद्गति क्रोध निवारी र ।ज ॥
मनि सहमकरुणा प्रभु वंदो, दुष्कृति नो कंद निकंदो रे ।ज ॥३॥

सुमताधारी भ्रमवारी, मन हारी जयकारी रे ॥ज०॥
मद भ्रम वारी धमधारी, सुकृतिकारी दुखटारी रे ॥ज ॥४॥
अतीत अनागत ज्ञाता, वर्तमान स्वरूप विख्याता रे ॥ज०॥
शान्त दान्त मुद्राए माहै, प्रभु प्रणम्यां पाप विछोहे रे ॥ज०॥५॥
त्रिभुवन त्रासा भग भ्राता ज्ञानादिक गुण नो दाता रे ॥ज०॥
घन घारे निवहिये धनीश, शुद्ध गुणधारक मुनगीश रे ॥ज०॥६॥
वामानदन वरदाई तुम मुनिवर सुख सदाई रे ॥ज०॥
ज्ञानसार कहै आणंदे, जिन वंदे ते चिरनंदे रे ॥ज०॥७॥

इति श्री पार्श्वजिन स्तवनं लिपिकृतं ज्ञानसारेण
सूरत बिंदर मध्ये ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभंभवतु ॥

(११) श्री पार्श्व जिन स्तवनम्

राग—काफी

दिल माया मेंडि सांई, पास प्रभु जिनराया रे ॥दि ॥
तन मन मेरो सबहि उलस्यो, जिय में आनंद पाया रे ॥दि०॥१॥
नैनियन मेरी प्रभु कू निरखत, सबयेई तान मचाया रे ॥दि०॥२॥
कर जोड़ा प्रभु मदन करके, ज्ञानसार गुण गाया रे ॥दि०॥३॥

(१२) श्री गौडी पार्श्वनाथ (काललिबिरन) स्तवनम्

राग—सारंग

गौडीराय कडी बडी वेर भई ॥गौ ॥

सांस उसास याद नहिं आवै,

तो पड़ीम घड़ी मतिमूर्ति मही ॥गौ ॥१॥

साठी घुघ नाठी या सब कहि है, असिय खुसि सौंप्योकि यही ।

है शौ अठाएं में भूलूं, मोमें स्मृति मति केप रही ॥गौ ॥२॥

नाम तुमारो याद न आवह, पल घड़ियन की बात छिपी ।

सुनी प्रभु क्या दास विहारो, ज्ञानसार मुख बोल कही ॥गा०॥३॥

(१३) गौडीपार्श्वनाथ स्तव दोहा—स्तुति

गौडी गौडी जे करै, विह उमातै विहास ।

त्यो घर लच्छी संपजे, नित प्रति होत हुल्यास ॥१॥

गाढी गौडी जे करै, अति विषमी बगियांह ।

त्यांरा संकट दूर है, सुख दे तिण घड़ियांह ॥२॥

मोडी गौडी जे करै, अति ही चित्त उदास ।

तिहां उदासी दूर कर, आपै सुक्ख निवास ॥४॥

गौड़ा गौड़ी जे करै, प्रति सकट में जेह ।
त्यांरा सकट दूर है, नौ निव वरसै मेह ॥५॥
गौड़ी गौड़ी जे करै, प्रति ही सुमन्ने मन्न ।
त्यां घर लक्ष्मी संपजै, प्रम सुवम सुघम ॥६॥
जो बिन मो से पतित को, लाज राखिहै कौन ।
ग्रीष्म ताप को हरि सके, बिन मलयाचल पौन ॥७॥
सिर ऊपर घूम्यां फिरै, पग्गहरखे कू प्रांण ।
गौड़ीराव सहाय है, झांट फांट सो जांण ॥८॥
नारसमी नित ही नमें, गुणनिधि गौड़ी सांम ।
सुख दालिद्र दूरैं दलण, कोड सुधारण कांम ॥९॥

(२४) श्री वीर जिन स्तवनम्
राग—वेलावल

हे जिनराय सहाय करो यू ॥टे०॥
चंदनबाला बाकुल वहिरी, ज्यू उधरी त्यूंही उधरो यू ॥१॥
शूली तें प्रभु सेठ सुदरसण, सिंहासन पड़े वेग धरयो यू ।
चरण डस्यों चंडकौशिक सपि, करुणाकर प्रभु दम करयो यू ॥२॥
अपमर्यो मल क्रीड़ा करतो, तारो पैले पार करयो यू ।
पतितउधारण बिरुद तुमारो, नाग्ण बिरीयां क्यों विसरी यू ॥३॥

(२५) श्री सामान्य जिन स्तवन

[राग—ईडर आंबा आंबली]

सम बिसमी श्रम मारगां रे, हित अहित अविचार ।
जे जे जिस मन में किया रे, तूं जाणे निरधार ॥१॥
जगतगुरु जय जय जय जिणदेव, तारी सुर नर सारै सेव ।
तारी जग जन तारण टेव, तेथी तू ही देवाधिदेव ॥ज०॥२॥
सम्यग मिथ्या दरसणी रे, सम बिसमी ए वाट ।
आश्रव संवर निर्जरा रे, हित प्रतिकूल पाठ ॥ज ॥३॥
नींद अज्ञान अनाद नी रे, कारण मिथ्या भाव ।
तुम दरसण तिण नवि मिल्यो रे, तपूगत शुद्ध सुभाव ॥ज ॥४॥
ग्रहीया आश्रव कारणी रे, भूरि थकी भव भूर ।
संवर निर्जर नवि गमे रे, दीसे शिव गति दूर ॥ज ॥५॥
भव परिणत परिपाक थी रे, तुम दरसण नो जोग ।
थायें संवर निर्जरा रे, थास्ये सुगुरु संयोग ॥ज ॥६॥
शुद्ध सरूप सुभाव माँ रे, रमस्यै आतमराम ।
ज्ञानसार गुणमणि भरी रे, लहिस्यै शिवसुख ठाम ॥ज ॥७॥

(२६)

वो सांइ मो बीनति कैसे करूं ।
काल अनादि थयो मेरा तुम बिन, भव वन माँहि फिरूं ।

अब तो त्रिभुवन नायक पाम्यो, हरखी पाय परू ॥१॥
स्युं कर नाथ तो हेतु बतावो, तेरा अवसर ग्रही ई भगरू।
परमब शुद्ध चरन अनुभव क, परसे ताप परू ॥२॥
तामें अनुभव चरण वान स, परसे ताप चरू।
ज्ञानसार प्रभु गुण मोतिन क, कंठे हार धरू ॥३॥

(८७) राग—केदारा

तुम हो दीनबन्धु दयाल।
करि कृपा मुझ तार तारक, स्वामि विरुद्द समाल ॥तु०॥१॥
अधम केते उद्धर तुम, मेरी ओर निहाल।
मैं अधम तुम अधम उधरण, कबहो क्यु न निहाल ॥तु०॥२॥
छोड़ सब की सब सेवा, लग्यो तेरी चाल।
ज्ञानसार गराब की तुम, करोगे प्रतिपाल ॥तु०॥३॥

(८८) राग—कनड़ी

मुख निरख्यो श्री जिन तेरो ॥मु०॥
समिपून्यौं मिम बिन मुख दरसत[१],
पुहप कमलना करो ॥मु०॥१॥
निस[२] परसे मिस[३] पून्यं उजरी, मस मुख नित ही उजरो।

१ पुन्यू २ रोपन ३ मिस ४ निस

पंकज अमल सब कमल दास है, पुण्डरीक प्रभु सगो ।मु ॥२॥
चन्द उदय' सुख सम्मुख निरखुं, यामैं बीच घनरो ।
कुसुमित पुण्डर दग्ग्या दरस्यो, कमल कमलनी केरो । मु ॥३॥
धन्य धन्य मुझ नयना' निरख्यो, हसत' बदन प्रभु तेरो ।
कनकोरी मद छोरी काह है, ज्ञानसार' प्रभु चेरो ॥मु०॥४॥

(२६) श्री सीमंधर जिन स्तवनम्
राग—सारंग

सीमंधर की सरम सलूनी, मूरति अति मन भाई ॥माई॥
लोचन अमिय वचन अमृत सम, नयन अमृत मर आई ॥माई॥१॥
अंग पंग नग रंग द्युति झलकत, अनंतज्ञान छवि छाई ॥माई॥२॥
ज्ञानसार मांभ मार्षे परस्यो, ध्यान सरूप न पाई ॥माई॥३॥

(१) श्री वीर जिन गहूंली गीतम्

राजगृही उद्यान में सखि समवसरण महावीर ।
वारि जाऊं वीरनी मति ॥म ॥
गणधर गोयमादिक मला मनि, इग्यारै अ स धीर ॥वा ॥१॥

४ दर्श ६ नयनै ७ अनुपम चपर बजेरा ८ सारण चानन चारो ।

केवलनाणी दंसणी सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
वरमैं मनपज्जवी सखि, ऋजुमती विपुल प्रकार ॥वा०॥२॥
मोटी नाणी मुनि छ सिद्धा सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
पांचसयां श्रुतकेवली सखि, चवद पूरवधार ॥वा०॥३॥
मुनिमंडल सूं परिवर्या सखि, चवद सहस अधिकार ॥वा०॥
अजा सहस छत्तीस सूं सखि, परिवरिया परिवार ॥वा०॥४॥
वनपाल आय वधामणी सखि, श्रेणिक रायने दीध ॥वा०॥
श्रेणिक नरपति वांदवा सखि, चाले अपनी रिद्ध ॥वा०॥५॥
पांचे अभिगम साचव्या सखि, तीन प्रदक्षिणा देय ॥वा०॥
पंचांग करे वदना सखि, वीर चरण आदेय ॥वा०॥६॥
राणी चेलणा करे छै गूहली सखि, राजा श्रेणिक री घर नार ॥वा०॥
गहुली गावे गहगही सखि, सहज सुन्दर नार ॥वा०॥७॥
सिद्धगति पूरण साथियो सखि, सरधा पीठ बणाय ॥वा०॥
सवरागे कूकू वरण्यो सखि, श्रीफल शिवफल ठाय ॥वा०॥८॥
मानसार शुभ भक्ति थी सखि, वधावे गुरुराय ॥वा०॥
प्रभु मुख थी मुनि देशना सखि, भविजन मन हरषाय ॥वा०॥९॥

—:o:—

श्री दादा गुरुदेव स्तवनम्

(१) राग—फाग

सुगणधारी, जिनदत्त सुगुरु बलिहारी ।
संघ सकल नो संकट भारी, पंचनदी जिण तारी ॥सु०॥१॥
बिजापोथी परगट कारी, योगी यक्ष निठारी ॥सु०॥२॥
मृतक गऊ जिन जिनमंदिर तें, मथ्यत करीय उठारी ॥सु०॥३॥
ज्ञानसार गुरु चरनकमल की, वारी वार हजारी ॥सु०॥४॥

(२) राग—सोरठ

गुनहे माफ करो, सुगुरु मेरे गुनहे० ।
मैं तो खूनी खूनी खूनी, तो भी दास तेरा ॥सु०॥१॥
नहिं हूं त्यागी नहिं संसारी, एसे ही उभरो ॥सु ॥२॥
नहिं हूं इतका नहिं हूं उतका, जैसे धोबी का कूकरो ॥सु ॥३॥
मैं हूं सद्गुर गुण का भूखा, मेरी भूख हरो ॥सु ॥४॥
ज्ञानसार कहे गुरुदेवा, मोमूं महरि धरो ॥सु ॥५॥

श्री सिद्धाचल आदि जिन स्तवनम्

[भवगुण ग्रांकण भ्रम करू जिनमत क्रिय ' प दरी]

भातम रूप भजाश न भार्यू निज पणु ।
वेद थी मव अप्रमाण प्रमार्णु मव पर्यु ॥
मव भमणा नौं भंत सत कहियै हुतौ ।
धा एहवौ भगासरषी हु कहियै हुवौ ॥१॥
जैन धरम विश अन्य धरम भरषा नहीं '
साची मका रहित जेह जिनवर कही ॥
जिन–पड़िमा जिन सरिस्वी निहचै मरदहू ।
या पिण माव उलास न जिन दरसण लहू ॥२॥
वेद थी मुक्त मन भ्रान्ति भत्यन्त अमभ्यनी ।
सत्गुरु फरस्यौ निहचै न थई भव्यनी ॥
भाधुनकी भाचारिज तपना में कही ।
भव्य बिना नहीं फरस्यै पिण मका रही ॥३॥
सुधा पिपासा सीत टमनता म मही ।
पृद्गस्य पग पथ स्वोपगरण रही ॥

---

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी के श्रमधर जिन विहरमान स्तवन की तीसरी गाथा में ।

कनक पीड़ा पग तल घास्ये दुःसही ।
इत्यादिक बहु वेदन थी केती कही ॥४॥
अथवा पाला थरथ दया न कारखे ।
नवि पाला में जीवनी हिंसा मारखे ॥
वरज्या उभत निमत भसख दूमख पनी ।
भातम भर्थे संयम जतना नवि पनी ॥५॥
भालस थी पडिकमणादिक विध नाचरूं ।
पूछ्यां थी चतुराइये उत्तर ऊचरूं ॥
वरती दर्व भचित्त सर्वथा चित्त थी ।
चित्त दृगथ तिह लागो मन वच वृत्ति थी ॥६॥
अमिग्रहोत पख धरनो मिथ्या भादरी ।
भौ पर लाभालाभे ममता नादरी ॥
सरस निरस आहारें सम वृत्ती पखूं ।
अति नीरस भाहार करेक विसमपखूं ॥७॥
वच द्रव्य खावानी मनसा नवि रही ।
अन्य भखावौ देख हरख मायो नहीं ॥
सगुण गिर वामी भावक साधु पखा ।
कोई मन वल्लभ केता असुहामखा ॥८॥

बापक उथापक जिनवादी सम गिणु ।
पूछ्यै प्रस्नें यथातथ्य वचन भणु ॥
कुण कली करस कीचख कहो किह कसो ।
जेसा नामें पूजापद जैणा प्रसौ ॥६॥
थापक जिनवादी भावक व्रत छबरै ।
लिंगी मापी संयत वदन परिहरै ॥
सफणी प्रहवें साधु भेषक वंदन करयू ।
इम वहनं सम्यक्त्वंत नहि आदरयू ॥१०॥
इम कहिसौ तो जिण पडिमा पाषाण नी ।
भाव शुद्धता थी ते जिन सम मानती ॥
भेषक नू वदन ए पसै संभवै ।
ते जिण धीर छवै किम वंदन संभवै ॥
धाम कष्ट दसाडी मुद्धभू सरिखा पणा ।
बर्षे सुगण न दे उपदेस सुहामणा ॥
जिन वचनं अविरुद्ध शुद्ध सह उपदिसै ।
जिह जिण मत नू कथन तिहां समतै फसै ॥१२॥
मत ममती भावक न सम्पती कहै ।
ममममी न मिथ्यामी कहि मरदई ॥

माखे जिन मत चोर आपणा मत में नहीं ।
तहना कष्टना करण अजैसा नवि कही ॥१३॥
व्यापक जिनवादी प्रकट कहै इसी ।
असंयम आचारित कहै ते भममें ड्रुसी ॥
उदर भरण कारण जिन दिक्षा संग्रही ।
पेट भरयै बग नीत ठसक मावै मही ॥१४॥
मत अविरोधी देख आतम अति ऊलसै ।
ममती थी बदसाऊ पिण मन नवि हसै ॥
जिनमत वचन विरुद्ध मनसा माखू नहीं ।
इम कहितां दूखम्यै गिरावनमन मई ॥१५॥
जिनरागी सू न राग, राग जिन वचन थी ।
जिन वच अविरोधक न विराधक जैन थी ॥
जिण जिन मेंनें अविरोध विराध्यौ वचन नें ।
तिण जिण अनंत विराध विराध्यौ जैन नें ॥१६॥
आभव करवी इण सरिखी एके नहीं ।
आराधिक सम संवर करवी नवि कही ॥
ए बिन संवर करवी मुक्त थी नवि सधै ।
तेथी शास्त्र प्रमाण प्रमाणू ए सधै ॥१७॥

संग्रह नय थी आतम सत्ता अनुभवू ।
सद्गत गुण पर्याय पखे मन परणवू ॥
गुण पर्यायें धर्म सुभाव समाधि थी ।
आतम साता सद् अव्याबाध थी ॥१८॥
धर्मास्तिक पण कारण नीं मद्भावता ।
शास्यै आतम मरूयें आतम सुभावता ॥
सयं त गत आतम उल्लास निरखें हुसी ।
मध्य हुस्यू तौ आस्या माहरी सिद्ध थसी ॥१९॥
तो स्थि अपराधि पर किरपा राखज्यौ ।
अपराधी आखी मति अंतर दाखज्यौ ॥
मम निमरै जिनराम सेवक निरखै सहू ।
मर मद परम सरण दज्यौ एहवू कहू ॥२०॥
निव रस धारम ससि (१८६६) फागुण वद चवदसै ।
सिद्धगिरी फरस्यौ मन बध तन उल्लसै ॥
ग्यांनसार निजपर्या आतम हित भणी ।
नाभम जिणंद समोर्प अति रति धुय थुणी ॥२१॥

इति श्री सिद्धाचल जिनस्तवन सपूर्णम ।
॥ सं १ ७१ सि पं वह ॥

[पत्र ४

तेहिज दिन दीक्षा ग्रही, क्रिया कौनसी होय ।
पें शुद्ध भावे सिद्धता, गजसुकुमाले जोय ॥ १६ ॥
गुणसागर केवल लह्यो, सामंत पृथ्वीचंद ।
पोते केवल पद लहे, शुद्ध भाव शिव संध ॥ १७ ॥
सिहरा मखे सरीर सब, मुनि करणी किम होय ।
साधु सुकोशल शिव लहे, कारण अन्य न कोय ॥ १८ ॥

१६ तइयें क्रिया नो आधिक्यता किम मानी जाय फिरी क्रिया नी किंचन् आधिक्यता हुवें तो तेहिज दिन दीक्षा ने तेहिज दिन मुक्ति तो इहां प्रश्न गुम छे । हू तुमने पूछू छू कहोनी तेज दिन में साधु क्रिया सी बर्ती ? तभी क्रिया नो स्यु ?

१७ तो ज्ञान कारणीभूत छे सिद्ध नो नें जो क्रिया सिद्धकारक हुव तो पृथ्वीचंदें गुणसागर ने केवल उपन्यो सुधर्ने पोते केवल पांम्या तिहां सामकता रूप क्रिया थई ते सामकता रूप क्रिया साधुक्रिया में गुणी तो नथी । नहीं तो साधुक्रिया नो तो लेश हो नहीं ।

१८ फिरी कहोनी सिंह शरीर ना मांस प्रमुख ना खंड करी करी ने भखण करें तइयें मुनि करणी सी थाय में प रीत सुकोशल साधु शिव पांम तो मुक्ति पामया ने अन्य शाखें भाव ध्यार्यादिक । कारण न कोय नहीं कोई । एतलें-व्याकरण वाले अनुभूतस्वरूपाचार्यें विचारी में ज एह वचन कह्यु यथा- "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" ज्ञानाद् ऋते नाम ज्ञानाभाव मुक्ति न स्यादितिभाव" एतलें क्रिया न

ख दग शान्त उदारता, साधु किया सो कीध ।
मव निवास तम भाव सुध, सिद्ध शुद्ध पद लीध ॥१९॥
उपजतो इक पहुर में, केवल ज्ञान अनंत ।
माप अशुद्ध तें नवि लहै, श्री दमसार महंत ॥ २० ॥
असंख्यात दृष्टान्त हूं, कहूं परखो आप ।
पै जेत बुधि में चढ़, ते ते दीध बताय ॥ २१ ॥

हुवे तो पिण मुक्ति पिण ज्ञान ने अभावे तो मुक्ति नो अभाव होय है एटले असाधारण कारण मुक्ति नो ज्ञान छे ।

१९ ने जो ज्ञानाभावे क्रिया मुक्ति कारिका हुवे तो पंदरा सचित्री कालवारी किवारे साधुकरणी सी कीधी ? किन्तु भावशुद्धतावी भव-भ्रमण नो निवास-भवनो छेह मु करी शुद्ध स्वभावो सिद्धपद लीध-पाम्यो

२० ने जो ए नहीं हुवे असम्भाव शुद्धता मुक्तिकारणीभूत न हुवे तो एक पहर अभ्यन्तर केवल दमसार महंत महात्मा ने उपजवी क्यो मूल कारणीभूत से शुद्धभाव तेने अनुभवे न अशुद्ध भाव ने करवे निक्षेपक निरावरणीय अनन्त पदार्थोथकोकी केवलज्ञान रूप ज्ञान नो प्रत्यक्ष उपज्यो रही गयो तेथी भावज मुक्ति कारण ।

२१ न संख्या असंख्या-ऽसंख्य एकऽसंख्यात, नहीं संख्या गिनती न थाय एवले गिनती ही न मिलाय तेटला दृष्टान्तो नो वर्णन करवा किम पार पामिये न व पामिये । तथी मैं मंदबुद्धि नी बुद्धे जेवा तेटला बताबी दीधा ।

भाव शुद्धता सिद्ध की, कारण तीनू काल+ ।
क्रिया सिद्ध कारन नहीं, निश्चै नय संभाल ॥ २२ ॥

२२ तेथी भाव नी शुद्धता तेज सिद्धनू परम कारणी भूत पणे तीने ही काले छे ने क्रिया सिद्ध नो कारण नथी। निश्चै नय ने स्मरण कर, चिंतवन कर निश्चै नय अपेक्षाये क्रिया सिद्धकारिक नथी। ×अमे भाव कह्यु ते जगत जंतु ने अनेक भाव नी प्रवृत्ति प्रवृत्ति रही छे केईक स्त्रीजन नू उदाकारी पणे विषय भावे प्रवृत्ति थया छे तिमज इन्द्रियागी दशा तदाकार तद्गत भावो पणे प्रवर्त्ति थया छे इत्यादि भाव नू महण इहां नथी। इहां तो जड थी भिन्न पणे आत्मस्वरूप अछेद्य अभेद्य अविना शी जे शुद्ध आत्मस्वभाव नू भावन चिन्तवन ते भाव नू इहां ग्रहण छे।

× इहां कोई मे पछु—'भाव शुद्धता सिद्ध की कारन तीनू काल'—ते जो विचारी ने जोइये तो अनादि काले अनंत सिद्ध थया ते सर्वे ने भाव शुद्धता रूप मुख्य असाधारण कारण थया वास्ते ते पिण मूल कारणे सिद्ध वास्ते ने वर्तमान काले पिण एज कारणे सिद्ध थई रह्या छे ने सिद्ध ने विषे पिण अनंतज्ञान पणु छे अनंत क्रिया पणु नथी कां नथी ? तो आत्मा नो ज्ञान लक्षण छे ने क्रिया जड नो लक्षण छे। तेथी दूहाना उत्तर दल में कह्यु — 'क्रिया सिद्ध कारण नहीं' तेहथी निश्चै नयनी अपेक्षायें संभालीनें ज जोइये तो क्रया सिद्ध नू कारण तीनू काले नहीं तेथी सिद्ध नू मूलकारणी भूत ज्ञान छे।

ज्ञान सकल नय साधिय करणी दरसी भाय।
शुद्ध भावना मिद्ध की, कारन करन कहाय ॥ २३ ॥
ज्ञानातम समवाय है, किरिया सह संबंध।
याते किरिया आतमा, तीन काल असबंध ॥ २४

२३ निश्चय ज्ञान ने नैगमादि सात नयें साधी जोइये ती यथा भाय ध्यान नें दासी सम-बांदी भाय करणी नाम क्या तेथी शुद्धभावना चिंतवन तै सिद्ध नी रस कारण छै यथा—असाधारण कारणं कारणं

कोई इहां उम कहिसी सिद्धांत मां मह्नू कथन छ यथा— ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष तथा हय नाश क्रियाहीनां, हता अज्ञानको कथ, पार्श्वतो पंगुको दग्धो धावमानोय चांधको १"महमू सिद्धान्त मां कथन छे। तइयें काई इहां एम कहेसी तू सिद्धान्त थी विपरीत भावना किम मानें छे ? तिहा किम् हूं । सिद्धान्तानुसारेण निश्चय व्यवहार नय नी मुख्यतायें प गाथा नू कथन छे। तेज आगे दूहामां मां कथन में किया कथ्यू छे। इहां निश्चें नयनी व्याविवक्षा थी।

२४ तेथी ज्ञान छे तेयो आत्मा नें समवाय संबन्ध छे यथा— पत् समवेत कार्यं मुत्पद्यते तत् समवाय तेथी आत्मा मां मिल्या रही ज्ञान छे क्रिया मो सह थी संबन्ध छे। आत्मा रे तीनें कालें क्रिया थी असंबन्ध छे एतला आत्मा जेवतें ज्ञान गुणें परसम्यो नही ततलें ज क्रियानी मुख्यता मानी राखो छे विचारी नें जोइयें तो इमज छे।

धर्मी अपने धर्म कूं, न तजै तीनूं काल।
आत्मज्ञान गुण ना तजै, अरु किरिया की चाल ॥२५॥
प्रकृति पुरुष की जोड़ है, सदा अनादि सुभाव।
भव थिति की परिपाक तें शुद्धातम सद्भाव ॥ २६ ॥

२५ धर्मी पोताना धर्म नै न छोड़े तेथी आत्मा ज्ञानधर्मी अने क्रियाधर्मी नी चाल-रीति न छोड़े। यथा नाम दृष्टांत—जे दोहे में "यथा धर्मी अपने धर्म कूं न तजै तीनूं काल। ते सीतादि धारस्वरूप पट नूं धर्म तिम शतानधारस्वरूप पट धर्म। ए धर्म जेहूं मां रह्या छै तहू नैं धर्मी कहियें तेहथी पटधर्मी सीतादिक धारण धर्म। न तजै नाम न मेले नाम न छोड़े। तिमज पटधर्मी शतावधारस्वरूप धर्म तीनूं काल मां न छोड़े। घट पटो न भवति पट पटो न भेति पा तिम तिम आत्मज्ञान गुण ना तजै, अरु किरिया की चाल" तेथी आत्मा तीन ही कालें धर्म ने न छोड़े "अकम्परस्स अर्सखमो मागे निच्चुग्घाड़िओ चिट्ठई" इति जिनवचन प्रामाण्यात् नै तिमज अने क्रिया धर्म न मेले।

हिवे शुद्ध आत्म सुभावी पणु आत्मा पामे ते रीति लिखें—कर्म प्रकृति ने जीव नी अनादि सुभावें जोड़ी छे यथा—कनकोपलवत सोना नी पाषाण नी खान मां जोड़ी तिम जीव नै प्रकृति नी जोड़ी। पछी भव नी थिति नी काल तेनी परिपाकावस्था थयें दोष टलें, पछी दृष्टी ऊघड़ें पछी अनुक्रमें शुद्धात्मा नौ सत्तापणा भाव रहस्यार्थी—आत्मा आत्मा स्वरूपवंत थाय।

काल पाक को सिद्ध तें, सहित सिद्ध है भाय ।
विन वरषा फूलै फलै, ज्यु वसंत वनराय ॥ २६ ॥
भवपरिस्थिति परिपाक विन, भाव शुद्ध नहि होय ।
मुनि करणी कर नरक गति, कुरड मकुरड दोय ॥ ३० ॥
क्रिया उथापी सर्वथा, मच्छक किरिया धार ।
पै मच्छक लच्छण रहित, सो सम शुभ आचार ॥ ३१ ॥

२६ तेथी कालपाक नी सिद्धता थये सहज निःप्रमास सिद्ध नी सिद्धता है जाय ना० है ॥ यथा विना वरषा मेह वारस्वां विना फूल फले सहित एक वृक्ष ही नहीं सर्व वनराय है ते वनराजी मैं फूल फल भावात् कारण वर्षा नें अभावें का फूल फले पिण कालपाक कारण मिल्यो तिमज कालपाक नी सिद्धता विना १२ दिवस लाई स्त्री नें पुरुष संयोगें पुत्रोत्पत्ति का न थाई मे १३ मौ १ दिवस तेनें विषे पुत्रोत्पत्ति को थई। पिण पाक काल नो दिवस मिल्ये सिद्धता थई इत्यादि केतला एक लिखू दृष्टान्त यथा सिद्धवानें पानी थोजो ।

३० ३१ तिमज भवस्थिति नी परिपाक कारण मिल्यां विना अन्य कारण नी सिद्धता नहीं, शुद्ध भाव कारणी नी सिद्धता किहांथी, तेहथीज मुनिकरणी अति दुस्सह प्रवर्तता केई मुनि नरके का गया पिण भव पाक कारण न मिल्यो तेथी मूल कारण ए छे। इहां कोई प्रश्न कहिस्ये 'पणते होई मिच्छतं पिण इहां जे मैं क्रिया उथापी ते वांछा सहित क्रिया उथापी छे। किम वांछा सहित क्रिया निष्फल छे मे वांछा रहित क्रिया शुद्ध आचरण छै

निश्चै सिद्ध थी तूं नहीं, विवहारैं शिव मल ।
ढीलूं पिय फरसैं नहीं, जब गुड़ियां सूं खेल ॥ ३२ ॥

निश्चै हूं भी सिव नहीं, विवहारै पै जोड़ ।
इक पलग आकाश में, फिर दौरी पै दौड़ ॥ ३३ ॥

---

३२ सखी मूल आरपी मूल जे निश्चय तेहनी सिद्धता नहीं तिवारे विवहार थी जीव मिलाव नाम रुचि राख । यथु जिवारै भरतार सूं मिलाप नहीं तिवारे कन्या गुड़ियां सु खेल, तिम जिवारे आत्म स्वरूप भरतार सो मिलाप नाम प्राप्ति न थाय तिवारै विवहार रूप जे गुडी-गूडी नी खेल खेलै ए सदा नी रीति छै । जिम जेठलै सम्पूर्ण अक्षर वांचवानी ज्ञान नहीं तठलै मात्रा पाठ मां विलाप वृत्तियें जीव रमावे तेहनें अक्षर वांचवौ वहिलो आवे नें जिवारै अक्षर वांचवा रूप ज्ञान नी सिद्धता थई तदुपरांत मात्रा पाठ भणे ना पाठ नौ पर रमरस नहीं तिम जेठलै निश्चै स्वरूप नी सिद्धता नहीं तेठलै 'विवहारै शिव मल' नाम विवहार मां जीव मिलाव विवहार थी मरजि मत रम्यावे नें निश्चै सिद्ध थयां उपरांत भणेना पाठ नी परै विवहार नें मूकी जाय जिम भरतार नें फरस्यां कन्या गुड़ी नी खेल भूली जाय तेहथी—'जोड़ मन में मान्य है जोड़ जोड़ बजाय एतलै निश्चै नी सिद्धतायें विवहार (नी) जोड़ बजाव ।

३३ निश्चै नाम आत्मा स्वरूप जड़ थी भिन्न पणे अलखो बता-वावो ए निश्चै हूं नाम निश्चै सभावै । भी पुनः सिद्ध नहीं सिद्धता

जां लूं भाव न शुद्धता, तौ लूं किरिया खेल।
पाणी जौलू पील है, तौलू निकसै तेल ॥२४॥
ज्ञान धरौ किरिया करौ, मन शुध भावौ भाव।
तौ आतम में सपजै, आतम शुद्ध सुभाव ॥२५॥

न थई हो एतले आत्मा ने ए रीतें जड थी न्यारौ निरखे न कियौ ते किम ? हूं आत्मा ए जड। हूं चेतनधर्मी ए जडधर्मी हूं अवि नरवरी ए विनरवरी हूं अछेद्य अभेद्य एनौ छेद्य भेद्य, ए संसार निवासी हूं सिद्धवासी ए जडरूपी हूं सिद्धस्वरूपी इत्यादि चतुर्थे जड थी भिन्नपणौ निरखे भी सिद्धता न थई । तेहथी पोडलांव विवहार नैं छोडी दे । इहां ए दृष्टांत के एक तौ पतंग आकाश में नाम हाथे नखौ नें फिरि पतंग थी संबंधित जे दोरी तेहनें तोडी दीनी तइयें मूल थी पतंग खोयो, तिम निरखे भी सिद्धता क्रम पतग ते तो भव स्थिति परिपाक बिना हाथे नथी । नें तेहथी संबंधित विवहार नैं मूकी दे तो मूलगा था निश्चय खोयो।

२४ तथी जेतलें आत्मिक भाव सबधी शुद्धता नहीं तितरे ताई किया नी प्रवर्तन तेनें खेल प्रवरततो करे ए जल पाणी छे जेतलें तल न निकले तितरे पाणी पीलै हीज छ ।

२५ ज्ञानधरौ—तेथी अहो भव्य प्राणी तू मुख्य वृत्तियें ज्ञान ने धारः ते ज्ञान शब्दे स्वरूप ज्ञान जे म्हारे जड थी सी सगाई इत्यादि चितवतौ छती क्रिया मां प्रवततशून्य ज्ञानी छती इवेकी क्रिया मां रुचि थईस ती कोई शुभ लहरी वंचक क्रियाकार नी क्रिया आश मा फसी मै तनौ दृष्टिरागी छती मन ममत्वी थई न मतवादे

जिनमताश्रित आत्मप्रबोध छतीसी

अथ मंगल कथन रा दोहरा

श्री परमातम परम पद, रहे अनंत समाय ।
ताकों हूं वंदन करूं, हाथ जोर सिर नाय ॥१॥

अथ शुद्धात्मा वर्णनम् ॥ यथा—

आतम अनुभव अमृत को, जिन जिय कीनो पान ।
ताको हों वरनन करूं, अनुभव रस की खान ॥२॥

अथ शुद्ध स्वरूपी वर्णनम । यथा—
सवैया इकतीसा

जाके घट भीतर ज्ञान भान भोर भयो,
भरम तम जोर गयो, जागी शुभ भामना! ।
काम को निवारी, मान माया कों उखार डारी,
लोभ क्रोध का बिडारी, सुंदर प्रकाशना ॥
आतम सुविलासी, [१] शुद्ध अनुभौ को अभ्यासी
शुभ्र रूप को प्रकाशी, भासी ऐसी भामना ॥
ज्ञान दशा जागी, पर परणित [२] अशुद्ध त्यागी,
ज्ञानभार भयो रागी करत उपासना ॥३॥

पाठान्तर— भावना
१ पक्षीभूत २ स्वरूपस्थितनी ३ [illegible] ४ सेवा ।

धाम कू चहइया मम्म भूर[1] के चहइया,
राम नाम के रटइया भ्रम पूर तें भरयौ है ।
ताको भ्रम रूप तम भूर[2] दूर करिबै कौं,
आपा शुद्ध ज्ञान मान निराबाध रस भरयौ है ।
ज्ञान दशा जागी अब अशुद्ध परणति त्यागी,
ज्ञानसार भयौ रागी समता रस भरयौ है ॥४॥

अथ अध्यात्म मत कथन

दोहरा —

जा हिय[3] ज्ञान रसै भरयो, ताकै पथ नवीन[4] ।
हांहि नहीं ऐसौ कहै, सो दुबुद्धि मति छीन[5] ॥६॥
मोक्ष कहि विवहार में, लीन भयो ज्यों जीव ।
ताको मुक्ति न होहिगी, सही दुबुद्धी जीव ॥७॥

अथ शुद्ध जिनमत कथन

दोहरा

निश्चय अरु व्यवहार द्वै, नय भाषी जिनराज ।
अपेक्षा इक[7] एकसौं, कहै जिनागम मास[8] ॥८॥

चौवीसैं ठांइ सब मैं अपेक्षा न कहै । १ प्रचुर २ समस्त ३ ज्ञानी को मान कर्म, निर्जरा को हेत है यहबो कहै ने जब में मगन रहै, ते ऊपर कथन ४ अयोगी अवस्था ५ तुच्छ ६ समैसार मही कहै ७ अपेक्षा बाँध ८ रहस्य ।

अथ निश्चय व्यवहार नयोपरि दृष्टान्त कथन सवईया इकतीस —

जैसें कोऊ मथानह की दोऊ दोर खैंच रह,
मास्खन हू चहे पै कैसें हू न पइयै ।
दोऊ दोर छोर आँहि ताहू दधि मथे नांहि
एक खैंच एक ढीलै मांखन कौ लहियै ॥
तैसें जैनी प्रश्न धरैं विवहारैं कथन करै,
ता बेर निश्चै ढोरी ढोरी हू न चाहियै ।
निश्चै नय कथन बेर विवहारैं न इत घर,
ऐसें शुद्ध कथन तैं आपा लखइयै ॥९॥

अथ ज्ञान क्रिया कथन चौपाई:—

जैसें अंध पांगुरे कोऊ, आंख पाउतैं जर गए दोऊ ।
पंगु खंधचरि अंधक धाल्यौ, आप निकरतैं पगु निकाल्यौ ॥१ ॥
अंध क्रिया अरु पंगु ग्यान, इकतैं सिद्ध न होय निदान ।
ज्ञानवंत जो करनी करैं, मोख पदारथ निहचै वरैं ॥११॥
शुद्ध सरूप धरौ तप करौ, ज्ञान क्रिया तैं शिवगति वरा ।
एक ज्ञानत मानैं मोख, सो अज्ञान मिथ्यामति पोष ॥१२॥

पुन एकेन मत कथन चौपाई:—

अपनौ[१] शुद्धातम पद जोवै, क्रिया विमारै[२] मगन न होवै ।
मोख पदारथ मानै ऐसे, जिनमत तैं विपरीत विशायैं ॥१३॥

---

१ पांगुलो २ आपनो आपसे आत्मारी शुद्धपद मारी आत्मा अब ५ भिन्न है पवलौ सुखें करै पर सुखमें दुखमें सुखी आप दुखी आप तर्ई अविकारूप ठहिरवो तेमी सी सिद्धता ३ आत्म स्वमातात्मव ४ मत

अस्य प्रत्युत्तर कथन दोहरा —

स्याद्वाद[1] जिनमत कथन, अस्तिनास्तिता[2] रूप।
ता जिन को कैसैं लखै, आतम शुद्ध सरूप ॥१४॥

पुनरपि तदेव मत कथन चौपई—

जो करता[3] भुगता नहीं मानौं, आतमरूप अकरता ठानौं[4]।
सुखदुखरूपक्रियाफल हो है, तिन आतमफल भुगता को है ॥१५॥

अस्योपरि जिनमत प्रत्युत्तर कथन चौपई—

करता करम करमफल कामी, साखी त्रिभुवन अनके सांमी।
क्रिया करै अकरता मानै, सो जिनमत को मरम न जानै ॥१६॥

अथ स्याद्वाद कथन सवईया इकतीसा—

शुद्ध[5] साधु भेष धरै, अवधक क्रिया करै,
संस्थादिक दशौं विधि, यति धर्म धारी है।

को सी पुरी मधुछेपी की छुरी। यहमूं समयसार पाखो कहै छै क्रिया ने। १ स्याद्वदन स्याद्वाद २ स्यादस्ति नास्ति।

३ जे को आत्मा ने कर्त्ता भोक्ता न मानो तो शुभकर्म शुं रे क्यूं करवो जो। यथा शुभ फल नो आत्मा ने तो शुभ फल नो भोग छज नहीं तो शुभ करणी करण कब करन नी परे निष्फल ठहरी। अभ्यारयत्वात् ४ स्थापो, तेथी जैनी नूं मरम तो क्रिया क्यूं करो ५ शुद्ध शब्देन-'न रंगिज्जा न धोएज्जा' इत्याचारांगे उक्तत्वात्। रक्तश्याम पट

पांचू महाव्रत धरै, छहूँ काय रक्षा करै,

महा भेद्य वस्त्रधारी, ऐसे जो निरम्बारी है।

पाप सों विहारी, परीसह सहै भारी,

जीवन की आशा टारी[1] मरण भय निवारी है।

ज्ञानानल कर्म जारी, शुद्ध रूप के संभारी[2],

ऐसे ज्ञान क्रियाधारी, सिद्धि अधिकारी है ॥१७॥

दोहरा

ज्ञान क्रिया द्वै सिद्ध के, कारण कहे जिनंद।

एक ज्ञान तें सिद्ध ह्वै, भाषै सो मतिमंद ॥१८॥

ज्ञान क्रियोपरि दृष्टान्त कथन दोहरा—

ज्ञान एकहू सिद्ध कौं, कारण कहे न होय।

एक चक्र रथ नां चलै, चलै मिलै जब दोय ॥१९॥

पुनरपि वेदान्त मत कथन दोहरा

सदा शुद्ध तिहुँ काल में, आतम कहत न अशुद्ध।

हम तुम है संसार सो प्रत्यक्ष विरुद्ध ॥२ ॥

मो निराकरण करु । १ जीवी आशा मरण भय विमुक्त २ प्रत्यक्षकारी ।

१ जे सदा आत्मा ने शुद्ध मानी को ही खोटरे म्हारे आसमार

नाम अध्यातम थापना, द्रव्य अध्यातम छोर ।
भाव अध्यातम जिन मतैं, साध नाता जोर ॥२१॥

(चौपाई

आतम बुद्धि गही कायादिक, बहिरातम मानी अघ रूपक ।
काया साखी अंतर आतम, शुद्ध स्वरूपमई परमातम ॥२२॥
सदा शुद्ध जो आतम होय, तौ आतम त्रय भेद न होय[१]।
पावै सदाकाल नहीं शुद्ध, करम नाश तैं होय विशुद्ध ॥२३॥

पुनरपि तत्रैव मतोपरि जिनमत कथन दोहरा:—

पुद्गल संगी[२] आतमा, अशुभ ध्यान में लीन[३]।
तिती वेर सुख मानिही, सो मिथ्यातम लीन ॥२४॥

पुनरपि तत्रैव मत कथन दोहरा सोरठा[४]—

कहे न[५] लागै कर्म, कहै आतमाराम सौं।
इह मिथ्यामति मर्म, बंध मोक्ष है आतमा ॥२५॥

कर्म न लाग्य हैं तौ संसार में रहै जरूर की समता हो प नाठ अरूप सिद्ध जरूरी मसावामावात् । जैसी तारी भीजी सदा शुद्ध आत्मास्य सिद्धान्त मिथ सिद्ध अरितो । यथा—भावात् पुण्या जन वस्मिनलीप । कर्म ? जरूर सिद्ध यात्

१ तो आतमा को एक परमात्मा भेद ही न हुतो । २ मिल्यो थको । ३ विरथ सेवन वाले हिंसा प्रवर्तन वाले ।

४ 'सिद्ध समातम की नहीं तो क्यों विसर्ग चोन ।' पुनरपि—"शुद्ध स्वरूपी जो कहूँ बंधन मोक्ष विचार । न घटे संसारी दशा पुरुष

एक ध्यान हू मोक्ष, मान कारण क्यों मर्ग में ।
तप संयम हू[१] घनी, लखो अनलक्ष[१] घट घर में ॥३०॥

(दोहरा)

घट घर में अनलक्ष लखो, स्याद्वाद तें शुद्ध ।
स्याद कथन बिन अलक्ष कों, लखै कौन विध बुद्ध[२] ॥
रूप लखै कछु वस्तु नहीं[३], अलक्ष लख्यौ क्यों जाय ।
स्याद्वाद परमत मथौं,[४] यातें प्रगट लखाय ॥३२॥

अब जिनमत प्रशंसा कथन दोहरा—

जिन मत जिन त्रयकाल में, निराबाध[५] इम रूप ।
लखै[६] कौन विध आतमा, आतम शुद्ध सरूप ॥३३॥

कुण्डलिया —

पूरब पुण्य संयोगे जिन मत पाइयो ।
स्याद्वाद[७] परमार, शुद्ध पद माइयो ॥

१ अलक्ष आत्मस्वरूप लिखे जाते न ध्यान २ हे सत्पुरुष ! कर्म ।
३ "रूपी भूँ सो वस्तु नहीं" ४ अवगम्यावितरथम्— पर दर्शन" जिन मत मथीने पुनर्व भासी जैन दर्शन मत कर दी मत ।
५ निराबाध अस्त आत्मता—पीड़ा रहित स्वभावे करी पारिणामिक स्वरूप रूप रहे बसो । जरतो शुद्धात्मता धर्म स्वरूप नू कारणू
६ अर्थ ७ जैनादि स्याद्वाद पुरस्सरं वदन्ति ।

या पै सीखन चाहिये, चारित के आचार।
सो माया भूल्यौ फिरै, संयम को व्यवहार ॥१२॥
तातैं नहिं इन काल में, संयम लैनें ठौर।
घर बैठे किरिया करो, न करो दौरा दौर ॥१३॥
पहिलो याकौं जानिये, गौतम को अवतार।
आसेवन[1] कर देखिये, अति अशुद्ध आचार ॥१४॥
चौथे आरै की क्रिया, चौथे ही में होय।
पै पंचम में चाहिये[3], सो कैसें नहिं होय[4] ॥१५॥

चारित्र ही शुद्ध पालवो कठिन, तै किम लिहां लिधू । समयक समा-
र्य होई । काल भी विषमता की दुभ लेखा संजमियों में प्रवल
स्वता परवासी करो मंद होवै छै । वै परमेस्वरे वम् पामिवे। तै
मिस्रवे पामीये। वा परमेस्वरे पंचमकालिम चारित्रियोंने वखराणा
इत्यादि कथा – वली अपने समया चूको दुस्ला ।” तैथी कोई दुःखी
स्वयं हो न होवै । यदि इम मिच छै वे इसवे है दुख भी न करसैं
में वे धरम् की कई दुखडावे प्रवर्तिवे छै है इना स्वरूपी मिरयपिव।
देव समकवा चारित्रावरण चौथे करै है चाय दं सम्यकित के वाय
चाव दं करो। १ धर्म दूषणम् २ आसपंचात् देखन। ३ मैला एवं
देखीये ३ वाहिये। ४ मनोवस्त स्वयमस्त आवरण ना अमाव
की इनी मिच समान। कोई अहिसै प कार्ये मिच कोई देवकी मिलती
की किया दिखावै छै। तो मैं—ते किया होवे मे मनवी करवे वा

साधु धरम की सीख दे, करैं धर्म की पुष्ट ।
याती सीख विचारियै (सौ) करै धर्म मौं मृष्ट[1] ॥२०॥

आत्म गुन परगट करन, औ चारित आचार ।
आतम शुद्ध विचारियैं, तामौं मिभाचार[2] ॥२१॥

आतम गुन परगास कू, ओ चारित रवि रूप[3] ।
औ शुद्धातम अनुभवी,[4] आतम शुद्ध सरूप[5] ॥२२॥

या चारित्र अनत गुन आतम सगति अभेद[6] ।
परखीजै सिद्धान्त में, सतर भेद दश भेद ॥२३॥

---

१ साधु री धरम वृद्धिरी सीख दे तौरें धर्म रामै चारित धर्म नू या सीख री सीख मनू दोवी। तिहां लिम्बू में चार चारित रा चारित देमनें साव बिस्यो छै। साव समान धर्म परमेश्वर न मानवी देवी।

२ स्वरूप मानक चारित नू मिनाचारवी छै।

३ औ नाम चौथे मारें रो चारित आत्मस्वरूप प्रकाश में रवि रूप दूरें होम छै।

४ औ नाम ओ चारित शुद्ध स्वरूप आत्मा री अनुभवी चिन्तक छै—स्पृष्टे सिद्ध शुद्धात्मानुभव।

५ ऐ चारित नवी मानू। आत्म नू शुद्ध स्वरूप होय छै।

६ आत्मा रे चारित रूप गुण स्वरूपें अभरनावी अभेद।

जो चारित जो पाईयै सफल फलै तौ तेह[1] ।
उन चारित को खेद सौं, आतम करै अखेद[2] ॥२४॥
उथा संयम बिन भेस क्यौं, वाघ लिंग की पुष्ट ।
पायक भावे ज्यौं हुवे, अंतर आतम दृष्ट ॥२५॥
अन्तर आतम दृष्ट सौं, पायक भाव विरुद्ध ।
सो पंचम काले नहीं, आतम गुण अविरुद्ध[3] ॥२६॥
यथाख्यात चारित्र की, कैसे बरनी जाय ।
अनंतकाल या जीव[4] कूं, एक बेर हो जाय[5] ॥२७॥
सरवविरत प्रति रूप क्यौं, देशविरति अनुरूप ।
गिही लई[6] पै ज्यो हुवे, सो चारित्र अनूप ॥२८॥
साधु दरस मिथ्र जीव कौं, पूरब फल की सिद्ध ।
या बिन कबहुँ हू[7] नहीं, सो सब शास्त्र प्रसिद्ध ॥२९॥
आयो ताहि निभाइयै, नवें न करियै हौंस ।
इनमें कछु नफै[8] नहीं, देव धरम की सौंस ॥३०॥
हम हैं तौ अनधान में, छीनौ संयम भार ।
संयम कछू पन्यो नहीं, आपा मार्यो मार ॥३१॥

---

१ तौ चारित्र सम्बन्धी भी अवश्य कीजै तौ।
२ [illegible] [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible]

मतिप्रबोध छत्तीसी

(दोहा)

तप[1] तप तप (तप) क्यों करौ, इक तप आतम ताप ।
बिन तप संजमता भजी कूरगडूमै आप ॥१॥
इक तप तैं इक ज्ञान तैं, कारज सिद्ध[2] न होय ।
ज्ञानवंत करनी करै, तौ कारज सिद्ध होय ॥२॥
यथा सकति तप पड़वजै[3], संयम पालै शुद्ध ।
ज्यों इत[4] उत दूहव फिरै, ज्यों मैं मगर प्रसिद्ध ॥३॥
खंधक* चढ़ाये तनय कूं, हेरत फिरी विदेश ।
सुरत भई तब संमर्पी, पूत खंध परवेश[5] ॥४॥
खंध चढ़ाये फिरत है, हेरत मत मत देश ।
आतम खोजै आप मैं, शुद्ध रूप परवेश ॥५॥

---

१ कूरगडू सम्बन्धी कथन २ महा मुनिराज ३ आत्मा स्वरूप ... ३ संयोगवश भये ४ जैसे एक पणिहारी मस्तक पै ५ प्रवेश ।

* कथानकी— इक रात राती रे, हमिपत बाई बाम । इ
जिम इ त्या तिम पायवी रे, नीरे पाणी वैठ ।
[इ.वी इम्भ करी. एमि बिमारे वैठ । इ ॥

आतम खोजमें पाइये, शुद्धातम को रूप।
तप तीरथ नहीं यागमें, आतम रूप अनूप ॥६॥
है तप तीरथ योग में, शुद्ध आतम के रूप।
पै सब है सब ममत बिन, मावै आतम रूप ॥७॥
धरम नहीं मत ममतमें, ममत मांहि तप नांहि।
दया नहीं मत ममत में, धर्म न पूजा मांहि ॥८॥
धरम नहीं बिन पूजना, धम न दया मम्झार।
है दोनू में ममत बिन, जिन आगम अनुसार ॥९॥
है तप पूजा पुनि दया, मांहि जिनेश्वर धर्म।
निमता बिन शुद्ध वचन रस, को पावै मत मर्म ॥१०॥
अपनी अपनी उक्ति की, युक्ति करै सब कोय।
मैं बलिहारी तत को, जो शुद्ध मापक होय ॥११॥
बिरला शुद्ध मापै वचन, बिरला पाले शील।
निर्लोमी बिरला जगत, बिरला संत सुशील ॥१२॥

(सोरठा)

निर्लोमी बिरलाह, निर्कपटी बिरला निपट।
चमामन्त उच्छाह, बरमै सो बिरला प्रगट ॥१३॥

क्या पंचम चौथे धरै, ए विरला ही कोय ।
शीतकाल में घन घटा, कोइक वरषै तोय ॥१४॥
तैसे निरपेक्ष वचन, अपनी मति अनुसार ।
भाषै जिनमत से विरुद्ध, वधु बहुलो संसार ॥१५॥
श्रुतऽनुसार कहै वचन, सापेक्ष निरधार ।
ते सुखवासी संत जन, ज्ञानसार बलिहार ॥१६॥
भाषै उत्सूत्र वचन, क्रिया दिखावै कूर ।
वाकै तप संयम सरब, क्यों करावो धूर ॥१७॥
हम सरिखे इह काल में, क्रिया दिखावै सरूप ।
पै बंधक करणी किती, तेती सरब असरूप ॥१८॥
निरबंधक करणी करै, सो तो संवर भाव ।
हम बंधक करणी करैं, सो आस्रव सद्भाव ॥१९॥
फिरीया बड़के पान ज्यों, भाखी त्रिभुवन धाम ।
स्वतारक बंधक बिना, बंधक[1] सो निष्काम ॥२०॥
निरबंधक करनी करै, मान गुणै गम्भीर ।
बलिहारी उन संत की, सम दम सरस शरीर ॥२१॥

---

[1] बंधन

ज्ञान क्रिया दो सिवुध के, कारण कहे जिनंद ।
एक एक ते सिधुधता, मापै तो मतिमंद ॥२२॥
क्रिया करै संयम धरै, निरविकार निममत्त ।
मत्ते सापेक्षक वचन, हुँ बलिहारी नित्त ॥२३॥
आतम अनुभौ के रसिक, ताको यह स्वरूप ।
ममत छोर निममत कहै, जिनमत शुद्ध स्वरूप ॥२४॥
जे ममत फन्दे फसे, ताके बन्ध नवीन ।
छोंडि नहीं कैसे कहै, से मत ममत प्रवीन ॥२५॥
मारे मत के ममत के, करै लराई घोर ।
ते अपने मत में नहीं, कहै जिनागम चोर ॥२६॥
पै कठोरता को वचन, कासौं कहिनो नाहिं ।
विना ज्ञान शुद्ध असुध मति, कैसेहू न कहाहिं ॥२७॥
द्, काहू सें कठिन अति, वचन कहित क्यों वीर ।
विना ज्ञान को ध्यान है, कैसो जिनमत * वीर ॥२८॥
केइ जीव दयामती, पूरणमती केईक ।
निर ममत्तता को वचन, कौन कहै तहतीक ॥२९॥
पावै कैसे पाइये, जिनमत शुद्ध सरूप ।
जिनमत बिन कैसे लखैं, आतम रूप अनूप ॥३०॥

* वलि जिन वीर ।

आतम शुद्ध सरूप की, कारण जिनमत एक ।
इस सें मैंसे भेष धर, कीष कियौ इक मेक ॥३१॥

परमत चर सु है निडर, मत सब दिनौ डारि ।
सर्यै मोस पर द्वार के, निरमय खेलै नारि ॥३२॥

आतम शुद्ध सरूप बिन, कैसे पावै सिद्ध ।
किन बिन कारण कार्य की, पाई भाई सिद्ध ॥३३॥

यातै मत पर मग तैं, परम रूप ज्यो रत्न ।
कैसे हू नहिं पाइयै, कोटि करौ को यत्न ॥३४॥

यातै पर बैठे करो आतम निंदा आप ।
सम दम तम की तप करौ, अपौ पच पद आप ॥३५॥

एहि जिनमत कौ रहिस, दया पूज निममत्त ।
ममत सहित निष्फल सकू, यहै जिनागम तत्त ॥३६॥

मतप्रबोध षट्त्रिंशिका, जिन आगम अनुसार ।
"ज्ञानसार" भाषा मई, रची बुद्धि आधार ॥३७॥

॥ इति मतप्रबोध छत्तीसी समाप्ता ॥

सबोध अष्टोत्तरी

अरिहंत सिद्ध अनंत आचारिज उवझाय पनि।
साधु सकल समरत, नित का मंगल नारणा ॥१॥
परमातम सू प्रीति, कहो किसी पर कीजिये।
वीतराग भय भीत, निमै कला विष नारणा ॥२॥
सूतो कांय सचेत, भयो प्रात भगवंत भज।
चिड़ीया कीनो चेत, नहीं रैण अब नारणा ॥३॥
चर्ता समर्यो नांहि, जाग्यां पचे सु जम्यो।
मातो ममता मांहि निरंजन मन्यो न नारणा ॥४॥
आवै करे न याद, मरणो सगलां ज्यूं मनें।
इस धूतो आवाद नहीं खबर तुझ नारणा ॥५॥
छाया मिसें छलेह,, काल पुरष केडै पड्यो।
ज्वान बाल वृद्ध जेह, नितका निगलै नारणा ॥६॥
इस में कौन इलाज, नहीं कला ओषद नहीं।
भक्षे काल अहिराज, न बचें काया नारणा ॥७॥
छिन छिन छीजै आप, पांणी ज्यु पुसली तणो।
घड़ी घड़ी घट आय नित की छीजण नारणा ॥८॥

पुरस भिड़े परभात, दीठा ते दीसे नहीं।
विषम कसतरी बात, न कही जावे नारखा ॥९॥

सगली आस्या आप, आया फिर जगली हुवे।
मर पिय धाये माय, नासौ अनिपत नारखा ॥१०॥

नहिं मोन नहिं बात, नहीं ठाम फिर कुल नहीं।
जोबन फास्यौ साथ, न मुआ जाया नारखा ॥११॥

जूपे दीवे जोत, सब घर में संध्या सवै।
उदयो भरक उद्योत, न रहे तम जग नारखा ॥१२॥

गुड़े तवे गाढ़ाह, चोरी सब जूपे पवस।
पलटे दे पाड़ाह, न चले इक पग नारखा ॥१३॥

मूढ़े न मोड्यौ मूछ, मृगपति मारण मालतौ।
जग रहे न अहूस, नर घुघवायो नारखा ॥१४॥

मृगता मुगे मराल, [1]गंठरा बिप्त्य मखे।
लिखिया अंक लिलाड़, न मिटै मेट्यां नारखा ॥१५॥

चढ़पथ तजे चढ़ाह, जामें नर भ्यू कर जीयें।
उमसे उदधि अथाह, नित परसौ[2] हुवे नारखा ॥१६॥

---

१ अमणा २ अवस

भगनी देत उछाय, पांखी एक पलक में।
ऐसागी बहवा खाय, न धुम्के सल सू नारखा ॥१७॥
बांनर तणो विनोद, करे न कीधो कांम रो।
प्रगटै नहीं प्रमोद, मीष लखावण नारखा ॥१८॥
ऊंचो उदधि अथाह, थाग न पावें तेरुआं।
रामप्रिया गो राह, नर कुण आखें नारखा ॥१९॥
धन गाड़े घर मांहि, खरचें नहीं खावण निमत।
ममत लीयाँ मर जाहि, न दिये कोडी नारखा ॥२०॥
दोष कला हूवै दोख, बलि दिन दिन वधती वधै।
परवर हवें सरोज, निसपति दौड़ैं नारखा ॥२१॥
प्रभाव लखै न पांण, सो बरसा जल में सड़ै।
मूरख लखै न मान, नित अधिको हुै नारखा ॥२२॥
बाजीगर बाजार, दुनियां सगलां देखतां।
नर सू करदे नार, निजर बंध कर नारखा ॥२३॥
मीयाले अति सीत, पाको पय ठंठर पड़ै।
मांख[1] करै घरि प्रीत, न मरें हूमर नारखा ॥२४॥
जल में बैठ जहाज, पर दीपैं परै पवन।
करै मत्स्य रो काज, न मरें हूमर नारखा ॥२५॥

१ घर २ नाव

अति दुर्गन्ध आहार, करतै बसि मैला बसन ।
मृत पियै मन मार, न मरे इमर नारखा ॥२६॥
बिण खेचरियें खाय, चाम्यां नाह न चालवै ।
कारज काम थाय, नीत जगत में नारखा ॥२७॥
करिवर करा कान, तरल पूछ तुरियां तणी ।
पीपल केरौ पांन, निबक्या रहे न नारखा ॥२८॥
मरें न मेलै मांन, बाबहियौ बलहर बियां ।
पड़ी रहौ भा प्रांण, न पियै घर जल नारखा ॥२९॥
मत संसार असार, सार नहीं त्रिय मोचतां ।
मरिय दुख मंझार, नहीं सुख लिख नारखा ॥३०॥
कटारी रौ काम, कद हाथै किरपांण रू ।
नगपति हरी नाम, न रहै गेहा नारखा ॥३१॥
बण जण भाग थाय रात दिना रीरी करै ।
कवडी मिलै न काय, निरभागी नै नारखा ॥३२॥
कीनौ होय कुकांम, सो मोगवता सोहिलौ ।
बिण कीधे बदनांम नित डर लागै नारखा ॥३३॥
इक इक बिहां इर्मत, पुरस तियां बैठी प्रबस ।
नागो होय निचंत, निरलज नाचै नारखा ॥३४॥
मारग में मिलियांह, बनता बतळावै मति ।
गूमीडी गांलयांह, निमप न मेलै नारखा ॥३५॥

मोखा मैंस सणाह, मेहां स मांजैं नहीं ।
धन विण भरट भणाह, न मरै मरजल नारणा ॥३६॥
उधम विहूणी आय, आफ घर आवै नहीं ।
बोण धर्म्यां विन थाव, न गजे फदे न नारणा ॥३७॥
धर्मणी निपट कुरूप, कलहरा कूटल कुलखणी ।
इस्यौ पुरुष अनुरूप, नहीं पाप बिन नारणा ॥३८॥
धीडा परै कपाल, मामा ईलर नीसरै ।
फटै फिर कंठमाल, नहीं पाप बिन नारणा ॥३९॥
ताता घडव तुरंग, मांत भांत भोजन भला ।
सुघरा चीर सुरंग, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥४०॥
भादर करै अपार, जन सगला ही जा करै ।
अति सुन्दर आकार, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥४१॥
अति ऊंचा आवास, चतुर चितेर चीतरया ।
भवल उजल आरास, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥४२॥
निपट निरोगी काय, धन धान सब ही धवै ।
अति लम्बी हुवै आय, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥४३॥
पुत्र भलो परिवार, मानुकूल सुन्दर सहू ।
निपट कहयै में नार, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥४४॥

बोले ऊंचा बोल, नीची कर ताकै नहीं।
राख दिना रगरोल, नहीं पुण्य बिन नारखा ॥४५॥
धमिम सुले धरियांह, गिरिया यावे नहीं गिरिम।
बनिहर पर धरियांह, नहीं पुण्य बिन नारखा ॥४६॥
लाखे म्यानै लोक, कर भाडै भास्या करै।
मदा सुखी नहीं लोक, नहीं पुण्य बिन नारखा ॥४७॥
भाग्ये देवै भन्न, घृत मीठो दवै घसा।
कौड़ कसा कृपण, नहिं दियै दाखों नारखा ॥४८॥
सुख बुझवै सुजाल, भति दुख हुत भर्याव नै।
पहियौं पशु क पुरांव, नर समझै नहीं नारखा ॥४९॥
सिंह सदृला माथ, बांधां मर झूमै बलि।
भोग करम भाराव, न हुवै किए सु नारखा ॥५०॥
माया मिले न धूल, धाया सौ क्रमशों करयौ।
भंक लिख्या भणहूल, निहचै भाखो नारखा ॥५१॥
ऊगो सूरज एक, लाखे गांनै लोयखा।
निरख्यो भाप निमेष, नहीं तेज सौ नारखा ॥५२॥
पहरीजै पर प्रीत, लाइजै अपनी लुगी।
राखीजै ए रीत, नित का सुख मैं नारखा ॥५३॥

करिवर कुंभ प्रहार, मींढ अपणा सिरस करै ।
नर अनम्यां सुर नार न धरे घर पग नारखा ॥५४॥
भारत न करो एक, रातै भूखो ना रहे ।
परमाते भर पेट, नहीं दुक्ख भय नारखा ॥५५॥
भय फाटै भाख्यस, कहि कारी कैसी करां ।
प्रकृत भिखारी पास, नरपति मार्वे नारखा ॥५६॥
इक नरपति इक नार, स्वास्थ रा दोनूं मगा ।
विण स्वारथे बिगार, न करें संगति नारखा ॥५७॥
नरपति हंदी नेह, स्वारथ विण भवयो सुणयो ।
दीठो किण घर देह, नहीं मगत कहि नारखा ॥५८॥
नरपति सखो निराठ, आसगो आछो नहीं ।
विसमीधारी बाट, न्यारो बैठो नारखा ॥५९॥
नीचां तणो निमेष, संगत न करै साधु मन ।
दीठो नहिं तो देखि नाहर गाडर नारखा ॥६०॥
संपति विण ससार, मानें नहीं मणीस नें ।
परत म सामै प्यार, निरधन सेती नारखा ॥६१॥
बगला ज्यु अणबोल, मौनी हुय मांखस रहे ।
मन में दया न मूल, निकमो मगलो नारखा ॥६२॥

निकमी पर घर नार, फिरत न लागे फूटरी।
जिसनें लाड़े बिगार, नीच संग सू नारणा ॥६३॥
पर नारी सू प्रीति, कीधी कदे न कामरी।
ओर न इसी अनीति, नित करतौ रहे नारणा ॥६४॥
मग्यि पेट भंडार, घनों ही लागे सुबध।
भख कीध आहार, नहीं धमती बग नारणा ॥६५॥
मत बतलावे मूल, मूरख सू मतलब बिना।
मरम न कहि मां मूल, निकमों आखे नारणा ॥६६॥
राखा रांमा रंग, बादल सु पियासे बसें।
समझी करम्यौ संग, निज मन सेती नारणा ॥६७॥
आवे आप असेद, मुकती मकर्या मायसां।
निगुणा ओर नवेद, न मिलें किम ही नारणा ॥६८॥
हु बर सर्वे कमाल, पवा मोला मोती पथा।
मुगताफल गलमाल, न मिलें पहिरन नारणा ॥६९॥
चितारी चित्रांम, कवियण यथ कविता करें।
ठीक नारकी ठांम, निहचे बासी नारणा ॥७०॥
दीधौ बाप न दांम, ग्रम अपरस धन मांगतां।
मांगणियारे नांम, महि नाकारो नारणा ॥७१॥

नीवा नेह निवार, बैर न कीजै विविध विध।
कर्नो दहै अंगार, नहीं श्याम रंग नारखा ॥७२॥
भारविवेक भखेद *, तिन प्रति दिस नहिं होइयें।
दीजैं धीरज देह, नरपण कहिठें नारखा ॥७३॥
सुपखां तणो सनेह, नित नित नवलो नीपजै।
निगुणा हंदो नेह, निभै न कीनो नारखा ॥७४॥
भाव तणो अहंकार, कदे न कीनो काम रो।
रावण री परिवार,† न रहयौ रास्यौ नारखा ॥७५॥
संपद तणी सनाह, कीजै छै पिस कारमों।
देहदै देसा छेह, न पछै मायै नारखा ॥७६॥
भावै आपणो गेह, देखंतां दोखी मिलै।
गत सगपण री सेह, निकमो हुवो नारखा ॥७७॥
सुन्दर रूप सुहाग, मन मेलो§ महिला मिलै।
इस्तप ईलाज कुपात, निभर न मेलै नारखा ॥७८॥
भारविर्वत अपांख, सरखा दाम समझियें।
पर दुख री पहचान, निपट न होवै नारखा ॥७९॥
सपद तणो सनेह, विस संपद में विणमिये।
निरधन हंदो नेह, न मिटै कद न नारखा ॥८०॥

* भेद † परवार § मेल

पदित सु भयाप्यार, मूरख सू मनिकरि मिलै।
उलटा भ्रम आचार, निमष न मिलै* नारखा ॥८१॥
प्यार करै असप्यार, कपटै मन मैलो किमन।
नित प्रति संग निवार, नीच जोवा नै नारखा ॥८२॥
हाथी हूंत हजार, हाथ पाव टरि छाँडवं।
लंपट और लबार, न करै संगति नारखा ॥८३॥
मरम न माखैं मूल, परहरि निंदा पारकी।
सावै मायरा थूल, न हुवै दुख किम नारखा ॥८४॥
फूकै पोपो फूस, उडी जाय आकाश में।
मांच कहै करि सूंम, न मिलै कण इक नारखा ॥८५॥
माया पेटी मांहि, राखै जो सोई रहै।
सरमी पेट समाय, नव मण नीरघो नारखा ॥८६॥
बैठे घर पे हाथ, उठतां आलस करै।
माखैं देस मराय न रहै अपकिरत नारखा ॥८७॥
पखियें मिल रे साथ, तिन सू कदे न तोड़िये।
अणपखियें आवास, नां रहि सकीजै नारखा ॥८८॥
हांसा मांहि हजार, कोइ कसु कमचन। करो।
विरचैं मन विवहार, न सुखैं एको नारखा ॥८९॥
हाम्यां हाजर होय, मन मध जांच्यौ नाव नित।
लिखियो पार्य सोय, न घटे रती न नारखा ॥९०॥

* मिलै । ५ हूण्य

ममत न कीजै एक, नफो मूल जिण में नहीं ।
दीजै आपा छेक, निमल दासै नारणा ।।९१।।
सुवरण सघो सुमेर, अलगो कीधाँ ईसरै ।
इतरा सपद हेर, न किपो नेडो नारणा ।।९२।।
अर्थो आपा कुंभ, फोड्यां बिण ही फूटसी ।
माउ म जाँ म म, नित छूते छुवे नारणा ।।९३।।
आपा किण रे काज, सूमां सूं मावम तणी ।
निरखो निपट निलाज, नरकी आपा नारणा ।।९४।।
हियडां मांही देव, म्हारस्या बिन न पडै भलक ।
दिस दिसताई दव, नयणां दरस्यां नारणा ।।९५।।
धर्मं तणा कपाल, क्या मैं ज्यां* ही फूटसे ।
बारम सिटमलपाल, निरख्यां थिरके नारणा ।।९६।।
नैणं दंदा नेह, कीजै नहीं कुमाणसां ।
पपुरम तणाँ सनेह, नित कीजै नारणा ।।९७।।
निगुणो अपणो नाह, मांमी दूसर न माम है ।
नाह बिण गैं नाह, निकमा माम् नारणा ।।९८।।
मणजम हुमां माय, होम्यो पर वीरव दुवै ।
मरप मूवो र माय, निरखै निकमा नारणा ।।९९।।
मीर्ष दर्डा नह, पारवती गुठी मुठ्यां ।
बिन दिव परस्यां मह, निपट निरंमा नारणा ।।१००।।

* नर्पेका

सबलां सू संसार, दाब्यां बिना आफे डरै ।
पुण्य तणौ परकार, निमरम भांग्यां नारखा ॥१॥
सबला तणो सनेह, निबला सू जोड़े नहीं ।
अगिहर छाड अछेह, निंदे कुण नहीं नारखा ॥२॥
लंपट पार लगार, कूख्यां ही कारज करै ।
गूमर डोल गंवार, नवि कूख्यां विन नारखा ॥३॥
घरौ अरोपै पंख, चटकै सै भटनी चढै ।
हर सबौ सपहंस, न मरै दूमर नारखा ॥४॥
आपां आडंकार, मान कहै पर मानवां ।
निज कौ सग निवार, निकमौ बांधै नारखा ॥५॥
नीर न्याव इक रीति, मोटै न्यू स्यू ही हुवै ।
न गिनैं नीति अनीति, नरपति छूटै नारखा ॥६॥
स्वारथ तणा सनेह, विण स्वारथ मैं विकसिये ।
नोकणिया री नेह, मांयौ पावै नारखा ॥७॥
हृदयैं ऊपजी रीझ, म्हारे महाजनैं ।
बैठ सुमन्त विप चीज, निरमी सरवर नारखा ॥८॥

इति श्री संबोध अष्टोत्तरी [illegible]
संवत् १८४१ [illegible] मिती [illegible] वदि ० [illegible]
शुभ भवतु । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible]

प्रस्ताविक अष्टोत्तरी

आतमसत्ता परमात्मसत्ता, समभावत एक ।
पा हैं शुद्धातम नमौं, सिद्ध नमन सुविवेक ॥१॥
निस्पृह रामा रङ्क सौं, भात करत न दपात ।
नगन पुरस सो पुरस सौं, लूंट्यौ कछु न सुनात ॥२॥
मन निसल्य आलोचना, सब अपराध समात ।
ज्यौं काँटे की वेदना, निकसत दुख न रहात ॥३॥
जो निसदिन खावै पिवै, वाकौं वाकी भूप ।
जैसें अपने देस की, लागत वास अनूप ॥४॥
परा सत मरु देस सब, खैंचत अपनी ओर ।
जैसे टूटे पतंग की, लूटत सब जन जोर ॥५॥
मोक्ष लियत दिस्या दियत, संयम कहा चलात ।
ज्यौं संध्या क मृतक कौं, कोलौं रोवत रात ॥६॥
मिक्रया करत सुसिद्धता, कहा तंत्र अरु मंत्र ।
विना वृषभ चाले नहीं, ज्यौं गाडी को यन्त्र ॥७॥
प्रगट करत गुन गुनिन कौं, बमत दूर तर बास ।
अंगुरी तें निरखावहीं, ज्यौं तार आकास ॥८॥

साधु संग बिन साधु जन, न करै दुष्ट प्रसंग ।
मीन सरल जल कुटल गति, उछलत गरल तरङ्ग ॥६॥
पिंगल की कविताय में, डिंगल कोस प्रसंग ।
तारिन में कबहू न दुबे, चंद किरन सौ तेज ॥१०॥
पहिली सोच विचार कै, कीजै कारज खेद ।
पी पानी पूर्छ कहा, होत ज्ञात के भेद ॥११॥
पार्छ पिछुताया किये, गरजन सरिहै कोप ।
मूआ फिर नहीं आवही, क्या सोचैं क्या रोय ॥१२॥
साधु डोर बिन गुन गुरी, उडै न घर पर जात ।
जैसें टूटी डोर जौ, पतंग हाथ न रहात ॥१३॥
सत्ता छिपत कारन करत, सो कबहू न ठगात ।
सीमा गसतस नींव कर्, कब प्रासाद बिगात ॥१४॥
अनुकंपा दानैं दिपत, कहा पात्र परखत ।
सम विसमी निरखें नहीं, जलधर घर बरषंत ॥१५॥
बिना चाहै सब ही मिलत, चाहै कछु न मिलंत ।
बालक सुख जोरावरी, माता मातो दंत ॥१६॥
जोलौं सुरता ना जगैं, तोलौं सुवक बिगाम ।
ज्यौं सुपन की वेदना, तौ लौं न जुवत जाग ॥१७॥

माता करै आहार कौं, बालक पोष लहंत ।
ज्यौं खिचड़ी मैं छोकली, धाक हुवैं सीझंत ॥१८॥
अति सीतल मृदु वचन तैं, क्रोधानल बुझ जाय ।
ज्यूं उफणते दूध कूं, पांनी देत समाय ॥१९॥
मत मन धृत गति अति चपल, निस्पृह तैं ठहिरात ।
ज्यौं सद औषध जोग तैं, चंचल हू थमजात ॥२०॥
क्रोध वचन क्रोधी कुहै, सुनि सुनि शीतल होय ।
ज्यौं मू छे फुलगार के, अगनैं बरत न कोय ॥२१॥
रोचक पूछैं मग्ग नर, एक सुनैं गुर बैन ।
सीप पुटैं मोती हुवैं, स्वात बूंद तें ऐन ॥२२॥
धन घर निरधन होत ही, को आदर न दियंत ।
ज्यौं सूके सर की पथिक, पंछी तीर तजंत ॥२३॥
बंधे करम जिन जीव नैं, उदयैं आवत ताहि ।
ज्यौं सौ गौ मैं बछरिया, ढूंढत अपनी माय ॥२४॥
पीछै प्रथम न प्रकृति जिय, है अनादि कौ मेल ।
सदा सयोगैं मिल रही, फूल सुवास चंपेल ॥२५॥
आतम रूप उद्योत तैं, मोह प्रकृति लय जात ।
ज्यौं अंधियारौ रैन कौ, दीपक किरन पटात ॥२६॥

गुर हस्त पारस परस सुनि, पुद्गल ही ठहिरात ।
देव पषूनी पतंग ज्यूं, गोत खात रहिजात ॥२७॥
ज्ञान क्रिया दो मिलत ही, शिव कारज सिधु हुंत ।
ज्यों मरता संयोग तें, मखि तप गरम भरंत ॥२८॥
अनुपूर्वी के जोग बिन, ऊंच नीच गति जात ।
जैसें पवन प्रयोग तें, चिहुं दिस घन फिरात ॥२९॥
परमत हैं कमार हैं, संग न कर परनार ।
ए रावण दृष्टांत लहि, बूझत क्यों न विचार ॥३ ॥
चाहत सोई मिलत तब, या सम खुसी न और ।
मेहागम सुनि गरज सुनि, ज्यों चित हरषत मोर ॥३१॥
राग रंक इ सम लखें,* तिन न हरष मन कंद ।
ज्यों चिकने घट पर कछू, ठहिरत नहिं जल बुंद ॥३२॥
जैसी देखत फूटत तरु, तैसें शीस फिरात ।
डोर सहारे हाथ के, ज्यों चकरी छुटजात ॥३३॥
अंगी जैसे आंख बिन, सहे अंग को मार ।
बिन काजल फीके लगे, सोरें तिम सिंगार ॥३४॥
इ सुमिरन तव को निजर, (दृ०) नृपते भरम करांहि ।
पतरी चदरी तें भरक, सुख सनमुख निरखांहि ॥३५॥

पराधीन जाकें जऊ, झूठ कहै सो सांच ।
ज्यौं बामन की गति चलत, नचति वाहु पर नाच ॥३६॥
सिसु जनमत माता मरत, फिर अघार न रहात ।
हीरा टूटै गगन तें, नर धर पर पग जात ॥३७॥
राज सेव तें राज की, सेवा रीत लखाय ।
शब्द साधना बिन सधै, सबद अरथ न कराय ॥३८॥
सीखी चितवन चितवनैं, राग बिरागी दीठ ।
तिय रागैं माता लखै, राग निज्जर कर पीठ ॥३९॥
काम अकाज न लोभ बस, गिनत न दुख सताप ।
ज्यौं द्विज पइसा दांन तें, मोल लियत पर पाप ॥४०॥
नव पल्लव बनराय सब, बिन जलधर हो नांहि ।
सघन सदल बादल करै, ज्यौं परबत की छांहि ॥४१॥
रोस पोस नरपति धरति, अनुचर जाय न होय ।
सूर उदै अति मद द्युति, ज्यौं ससिवर रग जाय ॥४२॥
खल त सी उपगार कर, मानत नहि इक सोय ।
विसहर दूध पिलाइयै, सोइ विषमय होय ॥४३॥
मन फाटे कू मृदु बचन, कहा करत उपचार ।
टूक टूक कर जुडत फ, टांका देत सुनार ॥४४॥

जठरागनि दीपति दुवति, भूख लगत विहवार ।
करत जुदाई माँ गई, केरां किये करार ॥४५॥

रकम टूक कर नाम लखि, टुक टुक मौरा लेत ।
रिझवारी दरसी करत, ज्यों सीमन कर बेंत ॥४६॥

खेन दीपत काहू कछू, करत पुरुष की भेट ।
सरिता ज्यानि समद को, हम तें भरिहै पेट ॥४७॥

की अचेत चेतत नहीं, छिन छिन छीजत आव ।
इक रंग पल ठहिरै नहीं, ज्यों लोहै का ताव ॥४८॥

तपधन आगिव पहिचनै, आतम निरमल होय ।
ज्यों मैले वसनं करत, धोबी कमल धोय ॥४९॥

हाकी हाकया पुरस लिप, प्रगट निजर नहि दीठ ।
अति सुंदर सिसु बदन पर, दिखें दिठाना दीठ ॥५०॥

लगै प्रथम सब वचन कटु, अंति गुणनि कै हेत ।
ज्यों माली बाला दिये, तरु निगोग संकेत ॥५१॥

उदर भरन कारन सकल, मिलत न काज अकाज ।
पेटै पर सूरत परत, ज्यों तीतर पर बाज ॥५२॥

लघु मुख मोटी बात तें, नर्हां न दस्या आंग ।
मरणुपखे   आवही, ज्यों चींटी कै पांख ॥५३॥

शब्द न्याय अलङ्कार घन, सबही करत अभ्यास ।
पै परमब की सिद्धता, न करत ताहि प्रयास ॥६३॥

झूठी माया जगत की, पकड़ी; माघ समाज ।
कबहु न हुय फल सिद्धता, ज्यों सुपनें का राज ॥६४॥

तनु सुभाव कबहु न सुद्द, जीव मिम हो जांहि ।
उत्तम सुभावे मिष्टता, ह्वै कटु रस कम नांहि ॥६५॥

तीक्ष्ण रुचि करतग मिन मोह दुर्जन हाथ ।
करिवर कुम प्रहार की, कारस हरि तें होय ॥६६॥

रागी क मन प्रीत है, रागी वस्तु अचाप ।
मृग मरते की वांस ज्यु, गाय गाय कछु माय ॥६७॥

बर कवि कृत कविता बहुत, नई करन को हेत ।
मरम ताहि तें जानना, बुद्धि परीक्षा देत ॥६८॥

बड़े पुरस क उदर में, बड़ी बात रहिजात ।
ज्यों करिवर क पट में, नौ मण मात्र पचात ॥६९॥

मन प्रदेश माया मिलत, छूटे छिनक न छुटात ।
ज्यों कथाकथ पारद करत, चिपत चिपत चिपजात ॥७०॥

लज्या यौवन मूल मय, लज्या तनु शृंगार ।
लाप सीम पर बार पै, निरमै खेलत नार ॥७१॥

अनुभो अमृत पांन तैं, मिथ्या ताप मिटाय ।
गद सद ओषद जोग बस, तनु तैं तुरत घटाय ॥७२॥
चोल मिलत नहि मन चहत, श्रम कर दिन दिनरात ।
पर नारी दग निरखियत, कौन नफा हुय भ्रात ॥७३॥
बाल ज्वांन पुन वृद्ध वय, भिन्न अभिन्न अभाव ।
भीतकाल में सीत को, भूलत नांहि सुभाव ॥७४॥
हेतु सरस लांछन रहित हेत्वाभास कहाय ।
क्रम रहित करता कहै, अजा कृपांणी न्याय ॥७५॥
कोई कछु कहै कछु, कहै आतमा राय ।
जिनमत बिन सब मत कथन, अंध गयंदै न्याय ॥७६॥
एक एक हूं परसपर, अपनैं मतैं अघाय ।
पेरत मत इक एक को, सु दु पंसुदैं न्याय ॥७७॥
एक कथन मांमे कथन, इह लाछन है न्याय ।
पुष्ट करत थापित थलैं, कर्दम मुकलक के न्याय॥७८॥
सिद्ध ससारी भाव दो, है अन्योन्य अभाव ।
केवल दीपैं ग्यान दग, भासै शुद्ध सुभाव ॥७९॥
मांखी और कसाह की, दरकारी निसपत्ति ।
संयम नांमै सम्मती, इह निसपत्ति बिपत्ति ॥८०॥

इस न्याय का जिक्र ज्ञान-दर्पण चौबीसी बालावबोध में भी किया है ।

मन चाहत सो मिलत नहीं, बिमना तउ न बुझाय ।
जो चाहत सोई मिलत, तब कब घटत चलाय ॥८१॥

आद मध्य अरु अंत वय, विसम न सम सब भात ।
खान पान निरोग तनु, पुण्य लछन कहिलात ॥८२॥

सात न दरसत विसासपत, दान दियन को बात ।
दुरलभ लोभ अचित गति, सचित धन मर जात ॥८३॥

एरंड बीज रु धूमगति, सहिबै ऊंची हूंत ।
करम रहित तैं सिद्ध की, ऊरध गति लोकंत ॥८४॥

नव अंग टीका अर्थ कूं, पढ़िपत तर्क प्रसंग ।
बिनो बटाइ नां चढ़ै, ज्यौं कसुम को रंग ॥८५॥

विद्या सब के पढ़न को, पोथी पूढै सार ।
सांच चढ़ै बिन नां चलै, ज्यौं धारा तरवार ॥८६॥

पंडित मूरख बात कूं, बरन लरन इक लेख ।
बिना मसारै नां बुझै, नैनां काजल रेख ॥८७॥

कुसम करत तरु बर फु, तब निरोग फल होय ।
सुरतारौं बिन गरद की, ज्यौं मस्ती नहि होय ॥८८॥

विमल चंद मुख की झलक, घूंघट भीनै चीर ।
ओट छिपत चक्खापती, छिप निकसी को बीर ॥८९॥

उष्णकाल में प्रात की, सीतल समीर सुहात।
वही मध्य दिन संग तें, अगन रूप फरसंत ॥९०॥
दुष्ट संग बिन दुष्टता, कैसे हूं न लखाय।
प्रगट दस्सवैकी गरम, कांजी दूध मिलाय ॥९१॥
सुरि बन फल कूं कारियें, तो मड़तें भस खाप।
जो फल तें फल विलसिये, सब तरु हरित लखाय ॥९२॥
सुकृत या भव में करत, भव भव फल दिखलात।
ज्यों नलेर के पेड़ में, सींचत अस फल आत ॥९३॥
पुण्यवन्त नर की प्रकृत, ऊंची तक मृदु होय।
जैसे भर दुरगंध भर, घनधारा सम धोय ॥९४॥
है संसार अनादि सिद्ध, करता कृत कहिं काय।
बिन बसन्त बनराय सब, क्यों पल्लव नहिं होय ॥९५॥
देखें मोमा जैन की, मिथ्या मन होत ससोक।
बरषा ऋतु तरु हरित लखि, आत जवासा सूक ॥९६॥
चंचल मन थिर करन कों, निस्पृहता उपचार।
रूखो अमचित पाक को, सोखो नहिं संसार ॥९७॥
जिनराग बिन जैन मत, फीको लगत अपार।
सरसा बिन सोभै नहीं, ज्यों तिय तनु सिंगार ॥९८॥

आतम अनुभौ होत ही, छुटत रंग अरु संग ।
ज्यों अमृत के पान तें, अमर होत सब अङ्ग ॥९९॥

मध्युपाय कवलि करै, समक्रम आयु बसेष ।
जिती चंद्र पख चांदनी, ज्यों तमपख तम लेख ॥१ ॥

अब अमचारी मुदित भट, नमुदित कायर चाहि ।
घर वरघर की कांहिला, दोनूं दिस छुटै नांहि ॥१ १॥

परम पदना निरूमर्त, विसरत जगत तमांस ।
रवि समयें पर प्रमन तुस, मूल मात ज्यु गांम ॥१०२॥

हठ पुरुष हित सीख दे, सो नहि मांनत ज्ञान ।
कदुक लगे गुर मे कुपक,* ज्यु गुण करत निदांन ॥१ ३॥

स्वारथ के सब जगत बस, स्वारथ बिन नहि हेत ।
प्रसवत पय पशुआत गौ, खात मरें नहि खेत ॥१ ४॥

तनु दीपक हित आयुघित, बाती निसदिन भेख ।
वपु दीपक उजियार मैं, तेल जहां लौं खेल ॥१ ५॥

ब्रह्मा-विष्णु महेश कहि, पैसा पोषक नाम ।
उन बिन ब्रह्म हैं हो रहे, इह विरोध आभास ॥१ ६॥

हुकम बिना पत्ता हिलै, पसें क्या मक्रूर ।
क्यौं साहिब नहि कर सकै, इह पख जग मंजूर ॥१ ७॥

---

* कटुक चिरीत ।

जिन मूरति मन थापले, क्या पूजा क्या भेट ।
याद किये मन सजन को, क्यों नहि भरिहैं पेट ॥१०८॥
मादि पुरुष हम राम कों, जो चरणामृत लेय ।
ई दही वैकुण्ठ धर्म, क्या तुम धारी देह ॥१०९॥
राग रोष स करत जिप, प्रकृत पुरुष निरभ्रंस ।
पानु मिम मनही करत, ज्यों नाहर की मूंस ॥११०॥
मशा प्रवचनमाय दुग, र्यां आकाम (१८८०) समास ।
मंगल मास मास पुर, विक्रम दस धामाम ॥१११॥
इक मय मव दोह सुगम, प्रस्ताविक नवीन ।
गणवर भट्टारक गई, ज्ञानमार मुनि कीन ॥११२॥

इति प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सम्पूर्ण

———

श्रीमद्ज्ञानसारजी कृत

॥ गूढ (निहाल) बावनी ॥

([illegible])

॥ दोहा ॥

पांच मांस पर पाउं लग, टाढो अम्बरनि हाल।
हिलत चलत नहिं नम उडत, कारण कौन निहाल ॥१॥
हाथ पाँव नहिं पीठ मुख, मरत भुगन सी काल।
पीठ लगे बिन नाक चले, कारण कौन निहाल ॥२॥
धूम शिखा नहिं कर्मरहिं, मरत( ) अग्नि की झाल।
पानी मिलत ना बुझत, कारण कौन निहाल ॥३॥
हिलत हिलाग वेग तें, पहुंतो तरु की डाल।
इतउत चलत न आंगुरी, कारण कौन निहाल ॥४॥
यही सरोवर जल भर्यो, यही पथिक लग भाल।
पानी बुंद नहिं मिलत, कारण कौन निहाल ॥५॥
घटा बीज जलधार लखि, दादुर★ पपिपन बाल×।
पर सुख बूंद न परत इक, कारण कौन निहाल ॥६॥

मही चक्रत ( ) मरति ★ मोर × बाल।

१ [illegible] है। २ [illegible] है। ३ [illegible] है। ४ [illegible] है।
५ पानी [illegible]। ६ [illegible] है।

माघ मास पिय आवही, सुनि बिलखी भई बाल ।
मात पिता हरषित भए, कारण कौन निहाल ॥१४॥

मात पिता सुत जनम ते, हरषित होत कंगाल ।
सुत निरखत बिलखित भए, कारण कौन निहाल ॥१५॥

विप सुन्दर सुकमाल गात, पीक दिखत रँग लाल ।
हाड़ मांस लोही न नस, कारण कौन निहाल ॥१६॥

हाथ पीठ पर पांव बिन, चलत वेग गति चाल ।
गेरत तस्कर घर गर्दमि, कारण कौन निहाल ॥१७॥

कहित हजारों कोश के, समाचार तिहकाल ।
दन रदन रसना रहित, कारण कौन निहाल ॥१८॥

ांव पट पर पाँव बिन, ऊड़त ज्यों खग चाल ।
ंगा सहार नहिं उड़त, कारण कौन निहाल ॥१९॥

ांखी चितवन दग झलक, लखित दिखाई लाल ।
र्ती रूप कर ठठ चली, कारण कौन निहाल ॥२०॥

१४ स्त्री रै प्रथम दिवस ऋतु री वे । १५ पुत्र पोढी । १६ [illegible] [illegible] । १७ [illegible] [illegible] । १८ [illegible] । १९ [illegible] । २० [illegible] ।

ससि बदनी मति पूर्ण सति, मेट दिठौना मास ।
हरत नखत रूप पूतरी, कारण कौन निहाल ॥२१॥
गौ बछरी सु खावही, इह सुभाव सब काल ।
मात सुता न सु खावही, कारण कौन निहाल ॥२२॥
दावानल बन बन जलै, पर* तरुवर पतालाल ।
तत्तखिण सूख इक ना जलत, कारण कौन निहाल ॥२३॥
फूल पान जड़ पेड़ बिन, सूकी तरु की डाल ।
फल चाखे सो को जिये कारण कौन निहाल ॥२४॥
शीश पेट कर पांव बिन, त्रिभग सुगति+ तिह काल ।
मन प्रेरै कबहु न चले, कारण कौन निहाल ॥२५॥
बूंद न कछु मोंघा बिकत, पईसे बिकत पताल ।
यह अचरज सब जगत गति, कारण कौन निहाल ॥२६॥

---

*पाठ +त्रिपती ।

२१ [illegible] । २२ [illegible] । २३ [illegible] । २४ [illegible] । २५ [illegible] । २६ [illegible] ।

अगर रकम पट मह दिसत, वर्मा पटत नहीं माल ।
माथ मिती सम दिमम नहीं, कारण कौन निहाल ॥२७॥
द्रुक फिये इक नग लखै, गिड़े सघन अविसाल ।
नर नारी ठाढ़े चमत, कारण कौन निहाल ॥२८॥
पाव बीस बिन भार मत, तास मरत विह ताल ।
घर घर पूर न होत इक,* कारण कौन निहाल ॥२९॥
शीश पाँऊ कर पेट बिन, वेग चलति अति चाल ।
दृढ कर गेरति ना+ अगति, कारण कौन निहाल ॥३०॥
परख बीस कर पेट बिन, सिखा कान सिर माल ।
अंगुरी एक चले नहीं, कारण कौन निहाल ॥३१॥
कठ कर इक लकरी पकर, हिलत चलत नहीं चाल ।
बोझ उठावत बहुत मन, कारण कौन निहाल ॥३२॥
पर न शीश पाँव न उदर, चलत चलावे चाल ।
रुधिर होत मानिस+ रुधिर, कारण कौन निहाल ॥३३॥

*मन भवन +भाग ÷आंख ।

२७ [illegible] । २८ [illegible] । २९ [illegible] । ३० [illegible] । ३१ [illegible] । ३२ [illegible] । ३३ [illegible] ।

दिन दिनकर दीसत नहीं, त्यों निशीकर मिसी कास ।
दस दिस तारे झिगमिगत, कारण कौन निहाल ॥१४॥
ताल भरयो जल देख कै, दौरे नर पशु बाल ।
पानी बू दिक ना मिलत, कारण कौन निहाल ॥१५॥
बिन पांखे उड़ जात नभ, उतर जात पाताल ।
देव महारा तब चलत, कारण कौन निहाल ॥१६॥
आठ पाँव सुर पशु नहीं, पुरुष चलावे चाल ।
हाड़ होंहि नहीं माँस नस, कारण कौन निहाल ॥१७॥
तिय पिय के संयोग बिन, गर्भ धरयो अति बाल ।
भयो पुत्र षट् मास में, कारण कौन निहाल ॥१८॥
कठिन होंहि कुरु भीतरें, जल बिन* निरम निहाल ।
अति अचरज देखत हुमत, कारण कौन निहाल ॥१९॥
परम विषम सम तिय मिली, गावत गीत रसाल ।
इक तिय चल भांड़ भरत, कारण कौन निहाल ॥४ ॥

* जल जन्तु ।

१४ सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण । १५ मृग तृष्णा । १६ पक्षी । १७ मिर-मिरी । १८ शीप संपुटित मोती । १९ बीरे री बात (पालनपुर-गढ़) ४ योगिन बहु जने मठोंसी बनी भानुमत ।

मध्य बीच गंगा चलत, मिह बिछाये खाल ।
उपवन शङ्कर शिव नहीं, कारण कौन निहाल ॥४१॥
चार हाथ तें मुख पकर, पानी पियत पताल ।
उलट भाल उलटी करत, कारण कौन निहाल ॥४२॥
कार्तिकेय नहिं षट् वदन, च्यार तु कूर्ते भाल ।
कान पांन इक इक* मुखे, कारण् कौन निहाल ॥४३॥
गोल पांव सू ना चलत, चलत चलाये चाल ।
अंगुरी एक सिसै नहीं, कारण कौन निहाल ॥४४॥
पग+ बिन उड़ै अकाश में, गिरत न लागे ताल ।
विद्याधर वर सुर नहीं, कारण कौन निहाल ॥४५॥
मात्र वाद्य संगीत तें, ताल चमक चौताल ।
निपुण नटी पग चुक धरत, कारण कौन निहाल ॥४६॥

---

*प्रत्येक +पर ।

४१ कार्मवर उपर बैठो हुए अथवा चोबे शिष्य अथवा दूधी द अथवा में पाणी भर्यो । ४२ चरस (कोस) अर्थ देरा बी कोस उपरे च्यार नांकी सरसी शिव मैं पल चांचे चरस करे उपरे बदनू भी सो च्यार हाथ अवस कीनरो मुख पाणी सीखे लिख द । ४३ चकरडक कहीए । ४४ कोसे सापी कारवे ए छिके द कोसे पग चाला । ४५ इसाँ ४६ नटी कहिए कली ।

प्राण वसो सु * इक नहीं, ध्यान बुद्ध नहिं वास ।
मरण जनम बिन जीव हैं, कारण कौन निहाल ॥४७॥
तुरत दसन बिन अन भखे, सरद करत विद वास ।
पेट भरत नहीं पुरसतां, कारण कौन निहाल ॥४८॥
प्राण नहीं मुख इक रहन, मदन विशाल रसाल ।
हदन मूत मुख में करें, कारण कौन निहाल ॥४६॥
ध्यान छठी मठ कर पकर, उन पिय पैठे वास ।
देत सहारा नम फिरत, कारण कौन निहाल ॥५ ॥
प्रात सुमत संध्या जगत, मृदु अति सुन्दर वास ।
बंध्या पुत्र दई नहीं, कारण कौन निहाल ॥५१॥
बिन पैड़ी चढ़दे चढ़े, समभंतर कर काल ।
मरण होत ही उड़ चली, कारण कौन निहाल ॥५२॥
मध्ये प्रवचन मांय दुग, सप्ता आद रु अंत ।
मिगसर वदि तेरस भई, गूढ़ बावनी कंत ॥५३॥
खरतर भट्टारक गच्छें, रत्न राज गणि सीस ।
आग्रह सें दीपक रचे, ग्यानसार मन हींस ॥५४॥

—इति निहाल बावनी संपूर्णा—

वन् वे ।

४७ पिहानता । ४ चारी । ४८ वासी । ५ बीकर होंगी ।
५१ बावनी सु अब्दोकलामात ताई पुन यहीं बावनी हु अब भी
अस्ति ताई वंध्यामात । ५२ मिह ।

श्रीनवपदजी पूजा

दोहा—च्यार घातिया क्षय करी जेह थया भगवंत ।
समवसरण ऋद्धे सहित वन्दूं ते अरिहन्त ॥ १ ॥

ढाल—सूरती महीना नी ।

अनंत भवे अविसेस वि सव थानक तप सेव ।
बांध्यो जिन जिन नाम, एग भव अंतर एव ॥
राय कुले अवतरिया चवदे स्वप्न समथ ।
शुभ लक्षण सूचित शुभ गुण शुभ माता पथ ॥ १ ॥
जनम महोत्सव करवा दिशिकुमरी सुर इंद ।
आवे एक एक थी आगल हरख अमंद ॥
पग पग नाटक नाचे सुर कुमरी ना वृन्द ।
मेर सिखर नवरावे ध्यावें जिन जिनचन्द ॥ २ ॥
लाख अधिक देहे अतिशय होवें च्यार ।
तीन ज्ञान थी भाग भोग नो कर निरधार ॥
तज आगारी वन विहारी हुए अणगार ।
सब संत समभाव अमाई न अणगार ॥ ३ ॥
शुक्ल ध्यान में ध्यावे आतम शक्ति अलोह ।
क्षपगसेणी हुए परिहत जिण कीनो मोह ॥
केवल दंसण नाणी शुद्ध सरूपी ख्यात ।
चोतीसे अइसय युत अरिहन्त देव विख्यात ॥ ४ ॥

प्रातिहारिज शोभित सेवित सुर विहरन्त ।
भू पीठै चौथी गुण थी भव बोह जुयन्त ॥
जगजीवन जगवल्लभ जगप्रभु जग धाम ।
वार वार त्रिकरण शुद्धे माहरो परणाम ॥ ५ ॥

इति अरिहन्त स्तवना ।

दोहा —अष्ट करम दल निरदली, अष्ट गुण भाव समृद्ध ।
जन्म मरण भय निर्भयी नमूं अनंता सिद्ध ॥ १ ॥

देशी (सूरती महीना की)

अरिहन्त ना सामान्य केवलि कृत समुघात ।
अष्ट समुद्घाती शेषेथी कर्मे घात ॥
मण वच तणु ने रोधे जोग निरोधी होय ।
जोग निरोधी केवल ज्ञानी कहिये सोय ॥ ६ ॥
अणु तन थी जो इग करम सभी रहि सेष ।
बहुत्तर तेरे प्रकृत खपावे हिव नहीं सेष ॥
चरम आयु अवगाहन तीजे भागे ऊण ।
पहुंचा एग समय लोगंते सिद्ध अभूण ॥ ७ ॥
पुन्य प्रयोग असंगे कहिये बंधण छेद ।
भूम सुभावे ऊर्ध्व गति कहणो अविच्छेद ॥
इसी प्रमाण पृथ्वी पर जोजन लोगंत ।
पहली शिव गौ धोजन तेहनौ भाग अनन्त ॥ ८ ॥
नैय वर्णादि अगुरुलघुता असरीर अबाह ।
सब ज्ञायक दरसण गुण गति अनंत अथाह ॥

पाप मारै अतिशय भारी पड़ता भव कूप ।
पड़तां ने निस्तारे जे आधार स्वरूप ॥
मात्सरिक हित राखी स्मरै हित ना काम ।
तेहवी भक्ति हित करता धारै निष्काम ॥ १४ ॥
जे बहु जन समिता साधिका सार्थक ।
राय कमा शासन वन हरित करता भूईद ॥
जिन शासन गुरु मंडन कंचन वादीगुण ।
ज्ञानसार नित प्रणमें अभिनव शारद चन्द ॥ १५ ॥

इति आचार्य स्तवना ॥

दोहा —द्वादशांग सुतत्व ने पढे पढावै शीश ।
सूरत में पंडित करे, नमूं नमाणी शीश ॥

देशी (सहित)

पारसंग सुचरम ना पारग धारग भेद ।
समय विचार रुई वरगमावे तत्त्व पद ॥
जे पाहोंया समीप शीश न सूत्र नी धार ।
पाठ भणी ने पूजक करत लोक मझार ॥ १६ ॥
मोर सर्पं वसवै माठो आतम ठाम ।
तद अचेतन चेतन में करे चेतनधाम ॥
व्याप अनायें पीड़ित जे प्राणी ना मांय ।
गुरु अधीरै जे करे आतम स्वरूप नी मांय ॥ १७ ॥
गुणवर्णे मंजया मण गण रमणतुरा जे मांय ।
देनें सदा भवियां ने औषध मम मांय ॥

तेम दांन दिम मास झीवित नो ताणी श्रंत।
सुण मांणे जे श्रंत न श्रांणी सहु ने हित ॥ १८ ॥
श्रज्ञानय लोक ने ससमय सुख जे राख।
तेथी श्राख श्रतार निरोगो करदे नेत्र ॥
पाप ताप थी लोक तप्या जे श्रातम ताप।
शीत करे वायण चदन सम शीतल श्राप ॥ १६ ॥
युवराजा ने तुल्य सूरि पदवी ने योग्य।
गण नी तातें[1] तत्पर श्राक्या दे शिष्य वर्ग ॥
पारद थी कंचन करे तेहनी श्रचिरिज थाय।
ए पाहस थी रत्न करे मणमूं तस पाय ॥ २० ॥

इति उपाध्याय स्तवना ॥

दोहा —तोनूं विष सिपरिमही, मैले मैलो गात्र।
पीहर जे सद्धाव ना गुरु चरण ना पात्र ॥ १ ॥

देशी (लेहिज)

नाण दंसण चरित्त रूप रयणत्तय एक।
साधे जे मुख मर्मों साधक कहिये एक ॥
दुष्ट ध्यांन बे श्रार्त रौद्र तिगत करंत।
धर्म शुक्ल में ध्यावे दुविह शिक्षा सीखंत ॥ २१ ॥
तीने गुप्ते गुप्ता गारव तीनूं गाल।
पाले जे त्रिपदी ने वरजो तोनूं साल ॥
चौविह (विरह) विगह विरता च्यार कपाय नो त्याग।
च्यार प्रकारे धर्म परूपे रस वैराग ॥ २२ ॥

[1] —झीविन। २—तार्ने।

ते सम्यग्ज्ञान मातीन मिथांम समय परिसिद्ध ।
उवसम खय उवसम खायक परिणामनी वृद्धि ॥ २७ ॥
पणवारा उवसम खय उवसम होय असंख ।
खायक एक वार श्री अभिक न समपै संख ॥
धर्मे वृक्ष नौ मूल धरम पुर मांहि प्रवेश ।
धर्म भवन नौ पीठ धरम आधेय विशेष ॥ २८ ॥
उपशम रस नौ भाजन जे गुण रयण निधांन ।
एह सकल धरम जगतै आधार समान ॥
जे विण निफल थाय मांस जे विण अभ्यांस ।
जे विन मोख न जावै ए सिद्धन्त प्रमाण ॥ २९ ॥
जे सद्दहणा आदिक भूषण प्रमुख भेद ।
परणीवे सिद्धन्ते सम ए पांच पण भेद ॥
पद मोख भाखौ विण गंठे बांध्यौ होय ।
ए मिथ्ये श्री सिद्ध सजै विण बांदू सोय ॥ ३० ॥

इति दर्शन स्तवना ॥

दोहा : सर्वज्ञे प्रणितागमे जे जीवादि पदार्थ ।
मिल ० इक एक नें जांणे ज्ञान परमार्थ ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

सर्वज्ञे प्रणितागम तत्व यथार्थ प्रमांण ।
ते ज्ञान अबवाध मांण माहरे परमांण ॥
जेणे भक्ष्याभक्ष्य जांणीये पेय अपेय ।
गम्य अगाम्य वस्तु इण भक्त पहिमी भेय ॥ ३१ ॥

॥ आरती ॥

जय जय नवपद आरति कीजे सकल मंगल कल्याण लहीजे ।
पहिली आरति अरिहन्त सिद्धा, अरिहन्त सिद्ध अभेद प्रसिद्धा ॥जै०॥१॥
बीजी आचारिज गुण धारी, संघ सकल नी जे आधारी ।
तीजी उपाध्याय साधुनी ममय सोलवे सोहै तेहनी ॥जै०॥२॥
जैन तत्त्व सरदहणा रूपे चौथी दरसै भव कूपे ।
पंचमी सर्वज्ञे प्रणितागम तत्त्व रह्यो तेहनो निम अधिगम ॥जै ॥३॥
छट्ठी देश सर्व चारित्री करतां हुय काया सुपवित्री ।
बाहिर अभ्यंतर तप बारे सातमी आरति वारे वारे ॥जै ॥४॥
जे भवि भाव आरति उतारे शुद्ध मन दुर्गति दूर निवारे ।
ज्ञानसार नवपद आराधो औपाधिक शिव पद साधी ॥जै०॥५॥

॥ अथ नवपद स्तवन लिख्यते ॥

राग (पंजाबस)

भवि पूजा भावे करी नवपदनी सार ।
नवपद आतम भाव ने शुद्ध निजर निहार ॥भ ॥१॥
आतम गुण अपेक्ष नो नवपद आधार ।
पद अभेदोपचारिये, निज आतम विचार ॥भ०॥२॥
आतमता नवपद मई नवपद आतमता ।
नवपद मांहे परिणम्ये, निज गुण ना करता ॥भ ॥३॥
नवपद ध्याता भवि थया तिण आसे सिद्ध ।
ज्ञानसार गुण एक नो नवपद नव सिद्ध ॥भ०॥४॥

॥ इति नवपद स्त   ॥

सं १८८२ ज्येष्ट कृष्ण पक्षे १० तिथौ मंगलवासरे पाली ठाया नमरे ॥
सं १८४६ मि० फागुण वदि १२ दिन लि पं रत्ननिधान श्री
बीकानेर मध्ये ॥ पत्र ४ समाह में ॥

सप्त-दोधक

परणामी परणाम में, बांधै आठ कम ।
करे कर्म फल भोगवै, इहै जिनागम मर्म ॥१॥
पै जैसे परणाम में, वरतै आतम रांम ।
तैसी तैसी प्रकृत को, बंध कहावत नाम ॥२॥
मिथ्यात्वे चो प्रत्यई, करत कर्म को बंध ।
अविरत प्रकृति ति प्रत्यई, होत बध की सध ॥३॥
सत्तम गुण ठांणग हुवै, जोग कसायक बंध ।
करि है जोग संजोग में, होत अयोग अबंध ॥४॥
परणामी परणाम को, कत्ता कारण हेत ।
बंध कारणें कारणी है परणांम मु संत ॥५॥
कत्ता जो परणाम नहि, कहि है जीव मंबंध ।
ता ऽयोग गुण ठाण लहि, क्या न करै कम बंध ॥६॥
चेतन है निज रूप को, कर्ता तीनू काल ।
निज सरूप अठ सिद्ध की, भेदाभेद निहाल ॥७॥

इति श्री ज्ञानमार्गजिद्र्जि विरचितं सप्त दोधक

कहि सूधो खाई, पूवां खाई पाणी में धोती न्हाखे ॥
क्या पुरुष नारी बधु कुमारी क्या बेटी अरु क्या माई ।।पूरब ।।६।।
सब विधि नैं हलैं हमा हलैं रामत खेलै इक इकरे ॥
धमी इक स्वांगे मूरी बांधे पुरसा धांधे राड करें ।
इक न इक देखें इक इक ठग पड़ती दुख्या सें ल्याई ।।पूरब०।।७।।
हट बाहिर आई गहो रहाई क्या बहुआं अरु क्या सासू ।
कहि वेणी लटकै करइ फरके पाणी झड़के केसां सूं ॥
क्या छोटी मोटी क्या अपटोटी केस न बांधे लोगाई ।।पूरब०।।८।।
सिर चरच सिन्दूरे मांगन पूरे ताजू चूरे सब आगे ।
कहि चोटी बन्धे आधी दीपे कुच न ढंके सिर नंगे ॥
कर में मल चूरी खब न पूरो खाइ अपूरी बलि काइ ।।पूरब ।।९।।
के कानें खोंटी छाती माटी नकबेसर सें नाक भरे ।
आंखां घम रावै, कहवां सांसे, चलणां लचका लडक करें ॥
सामी रीसें निरखी रीसें रूप न दीसे इकराई ।पूरब०।।१० ॥
मलसूत्रा धारे वे संसार राखगम सूरीव वधी ।
क्या वरणूं महिमा धरणी पहिलां विध हुं आपके रूप धणी ।
ज नहिं निरलज्जा कथा सभा, परणी परणी में ल्याई ।।पूरब ।।११।।
कुच बांधे तापर गाढा आपड़ ईस महाई हाथ करे ।
पर गासें आवे बिन मन भावे दासी तापर नाम धरे ॥
मादर की आई बसे लुगाई पहिरे कांठे फिर आई ।।पूरब ।।१२।।
बनपद पश मच्छी मारे मच्छी क्या मोटा अरु क्या छोटा ।
क्या कोई धीवर क्या कुलि सिवाचर खाने पीमे सब खोटा ॥
क्या सइया करनी उनके मुरली, क्या बोलो अरु क्या माई ।।पूरब ।।१३।।

दिनकर दिन जारे घाव उधारे कौंसा मान सो झूठी ।
कश्यप के संगे, अंगो अंगे रमवी रंगे छूम पीठी ॥
कामन बस आवे रीसें मांसे कोकिल मना¹ मरि आई ॥पूरब०॥५९॥
सिंह पहुम नारी, सेझरयारी² करत केलै कुमरोदा ।
के नारी घरसें आरन फरसें ते उमें रहिसमोदा ॥
मलधर रो आवे पहरे आवे पिया पहवे में उमाई ॥पूरब०॥६०॥
इक नौका आवे दूजी आवे आवे इक ने इक सेती ।
के जारे रमावे, आपण आवे न करै नर सू केती ॥
यूं रहिन मझा केतो चला न्यारी नावां कर आई ॥पूरब०॥६१॥
कमाणी आवे माठी आवे नइया साली मिस गावे ।
सहु साली ताले बैठा आसे ममम्कणाखा मर दपावे ॥
अधर्म मन्मलिपा श्रीहा कालिमा भारी सहु सूबे आई ॥पूरब०॥६२॥
विरला नौ सोई, मन मम मोहे मांहे पैठा सब सहिरा ।
जल उपर मिन्दर, मोहे सुन्दर, मांनू मासी सुरगपुरी ॥
क्या शोभा कीजे, देख्यां रीझे, बरणन सूं बरणीनाई ॥पूरब०॥६३॥
बरसालो आवे नदी भरावे बधते पाणी विस्तरै ।
मचाणा बंधावे तेथ रहावे इक इक नौका भर द्वारे ॥
तिण ऊपर आवो सिखसु आपो, बलि अब मासी बनराई ॥पूरब०॥६४॥
नदी आसी चढ़ा बादल चढ़ा, माटी चढ़ा छू भरसै ।
नहि मोर भिंगारा दादुर सारा पपिहा पिव पिव पो बरसैं ॥
बिन बरसा काले क्या मौसाले, उजासे घन बरसाही ॥पूरब०॥६५॥
बहु कीचड़ मचवे बाधा विरचै अवसर परली अवचावे ।

१—भमिनी । २—सेजवारी ।

यूं चांपा चाम्पे हींगळ आपे जद सब अंगैं चतराई ।।पूरब०।।१०४।।
ज्युं नर ज्युं नारे एक विचारे सब अंगैं जद सम होई ।
फिर गूमें चीरे जद न विसीर मूदा खोटी क्या कोई ।।
नर एक नचाई पोतें पाई, चीर नदी को चोवाई ।।पूरब०।।१०५।।
कविराज्जा आवे माइ दिखावे सरस् सारसी क्या गोळी ।
देलंका देसो, पय सू हाथी स्नान पाम नहिं पय भेजो ।।
इक दूध पिलावे दूध खिलावे दूध पाड़ी खिच कढ़िवाई ।।पूरब०।।१०६।।
पाणी नहिं पावे, अन्न न खावे, दूधे मांवें ज्युं पावे ।
यूं देर दुसेरी घड़ी दुसेरी के दम हुंवी बच आवे ।।
जे दूध पचरसी रोगें पटसी दूध घटे, विण मर जाई ।।पूरब ।।१०७।।
इक दूध पाड़ी बिम पड़ी गड़ी इम, इच्छा वटिका विम पेखें ।
विषयरें कमावें गुटी बणावे जहिर मिलावे फिर तेसें ।।
कठे कफ आवे वीजु जावे मर जावे क बच जाई ।।पूरब०।।१०८।।
वीजु ही नामें ज्युं परिणामे, इच्छा वटिका जे जाबी ।
विण अच्छा आवे कोई जावे इच्छा वटिका विण दाबी ।।
मन शोध उतारे अंग समारे बिगरे देही बिगराई ।।पूरब०।।१०९।।
इक तेल बणावे आग जलावें अति ऊकळे जब आवे ।
जब अंगुरी दीजे जले न भीजे फरसें शीतल फरसावें ।।
यूं पेखी जावे न्यारी मांवें पाक तल सब कढ़िवाई ।।पूरब०।।११०।।
पिसकरें चांनो छाणो पाणी छानो वायु फिरावे ।
विण तेल लगावे के मरदावे पीछे न्हावे सब आवे ।।
जो पाक न पावे सरसू रचावे, तेल बिना क्षे न रहाई ।।पूरब०।।१११।।
इक माडें कोडी दोमि वोड़ी मनमाहर की माया दिये ।

भटी कम आवे काम न आवे कोयो निकमो कहिलावे ।
बीजां सीखावे, कामे आवे मूंधो सो कामे आवे ॥
अति दुष्ट कमाई करै सदाई निरखी नैणा दिखलाई ।।पूरब०॥१२०॥
नेम के सटकावे केसे स्यावे, पात पात कर छीलावे ।
सब कु सुकावे, फर सजावे मसमी पाखी मीलावे ॥
पाणी पसारें, कपड़ी डारे अब ऊकाले वकसाई ।।पूरब०॥१२१॥
गा मरण मुवासी ठामे मासी, कपड़ी पाखी ऊकाले ।
पु मस धोड़ावे कांठे आवे धोई कपड़ी पकवाले ॥
सब निधन होवे इण विध धोवे धन धर रखके धासाई ।।पू० ॥१२२॥
वा धावण धोवे सावण होवे धरणी चूनो मेसाई ।
अब आग पढ़ाई अति चौटाई, सावण किरिया वकसाई ॥
बा द्रव्य दुर्गंधी वस्त्र सुगंधी होवै केसे कहिलाई ।।पूरब०॥१२३॥
धमराय बस्याणु नाम न जाणु, दीठा वरु मे इण देश ।
ज बिनां न दीसे विरला दीसे, ते इण देशें सुविशेषे ॥
पण पंखी माला पुहा वाला, मरस सुरे मन पूराई ।।पूरब०॥१२४॥
दीसे विकराला, मारो वाला, पन माला स्यु तनु भला ।
फिरता रंढाला हर्मे न टाला मदवाला स्यु मतवाला ॥
मगस में दीसे भरिया दीसे बक दीसे मानुज धाई ।।पूरब ॥१२५॥
स्यु ही मुहाला स्यु पूंदाला मूंदाला अति मदराला ।
चाल चंचल वाला बोजलवाला वै चाल्याला हाथाला ॥
गज कुम्भ विदारे गैंडा मारे माणस री कथा कथिकाई ।।पूरब०॥१२६॥
गैंडा फिर यूं ही भरण स्यु दा होमे टामे फिर चीता ।
मिली में वेस माणस दामे पकड़ै तीस सुवदीता ॥

* श्री गौड़ी पार्श्वनाथाय नमः *

॥ श्री भाषा पिङ्गल छंद ॥

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्त सुसिद्ध पद, आचारज उवझाय।
सरव लोक के साधु कूं, प्रणमूं श्री गुरुपाय ॥ १ ॥

प्राकृत तैं भाषा करूं, भाषा पिङ्गल नाम।
सुनैं बोध बालक लहै, परश्रम को नहिं काम ॥ २ ॥

अलङ्कार सागर सबै, उपमा कैसैं होय।
बुध पूरण पावै सकल, है अनन्त दुर खोय ॥ ३ ॥

जो विद्या सब जगत की, इनमें रही मिलाय।
महोदधि के पेट में, ज्यों सब नदी समाय ॥ ४ ॥

पिङ्गल विद्या सब जगत, नागराज मैं कीन।
लोक बहिर पुर्वे करै पुन विस्तार अति लीन ॥ ५ ॥

शेष नाग पर्यो रहित कुमति विवेक तैं हीन।
लघु दीरघ गण अगण की, मरकटा किम कीन ॥ ६ ॥

सागर दुस्तर ज्ञान में, शेष नाग है सुदष्य।
एंद शास्त्र रचना रचै, सो नहि निपुण मनुष्य ॥ ७ ॥

य सब कल्पित पात है विद्या अवर निधान।
पूरण है इनतैं भयो पद भाषा को ज्ञान ॥ ८ ॥

---

१ दूर भेद कर ही
× पा.गद—ISSSISII ब ।SI ऽ।। ।।। म ।SSSSISISऽ

अथ लघु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथा —

लघु अकार इ उ ते मिले, त्यों ऋकार मिल जाय।
पुन ऌ अ ल ॡ ऋ रहस मिले, पाँचू लघु कहिजाय ॥ १८ ॥

अथ गुरु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथा: —

आ ई ऊ ए इस मिले, ए आ बहुर मिलाय।
औ अ अं इस कू मिली, ए सब गुरु कहिजाय ॥ १६ ॥
संयोगी को आदि में, जो लघु अक्षर होय।
ताकू ही गुर जाण के मात्रा गिणीजो दोय ॥ २० ॥
पद आदें अन्त गुरू, तैसे ही लघु होय।
होमपिक मात्रा चढ़े, लघु गुरु मानी सोय ॥ २१ ॥

अथ आठ गण लक्षण नाम वर्णनम् यथा :—(तोटक छन्दकलाब

मगणें गुरु तीन भगण कहै, गुर एक पुरै लघु दोय चहै।
जगणें लघु दो अरु मध्य गुरू, सगणें लघु दो पुन अन्त गुरू॥ २२ ॥
लघु तीन जहां नगणें भणिये, लघु एक पुरै यगणो सुणिये।
गुरु दो लघु मध्य गणें रगणें, गुर दो लघु अन्त करो तगणें ॥ २३ ॥

अथ गण अगण फल अफल वर्णनम् यथा —(पुनःतोटक छंद)

लछमी मगणे बल हो भगणें, रुज में जगणें सगणेंप मरें।
सुख आपु करे, यगणे नगणे, गमने विनसे रगणें तगणें ॥ २४ ॥

अथ पंचम नगणै सु तरल नयन¹ नाम छंद लक्षण वर्णन यथा–

मति गति रहति भवि करहु, नगन चव गिन चतुर मह ।
चरणतुरस लघु पद धर, तरल नयन इन पर कर ॥ २० ॥

अथ षष्टम यगण गण सु भुजंगप्रयाति(इकतालाह)नाम छंद लक्षण यथा–

जै च्यार यगन को साथ कीजै, मती बीस मत्ता सबै ठौर दीजै ।
यही पूर में भेद माश किया है, भयो राज छंदा भुजंगमया है॥२१॥–

अथ सप्तम रगण गण सु कामिनी मोहन(इकतालाह)छंद नाम लक्षण यथा·

वेद रागन की मेल यामें करे बीस मत्ता पदैं सबै मांहि भरे ।
पूर्व वासी इसी भांतके जोडिये, कामिनी मोहनौं छंद यौं कीजिये ॥२२॥

अथ अष्टम तगण गणसु मैनावली(इकतालाह)नाम छंद लक्षण वर्णनंयथा–

ठयो चार वेद तगाग हूं आया, बीसूं मत्ती मत्त भेली करे न्याय ।
भाखी इसी पूर्व में केशवी वाच मैनावली नाम सो छंद को भाख॥२३॥

अथ लघु गुरु प्रमाणिक नाराच (इकतालाह) छंद लक्षण वर्णनम यथा—

ब्रह्मति मत्ति रत्ति कहि बीस चार हू कला ।
मिलाय दै सु कीजिये सु य क सोलहू भला ॥
इकैक य क य धरै लहु गुरु प्रमानिये,
यही सु पूर्व बीच में नराच छंद जानिये ॥२४॥

१ तगण

सोरठा भेद:— पहिले कीजे ग्यार, तेरै ग्यारै दुतिय पद ।
चौथे मात्रा ग्यार कोजो । ॥५१॥

सोरठा दोहो— स्वच्छा मिध करतार, जग साम्भो सबै सुजस ।
तार सर्व ही ठार नहीं ठा सर्वो । ॥५२॥

अथ गाहा छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

चारें दो दस कीजे, अट्ठारह बारह दूजै दीजे ।
पद् नव चौथे गाई, पुब्बी गाहा माखो नाम ॥५३॥

अथ हम्माहा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

अठ सात मत्ता जिनमें चरण समकी हग दस मान ।
मयो पूर्व कवि मारग सुगमु, हम्माहा पहिचाम ॥५४॥

अथ कुण्डिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

पहिले पद तेरै धरै, दूजै में सोले कर दीजे ।
सर्व कुण्डलिका छंद की, गिन अट्ठावन मत्त कर दीजे ॥ ५॥

अथ चौपाई नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

पुर अठ मत्ता फिर कर सात, सब पद मांहि पसारै बात ।
अठ सग मत्ता कवि विधि धरौ छंद चौपाई ऐसे करो॥५६॥

अथ अरिल्ल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

दीर्घविक अक्षर पर कीजे, पै पद दस मत्ता गिन कीजे ।
लघु दीरघ की नियम न धरिये ऐसे छंद अरिल्ल करिये ॥५७॥

अथ तोमर इरण् फाल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

करिये सगण्यिक भाव, बलि ८ दो भगण्य मिलाय।
पद् तीन भ क गिरोह कहि छंद तोमर पद ॥५८॥

अथ मधु भार छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

सोरठा— कर धुर मत्ता च्यार एक जगन अन्ते धरौ।
भौ लक्षण मधु भार, भार करौ कवि लक्षि मति ॥५६॥

कहि ई पुकार शुद्धि वार वार। सुनिये जिनेश सेवित सुरेश ॥६ ॥

अथ विजोहा छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

अग्ये कीजिये,दोय दो कोजिये। यु गर्वे जोक है, सो बिजोहा कहै॥६१॥

अथ हरिपद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

सोरह मत्ता प्रथम करीजे ग्यारे बीजे जान।
चत्तर एक बोही कर दीये सो हरिपद पहिचान ॥६२॥

अथ ललित पद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

सोरह मत्ता आगे बीजें दूजे बारे आमें।
यही ललित गति ललित पद नाम छंदें पूर्व बखानें ॥६३॥

अथ अनुकूला छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

आद् बधारी भगन मिलावे दो गुरु आगें लघु चव लावे।
भ त गुरु दो फिर कर कीजै, यू अनुकूला समय कहीजे ॥६४॥

---

८ को

अथ हाकल छन्द लक्षण वर्णनम् यथाः —

इनमें मत चौदस मत्त, ऐसे च्यार पद कर मत्त ।
चौ अन्त एक पद गुरु होय, तिरचे समय हाकल जाय ॥६७॥

अथ चित्रपदा नाम छन्द लक्षण वर्णन यथा —

दोय भगण करीजै, औ गुरु दो पर दीजै ।
पूर्ण कला रवि[1] धामें चित्र पदा कहि भामें ॥६८॥
अम्बा कहिये तुम ही सु तू सब आप सबे सु ।
हो करुणानिधि तारो, मा भव पार उतारो ॥६९॥

अथ पवंगम नाम छन्द वर्णनम् यथा —

पहिली कर ग्यार, और दसहू करो ।
पदमें मत इकवीस, रगण अन्त करो ॥
वर कवि कर मति धरि, मरम अति को कहै ।
छन्द पवंगम नाम ज्ञानसार यों कहै ॥७०॥

अथ रसावल नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा —

करिये इक दस मात्र पछुर दस तीन मिलावै ।
सब मत्ता चौबीस, अन्तो च मेल मिलावै ॥
यति मति कर संभार नाम कवि छन्द रसावल ।
इह लक्षण पूर्वोक्त, सुगति मीठी कवि यों गुन ॥७१॥

१ रवि धामें

अथ पद्धड़ी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

अठ होय मेल कर यति दिखाय । पुनि पच एक भर पद मिलाय ॥
ल खे मद भ ते जगण होय । कहि पूर्ण पद्धड़ी छंद सोय ॥७०॥

अथ दुवहिया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा —

करिये मात आद मू सोलें दूजै दो दस मेलै ।
तीसरु आठ एक पद कीजै ऐसे च्यारु मेलै ॥
ओरेप एक क भर भ तें अक्षर नियमन कीजै ।
यही छंद को नाम दुवहिया पूरब मांहि कहिजै ॥७१॥

अथ शंकर नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

चर आदि की यति मत्त सोलें दूसरे दस फेर ।
इक पदे बीस रु पद कीजे, अ त गुरु लघु हेर ॥
ऐसे बरणावो च्यार पद कु, लखो लक्षण सार ।
मू कही मारग पूर्व सेती, छंद शंकर धार ॥७२॥

अथ त्रिभगी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

पुरतें कर दस की दूजी अठ की, फुनि दो पद् को कर तीजे ।
चोथी यति करिये पट मत्त मरिये, इन अनुसरिये सब कीजे ।
दस करिये त्रिगुणा फिर हा चरणा, पर्छे करणा पद संगी ।
पूरब में गायो लक्षण पायो, छंद कहायो त्रिरभंगी ॥७३॥

अथ द्रुतपदानाम छन्द लक्षण वर्णनं यथा—

पहिलै दस ला इक धरै दस दूजै दीजै ।
इम लक्षण सु द्रुतपद, नारण कहि दीजै ॥७४॥

अथ मरहटा नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा—

धुर तैं दस कीजै आठ धर लीजै, दीजै इक दस ठाम ।
गुरुलघु अन्ता सब संयुक्ता, अ त गुरु लघु धाम ॥
पद मत जुग आवै चरण ल्यावै, कवि[1] जति कर विसराम ।
नारण कहि करियै चाव उचरियै छन्द मरहटा नाम ॥७५॥

अथ लीलावती नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा —

धुर तैं जति एक अरै अठारैं, दूजी पद्य नव फेर करै
सब है बत्तीस कला इक पद मैं जैसैं अ्य ह माहि धरै ॥
इनमैं नहीं नियत अ क की गण की एक गुरु लघु अ त धरै ॥
लक्षण ए सोधो पूर्ण भाख्यो, यौं लीलावति छन्द कहै ॥७६॥

अथ पोमावती नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा—

धुरली विरत सोल की कीजै दूजी सोल इसी पर कीजै ।
सब बत्तीस कला मानीजै, यौं अ्मरू सम उचरीजै ।
अक्षर गण की नियत न भावै अन्तै दो गुरु निहचै ल्यावै ॥

---

१ मित

कहि नारच प पूर्वे गावे, सो पौमायति छन्द कहावे ॥ ७७ ॥

अथ गीया नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा:—

धुर साले कीजे एक पति में, फेर दो दम भेखिये ।
कर आठ बीसूं मात पर १मैं अपार ऐमैं मेखिये ॥
नहिं लघु गुरू का भेद इसमें, रगण अन्त राखिये ।
मैं कहूं पूरण कथन सेती छन्द गीया भाखिये ॥ ७८ ॥

अथ पैडी नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा —

इक दस दो धुरें धरिये त्यों पच दस संख्या कीजिये ।
न गुरू लघु का भेद पामें सब आठ बीस भर कीजिये ॥
अ क गिणती न इसी में, इक रगण अन्त वखाणिये ॥
पूर्ण सक की जुगत सूं यौ छन्द पैडी जाणिये ॥ ७९ ॥

अथ रुड् छन्द लक्षण वर्णनम् यथा:—

प्रथम्म चरणे मात कीजे पञ्चदस दूसरे तीजे आठ सग भर कीजे ।
चौथे कर दस एक, चौपद पद पांचमें दीजे ॥
राखा सगसठ मत्त कहि पायो पूरण धाम ।
सब यामें दोहा मिले रुड् छन्द कहि नाम ॥ ८० ॥

---

११ सब मैं

अथ कुण्डलिया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदै दोहा छंद कर रोडक आगैं देय।
चौथो चरण धरै लिखो सो दो बेर कहेय॥
सो दो बेर कहेय, अन्त पद एक करीजै।
इक तुक में चौवीस कला गिण गिण मेलीजै॥
मान्यौ लक्षण यह पूर्व के मत समझावै।
इह कुण्डलिया नाम लिखै तुक अन्त ले आवै॥ ८१॥

अथ कुण्डलिया छंद,मुनि स्तुतिर्यथाः—

पकी आठ मुनि वनन की, पीत एक नहि दोय।
वे फिर फिर चेजो चुगै, फिरै गोचरी सोय॥
फिरै गोचरी सोय, रात दिन वन में वासा।
एक दिवस प्रभु विरद्व बड़े तक पंच प्रवासा॥
पुन निहचै मही रहै, ध्यानकै दिस दिन मंडी।
कहै नारण कवि मंति, मुनी जे आतम दंडी॥ ८२॥

अथ कुण्डलिनी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

जिसमैं चारै मत्ता कीजै अठार पद इस चौथै रोडक आगैं दीजै।
मध्यं पूर्व कुण्डली कर एक कुण्डली छंद बनै है बेर मयोजै॥
इकसो तेपन मात सबै पद मैं कर दीजै॥

और नहीं कछु भेद अन्त आवें गुरु इसमें।
मिले यही है रहिस, परम ते गाहा जिसमें ॥ ८३ ॥

अथ रंगिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आठ जो कीजे प्रथम लाय दूजे में आठ मिलाय।
तीजौ आठ पद्र कर तकत विचार ॥
योंही कवि [१२] समझ कर्हन,सोई साधु विचक्षन पूर्व कथन प्रमान
करो ऐसें चकार ॥
और गण की गिणत नांहि त्योंही मात्र कीठ [१३]ठांहि
परल बरवतीस एक गुरु चार अंते गुरु अरु लघु चर और मांहि भेद फिर
ऐसी मात्रा कही छंद रंगिका उचार ॥ ८४ ॥

अथ रंगी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

पहिले जो पांच आनिये दूजे सात ठानिये
तीजे एते आनिय अंत पांच है।
चरन अठाबीस धरो, पू च्यार गुरु भरो,
याकी चाल यों करो या जुगत है।
लघु गुरु अन्त राखिये, कबकबी भाखिये,मति भव राखिये आ तकत है।
गुरु लघु गिणत नहीं, यही कामसी सही,
पूर्व मांहि एक ही रंगियी कही ॥ ८५ ॥

---

१२ जित १३ कीन १४ चरन

अथ मनाहर नाम छन्द करणम् वर्णनम् यथा —

पुर तें सवार कर धरो बरन पोडस वार्तें आगे मरे आठ फेर सात कीजिये
सर्व ऋबीस कौ प्रमाण आन एकै पद
ऐसे मति प्रकृति तें चार आठ कीजिये ॥
यामें लघु दीरघ सु नियम नाय मेद नाहि
अत मांहि राय सोय लघु गुरु चाहिये ।
मेद छेद पूर्ण देत, कह्यो सो अछेप लेत
नारयण कहत याकू मनाहरी कहिये ॥ ८६ ॥

अथ दुर्मला छन्द नाम सवया वर्णनम यथा —

वर आठ सगण मिलाय मरे, पद मेद यही कवि आन करौ ।
इस एक पुरैं सब मक बनावहु बीस रु चार विचार धरौ ॥
इनमें कछु और कहे नहिं मद, कला बुध तीस नहीं बिसरौ ।
कहि नारण मध्य सुनी इस बानिहि, दुर्मल छद सही उचरौ ॥८७॥

अथ पचगपद छद सवया वर्णनम् यथा —

आद गुरुव मगम्न करे, सग एक परे गुरु दो फिर दीजै ।
तीस रु बीस मिलावहु अक्षर, मान बत्तीस सबै गिन लीजै ॥
बच्छन न सुजान बनावहु, मेद इसी इन सु समझीजे ।

मत्त मतंगज चालत नारय मत्त गयंदहि छन्द कहीजे ॥ ८८ ॥

अथ कड़खा नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा:—

कीजिये दोय पद माहि दस दस फिरि, तीसरे आठ दो सात मेल।
सब मत तीस अरु सात ऊपर धरे, दोय गुरु अ त में सही मेले ॥
राग कड़खा कहै, चाल याकी यहै, ५ दास दे तान सु माम आवे।
कहत इनको गाहो छन्द कड़खा कहो, पूर्व के कथन सु मति मिलावै ॥८९॥

अथ झूलणा नाम छन्द लक्षण वर्णनम् यथा'—

मिले आठ पगाष्ट की साथ याके कहु, और तो भेद याको नहीं है।
सबे मत्त चालीस चालीस पूरी करो, अ त चौबीस यामें सही है।
कभी चवार ऐसो करो, चाल याही करो, सबके झूलणा यों सुनावे।
सुर दास दीजे इसी गत्त लीजे, कही दास तो झूलणा छन्द पावे ॥९०॥

अथ सवैया छन्द लक्षण वर्णनम् यथा —

पुर से विरत करी दस पर सु पद दस की दूजी कर मेल।
सब मत तीस एक कर पद में अ त गुरु लघु अ त मेल ॥
और न कोई गण की नियम, अ त न गिणती यामें थाप।
मेवाड़े में चाल इसी की, मारग छंद सवइया सोच ॥ ९१ ॥

अथ षटपदी जात छ छप्पय न छंद लक्षण वर्णनम् यथा —

महि कहु दीरघ नियम, भाठ सौल मत करियै।
ग्यारे तेरे कय कल, भाह गुरू भरिवै।
एक रखाह्म माम, दूसरे वस्तुक कहिमै।
चारें ये भी मिरत पच दस तेरह भहिम।
सब पद पद यानैं है रहे, इनमें भर अठवीस महि
कामी गति यूजा भाव पर छप्पय छंद कविता कहि ॥५२॥

अथ साडी पूर्व देशीय रागवी सम्बन्धित साटक नाम छंद

लक्षण वर्णनम् यथा —

आदि हो दस भ क मिलक कीजे दूजे करे साष्टू।
पहिले मत हो सात माव कीजे पीछे भर भारक
पनरे दूजा भार कहा करिय, म ते गुरू राखिये
पद में नौ नौ एक वरण भरिय पूर्व कह साटक ॥५३॥

अथ सु मय छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

मगन दुष भरोवै, सु भठ भरन कीजै।
दुम गुरु भर भन्ते सुगव कह समते ॥ ५४ ॥

अथ कमल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पद्य भरन साधियै कहु सदु भाराधियै।
रागन धर भ त ते, कमल इस मंद ते ॥ ५५ ॥

गिन पट दसहि वर इसमहि कला पया दस वरण विद्[59]इह शरिकला ॥ १२० ॥

अथ मणिगुण निकर नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:

प्रथम चव नगण सहित सगन सू चतुर चतुर पद करइ सुविध सु भवर सवहि लहु गुरु चरम धरे अठ सग अति शुभ मणि गुण निकरे ॥ १२१ ॥

अथ मालिनी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा।

नगन युग करीजे फेर मगने धरीजे यगन यगन दीजे पाव पूरो भरीजे इन विध रचनायें साधिये मेद पायें लहु युग युग दासें मालिनी छंद मायें ॥ १२२ ॥

अथ प्रमद्रक नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

नगण करे प्रथम्म जगर्ण धरीजिये नगण्ण जगण्ण धार रग ठ्ठवत्रीजिये। करहु सुधार मात पद तीन रुद्रकं, इह विध छंद आप कहिय प्रमद्रक ॥ १२३ ॥

अथ एला नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

चहिके धुरे सगन जगन धर दीजे चलते शुप नगन यगन धर कीजे पया कीजे ते मत नव दस कर मेला, इमते कहे बुध वर कवि मर एला ॥ १२४ ॥

अथ चन्द्रलेखा नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

> चारे धारे मगण्णें वारो रगणणे [60] करीजे,
> चारो मगण्णा रासे स्यू यगवणा दोय दीजे ।

अथ मंदाक्रान्ता नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा —

आदै धारे दो मगण्यौ अति ललित मति करहु वर नगणे,
ता पाछे दीजे नगण्यौ सरल बहु बखन भगन लिख भणी।
यों सें कीजे चरन पाया इक लहुव गुरुन चरम फिर धरे,
मंदाक्रान्ता नामै छंदा चरनन पद दस अति सुचि करै॥१४१॥

अथ तन्वी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आद करीजे भगन फिर करे तगण्य और नगण वर दीजै,
फेर सगणे करहु भगण जु धारि तबे पुन भगण करीजै।
दाय[1] नगण्यौ फिर यगण करे प्यार सुधार करहु जब मिल्ली,
होय इसीके अति पद सम हैं दो दस हैं मति वर कर तन्वी ॥१४२॥

अथ क्रौंच पदा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आदिम धरी मगण्यौ पुन करहु भगन बहु वर धर कै,
तहि तबै दै पद सगरबे पद धर अठ अति वर धर मिल कै।
लघु हि करीजे फेर नगण्यौ नगण चतुर गुरु इक चरन गहै,
क्रौंच पदा से नाम भयीसे लिख लक्षण कवि जनहि कहै ॥१४३

अथ भुजंग विजृम्भित नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आदै धारे दो मगण्यौ फिर तगण बहु गुरु तुम पदवदि दीजिबे,
पाछे धारे दो नगण्यौ प्रवित भगण विभुव रचे रपरिपद कीजिये।
ताके आगे सगरबो के अठ दस दस अति मिल के भली पद कीजिये

---

१ दोय

—इति छन्दानि—

॥ इति माला पिंगल छन्द सूची सम्पूर्णम ॥

परिशिष्ट (१)

अवतरण संग्रह

पृष्ठ पंक्ति अवतरण

३५ २४ "अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाडियो चिट्ठइ।"

१५६ ११ „ „ „

३६ ११ यत्सत्त्वे यत्सत्त्व अन्वय तदभावे तदभावो व्यतिरेकः।

४१ ७ 'तिन्नाणं तारयाणं'। (नमोत्थुणं से)

४१ १८ अन्वय लक्षणमाह—यत्सत्त्वे यत्सत्त्वमन्वयः स्वरूप सत्त्वे परमात्मता सत्त्वं नु अथ व्यतिरेक लक्षण माह-तदभावे तदभावो व्यतिरेकः स्वरूपाभाव परमात्मताभावः

८१ ६ न रंगिज्जा न मोहिज्जा। (आचाराङ्गे)

२५६ १६ „ „

८१ १६ "आरंभे नत्थि दया" दयामूले धम्मे पन्नत्ते।

२५६ ७ „ „ „

८१ २० हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ

२५६ ६ „ „ (पच्चमाणे)

८७ १० पूयानिरारंभिया।

८२ ६ अयुक्ति—मारे मत के ममत के करे अपाइ घोर।

जे आपण मत में नहीं, कहे जिनागम चोर॥

(मतिप्रबोधछत्तीसी पृ० १७८)

८४ ५ असमर्थ सुपयत्नाले अनुकम्पा विष कितिदानं च।
तुम्हवि मुक्खो भणिओ, तिन्नवि भोगाइया इंति॥

८५ ~४ मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो ।
(पारवचनीति पार्श्वनाथ चरित्र)

८५ ६ आगम आगमधर मैं हाथे नावें किम विध आंकूं।
किहां किणे का हठकरिने हठकूं तो ग्यान तणी पर
वांकूं हो।। (आनन्दघन कुंथुजिनस्तवन)

८६ ६ पिवहारा विहुयाणं जं इक्कमत्थेय वंदण करिहा—
आवस्यक-निर्युक्ति

८६ १२ किरिया वइपत्त समा १८४ १६ ३६७-५ ३९६-८
४१७ ३ (स्थानांगे)

८७ ७ आत्मदर्पन कहै—"निहचे एक आनंदा
पुनः निहचे सरस अनंत (पद नं०)

८८ १७ सुयुक्ति—आगम युद्ध सम्यक्कौ, कारण जिनमत एक।
इससे मति संपरर जीव कियौ एक मेक॥
(मति-प्रबोध छत्तीसी देखो पृ० १९४)

१४१ १६ अथ मिछामविति अर्थं विना स्थापति स्थानो मवति
अन्न महायक प्रसम कूराति निष्पति पावत् बसुसमुद
तपमवीसितु सद्यानुवद् च पतुव कूराति मात्तरेव मुंके
कूरगडु च भाव इत्यर्थ [भगवती सूत्र]

१४१ २० सम्मेसु पि तवेसु कसाय निग्गह सर्मं तवो नत्थि

न तेण नागदत्तो सिद्धो बहुसोवि भुंजंतो ॥
[पुण्यमाला प्रकरणे]

१४२ १८ वर्षति मेघ कुणालायां, दिनानि दस पञ्च च ।
मूसलधार प्रमाणेन यथा रात्रौ तथा दिवा । १ ।

१४३ १४ "जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहोय वडूढ
दोय मास कयय कज्ज कोडीएवि न नडूढ ॥"
(उत्तराध्ययन सूत्र अ० ८ गा०१७)

१४४ १० अनृत साहसं माया मूर्खत्वमति लोभता ।
अशौच निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥

१४४ १६ "निबहार नवप्पोग्ग तिरयण्णओ जओ मणिओ ।"

१८१ ६ १८६ ५ ३६४ ४ ,, ,,

१४५ १६ "ज्ञतेज्ञानान्न मुक्ति" अनुभूतिस्वरूपाचार्य कृत व्याकरण

१४८ ६ १८६ ३ ३५८ ५ ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष

१४८ ६ हयं नाणं क्रियाहीणं हया अन्नाणिओ क्रिया

१८६ पासंतो पंगुलोवड्ढो धावमाणोय अंधओ

४१५ २० ,, ,, ,,

१५० ६ कालो सहाव नियइ पुव्वकर्मं पुरसकारण पञ्च
२०१ समवाए सम्मत्तं एगंते होइ मिच्छत्त ॥ १ ॥

१५१ १६, १८५ १५ १८६ ५ ३६५-२० एगंते होइ मिच्छत्त
(उपर्युक्त कालो० श्लोक का चतुर्थ)

१५० १३ आलंबन—कास्तकवपि कदि पंथनिहाम्मं (अमित-
स्तवन)

१८२ १५ डूवत हारी रे मुनियन याहू गाम। डू०।
जिन वूड्या तिन पाइयो, गहिरे पानी पैठ
हूं भूली डूबन डरी, रहिय किनारे पैठ। डू०।

१८६ ५ नमुक्कारसी व्रत नहीं, करतो क्रूर आहार
भावशुद्ध ते सिद्ध हैं कूरगडू अणगार
भाव शुद्धता यों भइ, यों क्ष्याक्रिया की वार
दशाहार भुगते गयो, हत्या कीनी च्यार
(श्रीमद्कृत भावच्द्रत्रिंशिका)

१८६ २३ पढमे पोर सिज्झाय बीए झाण तीए गोयरि काल
१८१ चउत्थेपुणरवि सिज्झायं रात्रे पढमे पोरसि सिज्झायं
बीए झाण तीए सयणकाले चउत्थ पुणरवि सिज्झायं—

१८० ७ मयुक्ति—पूर्वकोडि देशोनता, क्रिया कठिन जिम कीन
कूरड कुरड नरक गति अशुद्ध भाव तें कीन। १।
(भाव छत्तीसी)

१८८ ५ यः क्रियावान् स पण्डितः
१५ आतंबपन मुनि कहे—जबलग आवै नहीं मन ठाम,
तब लग कष्ट क्रिया सब निष्फल, ज्यूं गगने चित्राम।

नोट—वास्तव में यहां लिखने में नाम मूल प्रतीत होता है। इस पद के रचयिता उपाध्याय यशोविजय हैं। (दे० गुर्जरसाहित्य संग्रह पृ० १६४)

१८६ ६ माणेण दाणएण भावं दंसणेण च सहह

चारित्तेण मणुन्नाई तवेण परिसिज्झइ।

(उत्तराध्ययन अ० २८ गा० ३५)

१८६ ६ संयोग सिद्धि अफलं वयंती नहु एग चक्केण रहो पयाई।

४९६ ६ अंधोय पंगू वण समेवा तन पउत्ता नगरं पविट्ठा।।२।।

१८६ १४ ज्ञानक्रियाभ्यां मुक्तिः —

ज्ञान धरो करोसयम किरिया न फिरावो मन ठाम।

चिदानंदघन सुजस विलासी प्रगटे आतमराम।।

(वास्तव में यह यशोविजयजी रचित पद का अंश है दे० गु०

सा० स पृ० १६४)

१८६ २० पढमं नाणं तओ दया (दशवै०अ० ४ गा० १०)

२०९ ६ दिवस मते दिये सुवरण खाण्डी लंडी अम्ब प्रमाण।

देतमे पुण्य न हुवे जेतलो सामायक कीधां तेतलो।।

२२७ १४ पूरइ उयोदर भर बराबी पृ० ६७

२७० १६ "सेंदुर सेंदुर दोडिओ, मेली मन की रे दौड़।

प्रेम प्रतीत विचारतो बूकड़ी, गुरुगम लेज्यो रे जोड़।।"

पुनः अबमोल मिहचे नहीं पुनः मिहचे सरस अनब

(आनन्दघन धर्मनाथ स्त)

अपावआवापित देपणूं हो सेमसरीर प्रमांत एवा मनुष्कि

३४३ १ निमलरूप निरवेगम निरलूं, शुद्ध परम पद मेरो।

हूं ही अकल अनादि सिद्ध हूं, अजर न अमर अनेरो।

३४४ २० ,, ,, (चतुरती पद १० पृष्ठ ४१)

बंध मोक्ष नहिं हमरै कबही नहीं उपपात विनाशा।
शुद्ध सरूपी हम सब काले ज्ञानसार पद वासा॥

(पृष्ठ ६८)

२५४ ७ जो अप्पा सोई परमप्पा

२५४ १४ काल पाक कारण मिल्यै सहित सिद्ध है आय।
बिन बरषा फूले फले, ज्यों बसंत बनराय॥

(पृष्ठ १५१)

२५७ ११ सुहामेण कम्मेण परकम्मेण वा उम्म विरिएण पुरसक्कार परकम्मेति —भगवती

२६१ १६ पण्णत्ता समसमियं

२७१ १२ काल सत्वे सब पदार्थ सत्वं कालाऽभावे सब पदार्था-भावेति रत्नाकर

२७२ ६ कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रम ॥१॥ पुनरपि
काले फलति तरवः काले बीजं च वापयेत्
काल पुष्पवती नारी सवकालेन जायते ॥२॥

२७२ १८ वस्तुनः परणमन स्वभाव परणमनत्व च किं नाम वस्तु वस्तुत्वं परणमनत्वं यत्र यत्र वस्तुत्वं तत्र तत्र परणमनत्वं परणमनत्वेन विना पदार्थस्याप्रतितत्वात् इति भावः इत्यनेन कृत्वा पदार्थस्य मूलकारण स्वभावेव दर्शित यत्र यत्र स्वभावत्व तत्र तत्र पदार्थत्वं यत्र यत्र स्वभावस्या भाव स्तत्र तत्र पदार्थस्याभावेमिरत्नाकर

२८७ ८ दान विघन वारी सहु जिनने, अभयदान पद दाता।
काम विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रस माता॥
वीर्य विघन पंडित वीर्य हणी, पूरण पदवी योगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी॥
आनन्दघनजी कृत मल्लि जिन स्तवन

२८७ १७ एगे आया (आचारांग समवायांग स्थानाङ्ग)
२८८ ६ कडे माणे कडे (भगवती)
२८८ १८ बहिरातम अघरूप (आनन्दघन-सुमतिनाथ स्तवन)
२८८ १६ "जीवा मुत्ता संसारिणोय" (जीवविचार)
२८६ १ मदुक्ति—सत्ताभिन्न सिद्ध अनंते रूप अभेद (पृष्ठ)
२६० १२ आनंदघने कह्युं—चेतनता परिणामन चूके,
१७ पुनरपि आनंदघनोक्ति—कर्त्ता परिणामी परिणामो
२६१ ७ " " वासुपूज्यस्त०)
२६० १४ एगो मे सासओ अप्पा (संथारपोरसी)
२६४ ७ पुन स्वा मदुक्ति उपति विनाश रूप रति परिणम,
जड़के गति थिति कायरे।
अविनाशी अनपद चिद्रूपी, काहे तू भ कषाय रे॥१॥
रोग सोग नहीं दुख सुख भोगी जनम मरण नहि कायरे।
चिदानन्दघन चिद आभासी अमद अमम अमाय रे॥२॥
२६६ ४ " " (बहुत्तरी पद ३ पृ० ३२)
पुनर्मदुक्ति—
शम शान्ति निज चेतन सत्ता भाषी जिन दिनकारे।

२७४ ११ यस्मिन् यस्मिन् भावे यत्तद्रूप्यवस्थाभवन तन्नियतत्वेति यद्वान्य नियतत्व शब्दस्य तेषु पदार्थेषु कार्य कारण-ताऽस्ति तथैव दर्शयति यस्य भवितव्यं कारणता भवि-तव्ये पदार्थेषु तदैक्यत्वं इत्यनेन कृत्वा भवितव्यस्य पदार्थेन सह कार्य कारण भावता दर्शिता ।

२७५ २० इदमपूर्वस्य सज्ञानीति नाम अपूर्वत्वं पूर्वमुपार्जित जीवेन शुभाशुभ कर्म तत् पूर्वोपार्जितं पुनः पूर्वोपार्जितः पूर्वो-पार्जिते. पूर्वोपार्जिताः पूर्वोपार्जितैःपूर्वोपार्जिते पूर्वोपार्जित च तत् कर्म च पूर्वोपार्जित कर्म तस्मिन्नेव पूर्वोपार्जित कर्मेवति ।

२७७ १ कारणेन कृत्वा निष्पद्यते तत्कार्य पुनः निरोत्पत्तिना कृत्वा निष्पद्यते तत् पुरुषकार यथा देवदत्तेन घट क्रियते तत्र घट निरोत्पत्यनुकूला मृत्पिण्डः कुम्भ चक्र चीवरादिका या क्रिया सा घट निरोत्पत्तेः कारण कार्य घटोत्पत्ति कारणं मृत्पिण्डादि तस्य घटोत्पत्ति कार्यता घटोत्पत्ती इत्यनेन कार्य कारण भावता दर्शितेति

२८२ १८ अमृत की इक बूंद के, अजर होत सब अङ्ग ।

२८३ ५ "कुटी कुटी कुम्भिका" इति हेमकोषे ॥

२८४ ४ धर्मोद्योतनोक्ति—नींद महान अमारि की मेट गयी निज चैन । (पद नं० ४)

१५ सामग्रीमोत्सारत्व समर्थ भावत्वेन कारणता समासी प्रति । (नैयायिक)

२४२ २० आनंदघन है ज्योति समावे, अलख कहावे सोई
(आनन्दघन पद नं० २१)

२६६ ४ „—औधू नटनागर की बाजी, जाणे न बामण काजी
थिरता एक समय में ठाणे उपजे विणसे तबही
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे या हम सुनी न कबही
औ १॥ (पद नं० ८)

८ एगे समेए एगा किरिया (स्थानांग)

३०१ ६ आनन्दघनोक्ति—आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहि-
रातम अघरूप। (सुमतिनाथ स्त०)

१५ „ कहा निगोड़ी मोहनी हो मोहकलाक गिंवार।
(पद नं० ८०)

१६ यथा मवुक्ति—मोहनीय क अलका छलकी, हस हस
गोद खिलावे। (पृष्ट ४६)

३०२ १० कर्मग्रन्थ कर्ताए कह्यु—कीर्ड बिएण हेवही भैणवो
मन्नए कम्म

१५ करता परिणामी परिणामो कर्म जे जीवे करिये।
एक अनेक रूप नयवादे नियते नर अणुसरिये।

३१४ ७ „ „ (आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३०४ २ नाणं च दसणं चेव चरितं च तवो तहा। वीरिय उव
ओगोय एयं जीवस्स लक्खणं (उत्त० अ० २८ गा ११)

३०५ १ यथा आनन्दघनोक्ति—कनकोपलवत पयड पुरस तणी
जोड़ी अनादि सुभाव (पद्मप्रभ स्त०)

सत्ता अचल अनादि अबाधित (पृ० ३६)

पुनरपि मदुक्ति—

राग दोष मिथ्या की परणति, शुद्ध सुभाजन समावै।

मनकृत अचल अनादि अबाधित, आतम भाव समावै।२।

(मधुकरी प १४ पृ ४६)

२६६ ११
२१६ १४
२६६ १
३ २ ६

मिथ्यात्वाविरति कषाययोगा बंध हेतव

(तत्त्वार्थसूत्र अध्या ८)

२६६ १ परिणामी चतन परिणामो ज्ञान करम फल भावी

३०८ १ " " (आनंदघन वासुपूज्य स्त)

पुनःमदुक्ति—चेतनता परिणामी चेतन ज्ञान सकति विस्तारै। (पृ० ३६)

२६६ ६ पुन मदुक्ति—गज सुकमालादिक मुनि मनों बड़ सम्बन्ध विभावरे (पृ० ३२)

११ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेण पवेइयं (आचाराग)

२० आनदघनोक्ति आतम ज्ञानी श्रमण कहावै बीजा तो द्रव्य लिंगिरे (वासुपूज्य स्त)

२१ तथा मदुक्ति—आतम ततवेता तप सिवनी अन्य श्रमण न कहाय रे (पृ० ३३)

३१ १२ " " " "

२६८ २ —करता बूंद समुद्र समानै, खबर न पावै कोई

२४२ १० आमनदघन है ज्योति समावे, अलख कहावे सोई
(आनंदघन पद न० २१)

२६६ ४ „—मोवू भटनागर की बाजी बाजे न बामम काजी
विरला भ्क समय में ठाणे उपजे विमसे तबही
पयट पयट ध्रुब सत्ता राखै, या हम सुनी न कबही
मौ० १॥ (पद नं० ८)

८ एगे समैए एगा किरिया (स्थानांग)

३०१ ६ आनंदघनोक्ति—आतम बुद्धे कायादिक मह्यो, बहि-
रातम अघरूप। (सुमतिनाथ स्त०)

१५ „ कहा मिगोही मोहमी हो मोहकमाक गिवार।
(पद नं० ८०)

१६ एवा मदुक्ति—मोहनीय के करका करकी हस हस
गोद खिलावें। (पृष्ट ४६)

३०२ १० कर्मकर्त्ता कर्तापन कहु—कीधे विरण हेकहिं जेणतो
मन्नए कम्मं

१८ करता परिणामी परिणामो कर्म जे जीवे करियेरे।
एक अनेक रूप नयवादें नियते नर अणुसरियेरे।

३१४ ७ „ „ (आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३ ४ २ नाणं च दसणं चेव चरित्तं च तवो तहा। वीरियं उव
ओगोय एय जीवस्स लक्खणं (उत्त० अ० २८ गा० ११)

३०८ १ यथा आनंदघनोक्ति—क्षयोपसम पहइ गुरस तणी
जोड़ी अनादि सुभाव (पद्मप्रभ स्त०)

४ चोवति मालाम पारसनिजीव—जीवन जिनदेवान् तत्त्वर्म

१० मनुष्कि – जीव करम वाद, है अनादि सुमावसु
(पृ० १६२)

३ ८ ३ —चेतनता परिणामी चेतन ज्ञान करम फल भावीरि

२१४ १७ „ ज्ञान करम फल चेतन कहिए, तेस्पोतेह मनावीरि
(आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३२१ १ „ „ „

३ ८ ५ विसमायस्यक—जहसो विसेसधम्मो चेयम तह सवा किरिया

१७ माव्ये—मनु गुणस्वमावयोर भेद् एवं तत्मेत्र निर्वचन धर्मभेदा भावान्

१८ तर्कसमाट्ट—गुण गुणिनो क्रिया क्रियावतो।

३ ६ मगति मरोरै जीव को, अरे महा बलवान

३१ १ आनंदघनवोक्ति—आध्यातम जो वस्तु विचारी
„ माव आध्यातम निजगुनसावै, तो तेहवी रढ मंडोरे
(श्रेयांस स्त)

३११ ३ अरव मासइ अरिहा सुरां गुंथंति गणहरा निउणा।

११ आनंदघनोक्ति—चित पंकज खोजे सो चीने, रमता आनंद मौरा
(पद नं ७७)

२ हेमकोश—मासो पाम्रो योगा ज्ञान

३१७ १ आगमधर गुरु समकिती क्रिया संवर सार रे

समवाई अर्वचक सदा सुचि अनुभवाधार रे। १।
पुन —भजे सुगुरु सवान रे (आनदघन शांति स्तवन)
पुन—परिचय पातक घातक साधुसु रे (समव स्त०)

३११ २२ , ,, अकुशल अपचय चते

३११ ११ ,, आपणो आतम भावजे, एक चेतना धार रे

११६ ५ अवर सवि साथ सयोग थी ए निज परिकर सार रे

११० ६ ,, ,, ,, (शांतिनाथ स्त०)

३११ ४ ,, दीपक घट मंदिर किवो सहिज सुजोत सरूप
आप पराई आपनी जानत वस्तु अनूप
(प० म० ४)

१ निज सरूप बालक नहि जाने पर सगति रति मानै।
भये सरूप ज्ञान तें भगनी अपने पर पहिचानै।।
(देखो ज्ञानसार पद नं ११ पृ० ४२

१७ आनंदघन—निराकार अभेद संग्राहक, भेद ग्राहक
साकारो रे।

३१६ ४ उत्तराध्ययन—समुणी रण्ण वासेण

३११ १२ ,, ,,

३११ ११ ,, नाणेण य मुणी होई

३१६ ६ ,, पय पंचविहं नाणं दव्वाणय गुणाणय
पज्जवाणय सव्वेसिं नाणं नाणीहिं दंसियं
(अ० २७ गा० ५)

१४ ,, नादसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा
(अ० २८ गा ३०)

३१० १८ आनंदघनमोक्ति—चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिनचंदो। (वासुपूज्य स्तवन)

३२५ ७ " " " "

३२१ १६ " बंध मोक्ष निहचे नहीं हो विवहारे लख दोय।
कुसल खेम अनादि ही हो, नित्य अबाधित होय
(पद नं० ८८)

३२९ १२ सर्व मोक्षे च सर्वत्र निस्पृहो मुनि सत्तमः।

३२२ १२ ३६२ ८ अभयदेवसूरि—समे मुक्ते भवेसद्दा

३२२ १८ सद्बुद्धि—कहेन लागी कम, कहे आतमारामसू
इह मिथ्यामति सर्व, बंध मोक्ष है आत्मा।
(आत्मप्रबोध छतीसी पृ० १६१)

३२३ १६ आनंदघन – चेतन आपा कैसे लखोई चे०
सत्ता एक अखंड अबाधित इह सिद्धत पखोई ?
अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु कू, समझ रूप भ्रमखोई
आरोपित सब धम और है आनंदघन तत सोई ?

२८०-१०, २६४-२ २६४-६ ३१०-१६, ३४५-५, (पद नं ४३)

३२४ १७ साता रच गाय मधु सुर जुग पंचिद्र जाय।
पांच सरीर भाइ मसि सरीर अंग-कहाय॥

३२५ ११ आनंदघनोक्ति—आनंदघन देवेन्द्रसे योगी बहुर न कलि में आकरे। वासना ते योगेचित्त ल्याक (पद नं० १०)

३२७ २१ अप्पा कत्ता विकत्ताय

३११ १६ आनंदघनोक्ति—सुसना रांड माळकी जाइ, कहा घर करै सवारो (पद नं० १४)
जावत तृष्णा मोह है, तुमहुं तावत मिथ्या भावो (पद नं ८०)

३३२ ११ मुत्ता निर्भाविया मुद्दा

१८ गाथा—जहा मस्स वसुइ ण इमाए इम्मए ताहो
तइ कम्माण इम्मति मोहमिजे खयगए १

२० आनंदघनोक्ति—सत्ता घल में मोह विडारत, ण ए सुरिजन मुह निसरी (पद नं० ११)

३३५ १६ „ "बहिरातम अघरूप" "कायादिक मो साखी धर रह्यो (सुमतिनाथ स्तवन)

३३६ ११ „ आरोपित सब धर्म और है, आनंदघन तत सोई। (पद नं० २८)

२० „ निरविकल्प रस पीजिये तो शुद्ध निरंजन एक।

३४३ १ पुनः—गइ पुतली लौन की थाह सिन्धु को लैन
आपा गम हुकमिक भई मिट गमन की सैन १

३४६ ६ आनंदघनोक्ति—अतिंद्रिय गुण गण मणि आगरू, इम परमातम साध (सुमतिनाथ स्तवन)

३४८ १६ सदुक्ति—स्याद्वाद जिन मत कथन अस्ति नास्तिता रूप
ता बिनको कैसे बने आतम शुद्ध सरूप १ (पृ १५६)

३४६ ६ सार्तवणा सहणो

३० „ —कोउ विसवाद भेद मो नहीं रुप व अर्थ संकल्प रे

सच्चा नमवाद म्यापी रह्यो त शिव साधम सधि रे
(आनन्दघन—शांति स्तवन)

१५ भाव अध्यात्म निजगुण साधै तो तेहथी रह मह्यो रे
(आनन्दघन—श्रेयांसजिन स्तवन)

४५१ १९ पाणिनी—अस्य परं परोक्षं

४५२ १० मकुसि—"पै बंधक करणी जिती तेती[1] सरव असिद्ध"
निर्मै सिद्ध जौलों नहीं विवहारे जिय मेल।
जोलूं पियफरसे नहीं तब गुडिया सूं खेल। १।
जोलूं भावे न झुरता, तोलूं किरिया लेख।
बाती जौलों पीझई, तौलों निपजै तेल। २।
जौलों कारज सिद्ध नहीं तौलों क्षम लेख।
घट कारज की सिद्ध तें क्षम रहत निपष। ३।
(भावषट् त्रिंशिका पृ १६२)

१६ अवाय अपअवसिय

४५१ ६ न देवो विपक्ष कार्टे, (चाणिक्य नीति)

४५२ ६ राम बाहिर मंदिर सजे सब सहिपन को सब
बिग मन बोलै काम्के घर्यो पीव पर हाथ। (मत हरि)

४५४ ११ सदा मह्यो भह्यो, सदा महुरस नरिष निम्बार्न।
परम रहिका सिम्मद्ध, सदा मह्या म सिज्झंति ॥ १ ॥
(पाठान्तर दंसण मह्यो)

२० मंद मलिए, दुखमा कालमें जैनिए—ज्ञानसार बहुचरि

४५५ २१ सिद्ध समान सदा पद मेरौ—समयसार

३६६ १३ आनन्दघन—अब हम अमर भये न मरेंगे—पूरा पद (नं० ४२)

३७० १ स्वकीय बहुत्तरी में—अनुभव हम कबके संसारी (पूरा पद न० १४)

१३ सिद्ध संसार समापन्नगा असंसार समापन्नगाय नो असंसार समापन्नगा संसार समापन्नगा—पन्नवणाटीका

३७२ ५ मतुकि—बैरागक बिन सो निराशी, सोइ निरंजनमासी याकी आस्या बिन आस्यानो, सोज कौन अगासी कामादिक सब याकी संतति, पर परणितको मासी मानें योगी सोच सरोगी सो आस्या नवि पासी (पद नं० ३७)

३७४ आनन्दघन—निरपरपच बसे परमेसर, घटमें सूक्षम बारी। आप अभ्यास लखे कोई विरला निरखे धू की तारी ॥ (पद ७)

३७५ ५ „ रेचक कुंभक पूरक कारी, मन इन्द्रिय जय कासी। ब्रह्म रंध्र मधि आसन पूरी अनहद तान बजासी माहरो वाल्हो सन्यासी ॥ (पद नं० ६)

१८ "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे, मूरख खोजे सन्दे बाजे"

६ आनन्दघन—इस घट लेख लखर हे घट की चीन्हे रमता राम मैं (पद नं० ७)

३७६ ७ „ कायादिक मो साखी धर रह्यो, अन्तर आतम रूप (सुमति स्तवन)

१७८ १ „ जिम सरूप थई जिन आराधे, ते सही
जिनवर होवे रे (नमिनाथ स्तवन

१८१ १७ अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो
जिणपन्नत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं ॥ (आवस्सयसुत्त

१८३ 'समरूप सामथ्यं होई'

१८४ १ कुक्कुडि पाय पसारण, अतरंत पमज्जए भूमी। संकोइय
संडासा उवट्टंते य कायपडिलेहा (संथारापोरसी)

१० कम्मनिज्जरापति।

१२ बारस विहा तव निज्जराय।

१८५ ६ इया वथा तव पुण पावा।

१८ बाल मरणेय पंडिय मरणेयं दोभिंते बालमरणे ? दुवा
लसविहे पन्नते—भगवती

१८६ १ पंडिय मरणे दुविहे पन्नते पाओवगमणे य भत्तपच-
क्खाणेय से किं त पाओवगमणे दुविहे पन्नते तंजहा
नीहारिमेय अनिहारिमेय नियमा अप्पडिकम्मे भत्त
पच्चक्खाणे दुविहे पन्नते त । निहारिमेय अनिहारिमेय
नियम सप्पडिकम्मे दुविहे पंडिय मरणेणं मरमाणे
जीवे अणन्तेहिं नेरइय भवग्गहणेहिं अप्पाण वि संजोए
इ जीवी भवति —भगवती जी १ शतक

१८७ १५ सम्मेवं सामाइयम्मि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा
एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ क्वा ॥
एव सामायिकं मार्गप्रभवं शिक्षापदं भवति अभिनन्दा-

माधिके कृतेसति देशविरतोपि सावद्यान्ममो वाक्काय
व्यापारान् वर्जयित्वा सर्वविरतानां सदृशो भवति
कथमित्याह देशेन देशोपमया यथा चन्द्रमुखी कन्या
समुद्रवच्चतड़ाग इति इतरथा तु अस्त्येव साधु श्राद्धयोर्म-
हान् भेद तथाहि साधुरुत्कर्षतो द्वादशांगी मप्यधीते
श्राद्धस्तु षड्जीवनिकाध्ययन मेव पुनः साधुरुत्कर्षत
सर्वार्थसिद्धि विमानेष्वुत्पद्यते श्राद्धस्तु द्वादशे कल्पे एव
तथा साधोर्हि तस्य सुरगति सिद्धिगतिर्वास्यात् श्राद्ध
स्यतु सुरगति रेव पुनः साधोरस्वार. संज्वलन कषा
याएव कषाय वर्जिता वाऽसौस्यात् श्राद्धस्यतु अष्टौ
प्रत्याख्याना वरणा ४ सज्वलना ४ श्चस्यु पुन साधो
पंचानां व्रतानां समुदितानामेव प्रतिपत्ति श्राद्धस्य तु
व्यस्तानां समस्तानां वा इच्छानुसारेण स्यात तथा
साधोरकवारमपि प्रतिपन्न सामायिक यावज्जीव भव
तिष्ठते श्राद्धस्तु पुन पुनस्तत्प्रतिपद्यते पुनः साधोरेक
शतभंगी सर्व शतभंगः स्यात् अन्यान्यं सापेक्षत्वात् श्राद्ध
स्तु न तथेत्यादि

१८८ १५ आसवा ते परिसवा परीसवा ते आसवा—आचारांगे
१९६ १६ „ „ „
१८६ १ जो बंधा मुक्को मुणे, सो बंधो निर्म्मल ।।
अप्प सहावे निम्मलो, सहु निम्माण प्रधत । समवसार
४१७ १६ „ „ गाथामद्द ककरामेंहै

१८ १६ तहारूवेणं भंते समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा गोयमा सवणफला सेणं भंते सवणे किं फले णाणफले सेणं भंते नाणे किं फले विन्नाणफले एवं विन्नाणेणं पच्चक्खाणफले पच्चक्खाणेणं संजमफले संजमेणं अणण्हयफले अणण्हए तवफले तवेणं वोदाणफले वोदाणेणं अकिरियाफले सेणं भंते अकिरिया किं फला गो० सिद्धि पज्जवसाणफला पण्णत्ता इति अस्यार्थः तथारूपं उचितस्वभावं श्रमणं वा साधुं माहणं वा श्रावकं पर्युपासमानस्य सेवमानस्य पर्युपासना तत्सेवा सा च किं फला कीदृग् फलमस्यास्ति सा किंफला गौतम श्रवण फलेति सिद्धान्तश्रवणं फलं यस्याः सा श्रवणफला इति श्रुतज्ञानफलं श्रवणादि श्रुतज्ञानमवाप्यते एवं प्रतिपदं प्रश्नकार्य विन्नाणफलेति विशिष्टं ज्ञानं यस्मै श्रुतज्ञानादि हेयोपादेय विवेककारि विज्ञानं श्रुतफले पच्चक्खाणफलेति विनिवृत्ति फलं विशिष्टज्ञानोहि पापं प्रत्याख्याति संयमफलेति कृत प्रत्याख्यानस्य हि संयमो भवत्येव अणण्हयफलेति अनाश्रवफलः संयम वान् किल नवं कर्मनोपादत्ते तवफलेति अनाश्रवोहि लघु कर्मत्वात्तपस्यतीति वोदाण फलेति व्यवदानं कर्मनिर्जरणं तपसाहि पुरातनं कर्म निर्जरयति अकिरिया फलेति योगनिरोध फलं कर्मनिर्जरातोहि योगनिरोधं कुरुते सिद्धि पज्जवसाण फलेति सिद्धि

अशुभ पयवसान फल सकल फल पयवसान फल
यस्या सा (भगवती शतक २ उद्देशा ५ वां)

१६१ १० सजमेण भते जीवा किं जणइ—ऱ्हांतनिज्जरेसि

१६२ ६ समाणे लिङ्ग कक्षणे, समेपूआवमाणेसु

१० आयवर्णं च सरीर गुत्ती मुत्ती मणुत्तर
सवरेण तवेणंय संजमेण मणुत्तरे

१६४ ११ निश्चैसिद्ध जीवों नहीं, विवहारे क्षिय मेल।
जीवों पिय पतसे नहीं तव गुडिया सु दाख ॥१॥

१६५ १ निश्चै हू भी सिध नहीं विवहार दे छोड़।
इक पतग आकाश में, फिर है दोरी छोड़॥

(पृ० १५२)

१६५ ३ ठाणांगजी में—"देव धडविहे पन्नते अवाले ववाते
ठवणाकम्मे पच्चुपन्न विणासी" अपाय उपाय
स्थापना कम प्रत्युत्पन्न विनासी

१६ समणेणं तवसा अप्पाणं भावमाणे विहरइ

१६६ १५ समयसार—दीम भयो प्रभु पद जपै, मुगति कहांसे होय

२० अदेवे देव मण्णा देवे अदेवमण्णा धम्मे अधम्म सण्णा
अधम्मे धम्म सण्णा सुगुरु कुगुरु सण्णा कुगुरे सुगुरु सण्णा

१६८ १४ "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष" यथा—सदुक्तिः—
अन्ध क्रिया अरु पंगु ज्ञान, इकसे सिद्ध न होय निदान
ज्ञानवन्त जो करणी करै, मारग पदारथ निहचै धरै।१।
मुद्ध मत्त घरो उपकरो ज्ञान क्रियामें शिवगति वरो।
एक ज्ञान में माने मोक्ष सो महान मिथ्यामति पाव॥

३९६ १७ अपनो शुद्धातमपद खोवै क्रिया विभावै मगन न होवै ।
मोक्ष पदारथ माने ऐसे, जिनमत तें विपरीत विसेसें ॥१॥

(पृ० १९८)

घर में या वन में रहो भेख रूप बिन भेख ।
तप संजम करणी बिना, कोई न लखा अलेख ॥
कोई न लखै अलेख, बिना तप संजम करणी ।
ज्ञान क्रिया ए दोय जानि संसार तिरणी ॥
एक ज्ञान तू मोक्ष, मन्न कारण क्यों भरमे ।
तप संजम तूं धरो, लखो अनवस्त पद परमें ॥

(पृ० १९९)

४०१ १२ "अवक्षाणसिणी"

४०२ ८ कबीरपंथीनिर्दर्शनीः—

पत्थर पूज्यां हर मिले तो, मैं पूजूं पहार ।
सब से भली चक्की, जो पीस खाय ससार ॥

४०४ ७ अशुचि—पर परणित से भिन्न भए जब, किंचित कर असमर्थी । (पृ० ९९)

१७ न्हाया कयबलिकम्मा—भगवती दुगिया श्रावकाधिकारे

४०५ कयबलि कम्मत्ति स्नानानंतरं कृत बलि कर्म्म यै स्वगृह देवानां—अभयदेवसूरिकृत भगवतीजी वृत्ति

४१० ७ पंचविहेणं भंते ववहारपन्नत्ते गोयमा पंचविहे ववहारे पन्नत्ते तजहा—आगमे सुत्ते आणा धारणा जीए जहाते तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा णो य

से तत्थ आगमेसिया जहासे तत्थसुर्णसिया सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा णोवासे तत्थसुए सिया जहासे तत्थ आणा सिया आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा णोय से तत्थ धारणा सिया जहा से तत्थ जीए सिया जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा इच्चे एहिंपंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा तंजहा आगमेणं १ सुएण २ आणाए ३ धारणाए ४ जीएणं ५ जहा जहा से आगमे सुएआणा धारणा जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा से किमाहु भंते आगम बलिया समणा निग्गंथा इच्चे त पंचविह ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिसिस ओवसि त सम्मं ववहारमाणे समण निर्गंथे आणाए आराहए भवइ। (भगवती श० ८३०८)

४११ ३ मिच्छत्त मग्गो मुक्खो

४१२ १० सप्तनया भवंति नैगमादयः तत्र च—नगम, संग्रह-व्यवहार, ऋजुसूत्र शब्द, समभिरूढ़ एवंभूत नयाः एते च द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक लक्षणे नय द्रयेऽन्तर्भाव्यन्त द्रव्यमेव परमार्थतो ऽस्ति न पर्याया इत्यभ्युपगमपरो द्रव्यास्तिकः पर्यायास्त्व वस्तुतः संति न द्रव्य मित्य-ऽभ्युपगमपरः पर्यायास्तिक स्तत्राद्यास्त्रयो द्रव्यास्तिका शेषास्तु पर्यायास्तिका (अनुयोगद्वारवृत्ती)

१८ जीवाणं भंते किं सासया असासया गोयमा! जीवा सिय सासया सिय असासया से केणट्ठेणं भंते एवं

४१८ १२ असंवुडेणं भंते अणगारे किं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परि निव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गो० नो इणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते जाव नो अंतं करेइ गो० असंवुडे अणगारे आउय वज्जाओ सत्तकम्म पगडीओ सिढिल बंधण बद्धाओ धणिय बंधण बद्धाओ पकरेइ हस्स कालट्ठियाओ दीह कालट्ठियाओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणु भावाओ पकरेइ अप्प पदेसग्गाओ बहुपदेसग्गाओ पकरेइ आउयंचणं कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ असाया वयणिज्जं चणं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ अणाइयं चं अणवदग्गं दीह मद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टइ से तेणट्ठेणं गो० असंवुडे अणगारे णोसिज्झइ (भगवती श० १ उ० १)

४१९ ६ पयमक्खरंपि एक्कंपि, जो न रोयइ सुत्त निद्दिट्ठं ।
सेसं रोयंतो वि हु, मिच्छद्दिट्ठी जमालिव्व । १ ।

४२० ८ सण परमोहि पुलाए, आहारग खवग उवसमे कप्पे ।
संजमतिअ केवलि सिज्झणाय, जंबुम्मि वुच्छिन्ना । १ ।
(प्रवचन सारोद्धार)

१८ कलहकरा डमरकरा असमाधिकरा अट्ठवे मुंडा अप्पे समणा

४२१ ४ निश्चय नय इहये धरी पाळीजे व्यवहार ।
पुण्यवंत ते पामस्ये जी भवसमुद्र नो पार ।१।
(यशोविजय, सीमंधर स्त० ढा० ६)

६ आत्मगुण विध्वंसना ते अधर्म आत्मगुण रक्षणा तेह धर्म । —देवचन्द्रजी (अध्यात्म गीता)

१८ कहण्णं भंते जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति गो० पाणा-इवाएण मुसावाएण अदि मेहुण परिग्गह कोह माण माया लोभ पेज्ज दोस कलह अब्भक्खाण पेसुन्न रति अरति परपरिवाये मायामोसे मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु गोयमा जीवा गरुयत्तं हव्व मागच्छंति कहण्णं भंते जीवा लहुयत्तं हव्व मागच्छंति गोयमा पाणाइवाय वेरमणे जाव मिच्छादंसण सल्ल वेरमणेणं एवं खलु गोयमा जीवा लहुयत्तं हव्व मागच्छंति एवं संसार आउली करेंति एवं परित्ति करेंति एवं दीही करेंति एवं हस्सी करेंति एवं अणुपरियट्टंति एवं वीयी वयंति पसत्था चत्तारि अपसत्था चत्तारि (भगवती श० १ उ० १)

४९९ १२ वचन सापेक्ष व्यवहार साचो वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो (आनंदघन अनंतनाथ स्तवन)

प्राप्तिस्थान (२)—
श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटों की गवाड़
बीकानेर

ग्रन्थमाला के नये प्रकाशन

१ बीकानेर जैन लेख संग्रह [२६०० शिलालेख, ६० चित्र, सजिल्द
१२५ पेज की विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका युक्त] मूल्य १०)

२ समयसुन्दर कृति कुसुमांजली [कवि की जीवनी व ५६३ रचनाओं का
बृहद् संग्रह सजिल्द पृष्ठ८००) मूल्य ५)

३. बीकानेर के दर्शनीय जैन मंदिर मूल्य ≈)

४ आत्मसिद्धि [हिन्दी पद्यानुवाद] पू० सहजानन्दजी भेंट

५ श्री मद् देवचन्द्र स्तवनावली [जीवनीयुक्त] मूल्य ।)

मुद्रक—
न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता
भारतीय मुद्रण मंदिर, बीकानेर